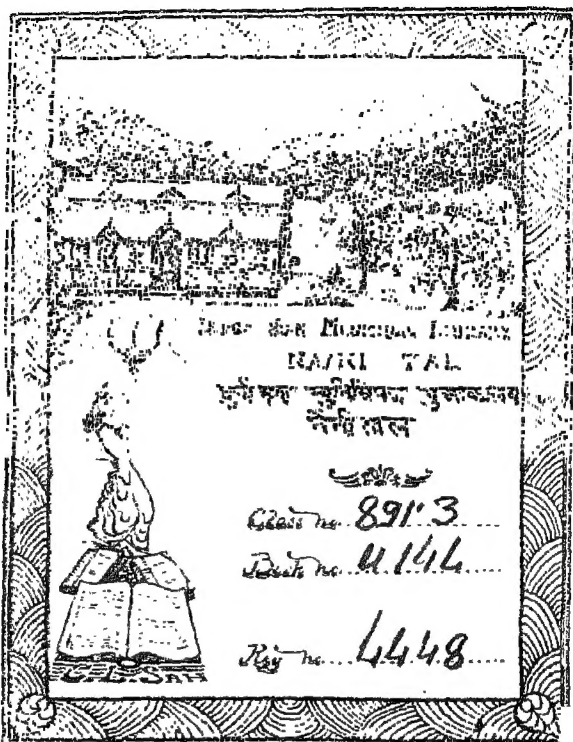

NAINI TAL
Class no. 891.3
Book no. U14L
Reg no. 4448

लोक-परलोक

હમારા દેશ જહાં સાંસ્કૃતિક
પરિદૃશ્ય ન રંગ રૂપોં
સભા દીને પર સંપૂર્ણ વિશ્વ
કે લોગોં કો આકર્ષિત કરતા
હૈ વહીં યહ ભારત કઈ
અંધવિશ્વાસોં સે ભરા
હૈ, જિસકે ચલતે કભી
આડ મેં કઈ નિકલતે પ
રહે હૈં। પં૦ ભટ્ટજી ને
ઇસી પ્રકાર કે તથ્યોં (પંડોં
તથા સ્વામિયોં) કે વાસ્ત-
-વિકતા કો જાનતા.

लेखक के अन्य उपन्यास

एक नीड़ दो पंछी

नये मोड़

सागर, लहरें और मनुष्य

लोक-परलोक

(पश्चिमी उत्तर प्रदेश के तीर्थ ग्राम
का एक मर्मस्पर्शी जीवन-चित्र)

उदयशंकर भट्ट



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रथम संस्करण, १९५८

मूल्य : तीन रुपये पचास नये पैसे

प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली ।

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली ।

उस दिन सबेरे से ही टीले पर इतनी रौनक और चहल-पहल थी कि झुंड-के-झुंड स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े, पास ही गंगा-स्नान करके 'जय देवी की', 'जय माता की', 'जय कल्याणी की', 'जय-जय' कहते ऊपर चढ़ रहे थे; कन्धों पर रखी बाँसों की लाठियों पर धोती सुखाते, गीली धोतियाँ ओढ़े, नंगे पैर घुटनों तक चढ़ी धोती, मैले कुरते या बंडी पहने चले आ रहे थे। बगल में, कन्धों पर पोटली रखे, पीली, लाल, काली गोट लगे छींट के लहँगे, वैसी ही रंग-बिरंगी ओढ़नी ओढ़े, हाथों में लाल, हरी चूड़ियाँ, पछेली, छन्न, कड़े, गले में हँसली, कंठी, रंग-बिरंगे नकली मोतियों, मूँगों की मालाएँ पहने औरतों के झुंड टीले पर दिखाई दे रहे थे। लड़के उछलते, बूढ़े लकड़ी टेकते, जवान उमंगों में भरे मन में कामनाएँ लिये कोई कतार में, कोई फैले, बिखरे आते जा रहे थे। किसी के सिर पर मैली टोपी, कोई नंगे सिर, कोई पगड़ी बाँधे खखारते, हिंसते, साँसों में मनौती भरे हुए थे। ऊपर टीले पर कल्याणी देवी के मन्दिर के सामने तख्त बिछाये सिरकियों या खुले चबूतरों पर पूजा की सामग्री बेचने वालों की दुकानें लगी थीं। पास ही कनेर, गेंदा, सदाबहार के फूल टोकरियों में बेचे जा रहे थे। दुकानदार और फूल बेचने वाली औरतें चिल्ला-चिल्लाकर अपने सामान की आवाज़ें लगा रहे थे। पूजा की सामग्री में बताशे, पोले नारियल, लाल कपड़े के चीथड़े, कौड़ी, धूप, दीप और गहनों में टीन के टुकड़ों के हार थे। पाँच आने से लेकर सवा रुपये तक का सामान! असली

मन्दिर और बाहर के छोटे मन्दिरों में घंटे बज रहे थे। मैदान में दुकानदारों का कोलाहल, एक-एक टुकड़े के लिए लड़ उठने वाले कुत्तों, कौओं और चीलों के तीव्र, मध्य और निषादी स्वर; भिश्तियों, भंगियों की गला-फाड़ आवाजें, छोटी-बड़ी लड़कियों का यात्रियों का पल्ला पकड़कर, रास्ता रोककर पैसा माँगने की चिंघाड़ और यात्रियों की झिड़कियाँ, ये सब एक अजीब कोलाहल पैदा कर रही थीं। मन्दिरों के भीतर, बाहर, आँगन में पुजारियों, माँगने वालों, चढ़ावा चढ़ाने वालों और मनौती माँगने वाले यात्रियों में कई तरह के वाक्-युद्ध चल रहे थे। कहीं नारियल फोड़े जा रहे थे, कहीं पंडे देवी के नाम पर दक्षिणा के लिए जूझ रहे थे। यात्रियों के झुंड-के-झुंड आते, श्रद्धा के अनुसार पूजा करते, फूल-बताशे चढ़ाते, घंटे बजाते, साष्टांग दण्डवत् करते, हाथ जोड़ते, सिर जमीन से छुलाकर मनौती माँगते, माथा और नाक रगड़ते, प्रसाद बाँटते और बाहर निकल आते। फिर एक-एक पैसे के लिए मुड़चिरों की तरह चारों ओर से घेरने वाले भिश्तियों, भंगियों तथा माँगने वालों से पीछा छुड़ाकर यात्री लोग किसी पेड़ के नीचे या कहीं कुएँ की मन पर, कहीं कच्चे चबूतरों पर अपनी पोटलियाँ खोल-कर जीमते और चल देते।

कुछ ऐसे भी सम्पन्न-परिवार यात्री थे जो कई दिन पहले मन्दिर के पास बने मकानों में ठहर गए थे। उनकी तरफ से पूजा के बाद पंडों को खीर, पूरी, लड्डुओं का भोजन कराया जाना था। कहीं इसी प्रकार के भोजन बन रहे थे। कुछ लोग बाजार से लड्डुओं के थाल देवी को चढ़ाने के लिए ला रहे थे। एक तरफ मन्दिर के पास दालान में कुछ लोग बैठे भाँग घोट रहे थे; दूसरी ओर साधुओं का दल धूनी रमाये, सुल्फे, गाँजे की लौ उठाकर बीच-बीच में 'जय-जय' पुकार उठता। यात्रियों का समूह उधर भी जाता और माँगने के लिए फैलाये कपड़ों पर पैसा, धेला, कौड़ी, अठावरी, बताशे चढ़ाता, हाथ जोड़ता और लौट आता।

बड़े मन्दिर के जंगले के दोनों कोनों में दो पुजारी बैठे यात्रियों को चढ़ावे का प्रसाद दे रहे थे। भीतर एक आदमी लड्डुओं, बताशों, पैसों, रुपयों के ढेर अलग कर रहा था। दरवाजे के पास दो-तीन आदमी खड़े चढ़ावे का हिसाब लगाते यह देख रहे थे कि चढ़ावे का माल इधर-उधर तो नहीं किया जा रहा है।

लगभग दोपहर बारह बजे तक यही क्रम रहा। यात्रियों की संख्या कम हुई। मन्दिर के कर्मचारियों में से एक-एक करके उठने लगा। पूजा-सामग्री के ढेर अलग कर दिये गए। देवी की मूर्ति के पास रह गए पीले, लाल चीथड़ों के ढेर, हार, फूटी कौड़ियाँ, पैरों से कुचले फूल। इसी समय भाँग घोटने वालों में से एक ने 'हर हर महादेव' 'ऐसी आवे हर गुन गावे' की आवाज लगाई तो दूसरे ने उसे दुहराया। तीसरा हाथ की बीड़ी फेंककर हाथ धोने उठा। बाल्टी में लोटे से भाँग उछाली जाने लगी। उसी समय एक कह उठा—

"बं बं बं'''जो विजया की निन्दा करे ताहि खाहि कालिका माई। चलो रे चलो।"

एक पुजारी वहीं से भाँग की प्रशंसा में बोल उठा—

"शुद्धां ब्रह्म विचार सार परमामाद्यां जगद् व्यापिनीम्।"

सिल-बट्टे को भाँग की बूँदें चढ़ाने और कपड़ा बाल्टी पर ढककर ध्यान लगाने के बाद एक-एक करके लोगों ने लोटे चढ़ाये तो एक बोला— "अरे, देखे का है, थोड़ी-सी और ले न!" इतना कहकर उसने बाँटने वाले पर जोर दिया।

दूसरा बोला, "आज मैया ने सुनी है तो कसर क्यों रहे!"

इसी तरह सबने और दिनों से अधिक मात्रा में भाँग पी। ब्राह्मण-भोजन कराने वाले यात्रियों को भी आग्रह करके पिलाई गई। कुछ लोग लोटा लेकर निबटने चले गए और बाकी बीड़ी का धुआँ उड़ाने लगे। चढ़ावा गिना जाने लगा। नारियल, बताशे, रुपये, पैसे, कौड़ियाँ तक बँट गईं। लोगों ने अपना-अपना हिस्सा लिया और मन्दिर की आलमारियों

में बन्द कर दिया। जीमने के लिए जितने लोगों को बुलाया गया था, उससे दूने लोग इकट्ठे हो गए। कुछ गिद्धों की तरह आस लगाए जम गए और कुछ स्त्रियाँ और बच्चे लोटा और गिलास लेकर आ जमे। एक तरफ कुत्तों का दल ताक लगाए कानाफूसी कर रहा था। पेड़ों और मन्दिर की मुड़ेरों पर कतार में बैठे कौए स्तोत्र बोल रहे थे। आँगन में कंधों पर अँगोछे रखे ब्राह्मण भोजन के लिए जमा हुए। पास ही दो-एक ठाकुर भी जमकर बैठ गए। एक ने चुपचाप सेठ को बतला दिया कि ये ठाकुर हैं। भोजन शुरू हुआ, तो सेठ की पत्नी ने पति से कहा—

"ये तो बहुत आदमी आ गए, हमने तो बारह का प्रबन्ध किया था।"

"हाँ, क्या करें ?"

"फिर अब, और तो इतनी जल्दी नहीं बन सकता।"

"मैं कुछ इन्तजाम करता हूँ।" इतना कहकर सेठ ने अपने एक आदमी के साथ पंडे को बाजार भेजकर मिठाई मँगाई, तब कहीं जाकर ब्राह्मण भोजन पूरा हुआ। शेष साधुओं को बाँट दिया गया। पति-पत्नी दोनों ने थोड़ा-बहुत खाकर सन्तोष किया।

पत्नी बोली—"कैसे हैं ये लोग, इतना खाया ?"

"क्या कहा जाय, मुफ्त का माल है, फिर ब्राह्मण !"

दोनों ने देखा भोजन के बाद कुछ वहीं लेट गए थे। शेष जो धीरे-धीरे खिसके उनके पैर डगमगा रहे थे। मन्दिर के पट बन्द हो गए। देवी की मूर्ति के पास कुचले हुए फूलों, चीथड़ों और इधर-उधर फैली हुई कानी कौड़ियों के सिवा कुछ नहीं था। दालान में पुजारियों की नाकें बोल रही थीं और बाहर पड़ी पत्तलों पर कुत्तों और भंगियों के संवाद चल रहे थे। केवल दूर यात्रियों के लौटते हुए जय-जय के स्वर सुनाई दे रहे थे।

गंगा के तट पर पद्मपुरी नाम के तीर्थ ग्राम के टीले पर देवी के मन्दिर में वर्ष में दो बार यात्रियों का मेला लगता है। इसे 'जात' कहते हैं। असाढ़ और क्वार के महीने में दूर-दूर से लोग देवी की पूजा करने आते हैं। गंगा का किनारा होने से स्नान करने वालों की संख्या भी कम नहीं रहती। यह गाँव स्टेशन से तीन-चार मील दूर है। कच्ची सड़क पार करके यहाँ आना होता है। बहुत से शहरी यात्री वहीं स्टेशन के पास स्नान करके लौट जाते हैं। पद्मपुरी तो सिर्फ वे ही लोग आते हैं, जो कुछ दिन एकान्त में गंगा सेवन की चाह रखते हैं या देवी की मानता मानते हैं; या फिर आसपास के गाँव के लोग। इसलिए, दूसरे तीर्थों की तरह यहाँ हर समय भीड़-भाड़ नहीं रहती। गंगा के पूरब में यह गाँव बसा हुआ है। किनारे-किनारे दूर तक साधुओं की कुटियाँ बनी हुई हैं। कहा जाता है, यह गाँव बहुत पुराना है। कुछ लोग महाभारत की घटनाओं से भी इस गाँव का सम्बन्ध जोड़ते हैं। वैसे, बड़े-बड़े महात्मा, तपस्वी, साधु और सन्त इस स्थान पर तप, मनन और चिन्तन करते रहे हैं।

गाँव में ब्राह्मण, पंडों और ठाकुरों की संख्या अधिक है। अब चमार, लोधे, गड़रिये भी कुछ दिनों से काफी संख्या में यहाँ बस गए हैं। दस-पाँच बनियों के घर भी थे, लेकिन अब उनका नाम-भर रह गया है। कुछ लोग व्यापार न होने से बाहर चले गए, बाकी मर-मरा गए। जमींदार ठाकुरों का किसी समय बड़ा दबदबा था। उनसे पहले ब्राह्मणों का भी काफी प्रभाव रहा है। पर अब दोनों—ब्राह्मण और ठाकुर—यौवन बीतने पर बुढ़ापे की तरह लड़खड़ा रहे हैं।

यह कहना कठिन है कि गाँव के इन लोगों पर शहर का प्रभाव नहीं पड़ा है। पास ही कई अच्छे शहर हैं। तहसील, थाने और जिले के अलावा तीस-चालीस मील के फासले पर एक जगह विश्वविद्यालय और आसपास कई कालेज हैं, जहाँ इस गाँव के कभी कोई लड़के पढ़ने चले जाते हैं। फिर भी, गाँव में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या कम है।

जो पढ़ जाते हैं, उन्हें नौकरी के लिए बाहर जाना पड़ता है। इधर गाँव में यात्रियों के आने-जाने का भी काफी प्रभाव पड़ा है। पहले यहाँ संस्कृत की एक पाठशाला थी, विद्यार्थियों को संस्कृत में बोलना सिखाया जाता था। वेद, वेदांग के अलावा व्याकरण, न्याय-शास्त्र आदि पढ़ाए जाते थे। कुछ लोग, जो उस पाठशाला में पढ़े थे, अब भी गाँव में हैं। आर्य समाज के प्रभाव में आये हुए कुछ ठाकुर भी थे, जो अब नहीं रहे। पर उस ज्ञान के खंडहर अब भी बने हैं। एक तरह से इस गाँव का (सारा वातावरण अधकचरा, ज्ञान और अज्ञान की कड़ी पर झूल रहा है। साधुओं के प्रभाव से अद्वैत, वेदान्त और गीता का भी इसमें प्रत्यक्ष, पर मौखिक, विकास हुआ है। एक तरह से यह कहना चाहिए कि गाँव के लोग साधारण पढ़े-लिखे हैं और पंडों में काम-चलाऊ संस्कृत के जानने वाले। यात्रियों के आने पर 'गंगा लहरी', शिव महिम्नस्तोत्र, वेदपाठ और छुटपुट 'रामचरित मानस' का पाठ कभी-कभी मन्दिरों में और गंगा के किनारे सुन पड़ता है। इस सम्पूर्ण ज्ञान का लक्ष्य एक ही है कि यात्री को किस प्रकार प्रभावित किया जा सके और दक्षिणा से मुट्ठी गरम करने के साथ-साथ भोजन और भाँग की व्यवस्था हो। लड्डू, कचौरी, खीर, मालपुओं के लिए कौन-कौनसे हथकंडे काम में लाये जायें, जिससे गाँव के सारे वातावरण में घी की सुगन्ध से बने पकवानों के लिए लालायित जीभों और कुड़कुड़ाते पेटों को तृप्ति मिले।

इधर ठाकुर और दूसरी जाति के लोग भी इस मौके से चूकना नहीं जानते। वे किसी-न-किसी बहाने यात्रियों के विविध स्वादमय भोजन में अपना पैतृक अधिकार समझने में नहीं हिचकते।

गंगा के पश्चिमी तट पर ठाकुरों की एक टेकरी है, और गाँव के बीच में ब्राह्मणों की बस्ती। बाहर लोधे और चमारों के घर। टेकरी से दक्षिण और पश्चिमी कोने में दूसरे टीले पर देवी का मन्दिर है। गाँव के आँचल को छूती हुई गंगा बहती है। बाहर से गंगा घाट की ओर आने

पर एक लकीर की तरह सीधा बाजार है, जहाँ पन्द्रह-बीस से ज्यादा दुकानें नहीं हैं—तीन-चार दुकानें आटे-दाल की, एक-दो पंसारी की, एक बजाज की, छः-सात हलवाइयों की और बाकी पानवालों की। सुबह-शाम किसी भी समय गंगा की रज माथे, बाँह, छाती, कमर और पैरों पर लपेटे, बीड़ी पीते, तम्बाकू फाँकते पंडे दिखाई दे सकते हैं। कुछ अंगरखी पहने, रामानन्दी तिलक लगाए लोग भी दुकानों पर बैठे दीख पड़ते हैं। सारे गाँव की सड़क ऊबड़-खाबड़ है और बरसात के कीचड़ से भरी रहती है। वही एकमात्र आने-जाने का साधन है।

शाम का समय था। बाजार में पान की दुकान पर कुछ लोग बैठे पान खा रहे थे। उसी समय देवी के एक पंडे ने आकर तमोली को एक पान का 'आर्डर' दिया और वहीं बैठ गया। बीड़ी का कश खींचकर धुआँ छोड़ते हुए एक साथी ने पूछा—"ललिता परसाद, आजकल तो मौजई मौज है, जात तो टूटी पर रई है, ससुरी।"

ललिता ने पोपले मुँह में पान भरकर जवाब दिया—

"का टूटी पर रई हैं, पाँच आना तीनि पाई चार रुपल्ली हिस्सा में आए हैं। छः आना के नारियल बस, चार आना एक सेठ दच्छिना में दै गयो। जिमायबे कूँ बैठो तो लड्डू खतम ह्वै गये। फिर बजार सूँ पेड़ा मंगाए, बेऊ हमन्ने खतम कर दीने। आज कछु रंग जमौ हो सो सेठ ने 'टैं' बोल दई। अकिल्ले रामधन ने बीस लड्डू, चौबीस पेड़ा और बारह पूरी खाईं। तुमतौ जानौ हो मेरे दाँत नायँ, तौऊ पन्द्रह लड्डू, दस पेड़ा और पाँच पूरी म खाय सकौ। का बताऊँ धीमें चबैं हैं; खातई खात पंगत उठि गई, नायँ तो पाँच-सात लड्डू तो और दाबतौ। पेड़ा वा सारे लछमना ने बूरे के बनाये हे, भला कोई कितने खातौ। कोरौ बूरो तो फाँकौ नायँ जाय, तुम जानो।"

ललिता प्रसाद ने पान की पीक बीच बाजार में 'पिच्च' करके थूकी तो उधर तेजी से जाते धनुआ लोधे के पैरों पर जा गिरी। वह

चौंका और लौटकर बोला—"देखिके थूकौ करौ पंडित, आँखेऊँ चली गई हैं का ?"

"अरे लौंधे के संभरि के बोल, हमारौ कसूर है, तोइय सुसरे नायँ दीखै। बड़े आये लाट साब !"

धनुआ सहमकर बोला—

"लेउ साब, उल्टौ चोर कोतवाल कूँ डाँटे। सीधी बात कई तो पंडित बिगरि परे, एक तो ऊपर थूकौ, दूसरे आँखें दिखावतें।"

"अरे तो का भयौ, बामन को थूकु है, सारे पवित्र ह्वै गयौ।" वहीं पास बैठे एक दूसरे व्यक्ति ने मजाक में कह डाला।

"हाँ, काएकू कहौगे। हमई थूकिबे कू रै गये हैं ? जि तो नायँ कहौगे कि तुम्हारे मोहल्ला में हैं, जो चाहें कहौ।"

दूर से एक फटी-सी आवाज आई—

"बजार है धनुआ बजार, मोहल्ला नायें।" क्रोध में भरकर धनुआ बोला—"बामनन कौ बजारै, मैंऊँ देखतौ। मेरे मोहल्ला में ऐसे थूकते, तौ टांगि न तोरि दई होती।" इतना कहकर धनुआ जैसे ही आगे बढ़ा वैसे ही तरह-तरह की डाँट उस पर पड़ने लगी। ललिता प्रसाद ने डंडा सम्हालकर कहा—

"ठहर तो सई तेरी ऐसी की तैसी, दिमागई बिगरि गये हैं इन कमीनन के।"

धनुआ बात का जवाब देता बढ़ रहा था।

इधर दुकान पर बैठे लोगों ने कई तरह से ब्राह्मणों के प्राचीन महत्त्व और आधुनिक युग पर टीकाएँ कीं। एक बोला—

"अरे कलजुग है कलजुग भैया !"

"कलजुग है तौ का भयौ, बामन अबऊँ ऐसे गये-बीते नायें।"

"पंडित नेरूऊ तो बामनई हैं।"

"नैरू नेई तो चमार-बामन एक करि दये हैं।"

"जि गांधी को प्रताप है, न होतौ गांधी न जि नौबत आवती।

अब का है, जैसें-तैसें जिन्दगी काटनी है।"

"अरे होयगो गांधी, ह्यां नायँ चलै काऊ गांधी फांदी की। गंगा मैया के सामने बड़े-बड़े सिर टेकें हैं," चौथे ने कहते हुए मुँह पर हाथ फेरा और जेब से सींक निकालकर दाँत कुरेदने लगा। इसी समय गंगा-तट से अंगोछा पहने सारी देह में रज लपेटे, गंगाजली हाथ में लिये एक युवक आकर रुका और पूछने लगा—

"का बात भई, जि लोधेकौ का बकि रह्यौ हो, मन में तो आई कें लोटा दै मारूँ सारे कें, पर चलोई आयो, न जाने का बात हती? चचा तुमसूँ कछु बात भई का?" उसने पास बैठे एक बूढ़े से पूछा। लोगों में से एक ने बातें सुनाईं तो बोला—"भस्म करि दंगो सारेन कूँ, समझि का रक्खी है, बामन अबई इतने गये-बीते नायें।"

उधर से एक ठाकुर आया तो कहने लगा—"अरे, अब न कोई बामन है न ठाकुर, नायँ तो याई गाम में मजाल है कोई सिर तो उठाय जातो। खोदिकें न गाढ़ि दयें जाते सारे।" यह कहकर उसने मूँछों पर ताव दिया और पान वाले से पान के लिए कहा।

"पीछे के सब पैसा देउ तबई पान मिलिगे, तुम समझो मैं कां तक उधार करूँ?"

"अरे दै दिंगे, क्यों मरौ जाये, कितने हैं बोल?"

"तुम जानों।"

"तू बता।"

"बारह आना है गये हैं।"

ठाकुर ने ठठाकर अपनी शरम पर परदा डालते हुए कहा—

"तो का भयौ, मरौ क्यों जाय है, लगा पान, दै दिंगे। अबे, जानै नई हैं यहाँ पैसों सालों की कभी परवा नहीं करी।"

"पहले पैसा देउ ठाकुर, जि बात झूठी है, रोज तुम ऐसेई कै देतौ।"

"तू समझै हैं, तू नायँ देगौ तो और कोऊ नायँ देगौ।"

"तो और सूँ लै लेउ, मैं गरीब आदमीऊँ, कबतलक उधार करूँ,

तुमई बताओ ।"

"अच्छा आज तो देदें कल पैसा चुकाय दिगे।"

पान वाले ने पान देते हुए याद दिलाया—

"साढ़े बारह आना याद रखियो ठाकुर ?"

"हाँ, हाँ मरौ क्यों जाये, ला एक आना के कोरे पान दै ।"

पानवाले ने बेमन से बुड़बुड़ाते हुए एक आने के पान दिये तो ठाकुर पंसारी की दुकान पर सुपारी कत्थे के लिए पहुँचा । झाँय-झाँय के बाद सुपारी-कत्था लिया और हलवाई की दुकान से आध पाव दूध भी उधार लेकर तीन-चार कुल्हड़ उठाए । इसके साथ ही क्षत्रियत्व के महत्व पर व्याख्यान देता आँखों से ओझल हो गया ।

पानवाला कहने लगा—

"बजार में कोउ ऐसो है जाको या ठकुरा पै उधार न होय, काऊ के दस काऊ के पाँच ।"

"अरे तो हम का जाने नायें, अब इनमें रै ही का गयो है, ठसकई ठसक है, बस ।" वहीं से एक ने कहा—

"उधार लिगे तो पैसा दैवे को नाम नहीं लिगे । मुड़चिरा हैं मुड़-चिरा ।" उधर हलवाई अपनी गद्दी पर बैठा ठाकुर पर 'कमेण्ट' कर रहा था । तभी पंसारी एक गाहक को मिट्टी का तेल देता हुआ बोल पड़ा—

"पन्द्रह रुपैया हैं, पन्द्रह नकद, दैवे को नाम नईं है ।"

"चलौ कबऊं तो दिगेई," एक और आदमी ने गली के मोड़ से बाजार में जाते हुए कहा ।

"लै एक पान मोउग्र खवाय दै," कहकर उसने पानवाले के पास इकन्नी फेंकी ।

"तोय कितनौ मिलौ माता पै सूँ," एक ने पूछा ।

"द्वै रुपैया तीनि आना, चारि आना दच्छिना," ललिता प्रसाद की तरफ मुँह करके बोला, "तुम्हारो तो डबल हिस्सा हो न ?"

"हमउ एक पान लिगे या इकन्नी में सूँ, एक मोय दै ।"

"हाँ, हाँ एक पान इन्हेउ दै। आज तो रबड़ी उड़ेगी, लछमना सूँ कह आयौ हूँ, उस्ताद ऐसी चकाचक बने कि रंग जमि जाय, का हैं कल्लि कू चूनर झारिकै मरनौई तो है। तोले-भर कौ अण्टा चढ़ायौ है। 'बं बं बं धोखा रहे न गम।' पान में तम्बाकू पीली डारियो रे।" वह पान खाकर उसी पास की गली में छिप गया। इसी समय बैलगाड़ियों की चूँ चूँ सुनाई दी। दुकानों पर बैठे पंडों के कान खड़े हो गए। यात्रियों की गाड़ियाँ थीं। लोग उठकर गाड़ी के पीछे हो लिये। नाम धाम, पते-ठिकाने की फहरिस्तें खुलीं, बहियाँ लाई गईं, धर्मशालाओं के दरवाजे चरमराये। बाजार में हल्का कोलाहल फैल गया। उधर दीये जले और हलवाइयों ने मिठाइयों के थाल आलमारियों से निकाल-कर तरौनों पर सजा दिए। साधु-संन्यासी, गृहस्थों का आना-जाना बढ़ गया। कोई दूध पी रहा था, कोई रबड़ी, कोई पेड़ा उड़ा रहा था। अधिकतर लोग कुल्हड़ों में दूध या दौनों में रबड़ी-मिठाई ले जा रहे थे। सबकी यह शिकायत थी कि मिठाई अच्छी नहीं बनती; हलवाई बेईमान हो गए हैं। कोई खाय तो क्या खाय? कुत्ते उन्मुख होकर खाने वालों के दौनों, कुल्हड़ों को ऐसे देख रहे थे जैसे पपीहा स्वाति बूँद की प्रतीक्षा में आसमान ताकता है। फिर फूटे हुए कुल्हड़ों, दौनों पर गुर्राते हुए उनका एक-दूसरे पर टूट पड़ना या तो उन्होंने पंडों से सीखा होगा या फिर उनसे पद्मपुरी के लोगों ने। यह कोई नहीं बता सकता इसकी शुरुआत कहाँ और कैसे हुई।

ललिता प्रसाद बाजार की खबरों से अपने को ताजा करके माता के मन्दिर पहुँचा तो ठाकुर विक्रमसिंह पंडों को गालियाँ दे रहा था। नशे से उसकी आँखें लाल थीं, जैसे निकली पड़ रही हों। दो-एक आदमी दूर बैठे चिलम पी रहे थे। वे ही जब-तब ठाकुर की खुशामद करके उसे शान्त करने की कोशिश करते, पर वह तो गालियों के घोड़े पर सवार था। वह कह रहा था—"एक-एक को देखूँगा, सालों को; देवी

का चढ़ावा छिपाकर रख लेते हैं। हम लोगों को बारह आना मिलना चाहिए तो कभी अठन्नी या कभी नौ आने देकर टाल देते हैं।" फिर जोश में आकर बोला—"आँखों में धूल झोंकते हैं साले। यात्रियों का माल चरते हैं सो ऊपर से। उनकी औरतों को घूरते हैं सो घाते में। जैसे सारे सुख इन साले बमंटों के लिए हैं। अब से हर ठाकुर की पत्तल लगा करेगी, तभी इन बामनों को यात्री लोग खाना खिला सकेंगे। मैं अभी जाकर बलबीरसिंह से कहता हूँ। ये साले माल चरें और हम टुकुर-टुकुर देखते रहें।"

दूर बैठा बामन का एक बेटा बोला—

"ठाकुर का बामन है जांगे, बामन तो बामनई रहेंगे और जात्री तो बामन कूँ ही खवामें हैं, ठाकुरन कूँ तो खवायवेते रहे।"

"देवी तो हमारी है, हमहीं इसके मालिक हैं, तुमतो साले इसके पुजारी हो।"

"तो ठाकुर, तुमई पूजा करौ हमें काहे ?"

"हाँ, हम ही पूजा करेंगे।"

"फिर कोऊ धेलाऊ नायँ चढ़ावेगो, सारी जात बन्द है जायगी, कहूँ ठाकुरउ पुजारी भये हैं ?" एक व्यक्ति ने दूर से चिलम पीते हुए कह दिया।

"तो हम इन मूर्तियों को तोड़ देंगे, कोई परवाह नहीं।"

ललिता प्रसाद को देखकर ठाकुर बोला—"ललिता मिसिर, कहे देता हूँ। मैं मन्दिर को खंडहर कर दूँगा, साले तुम लोग रोज यात्रियों का माल चरते हो और हमको कुछ नहीं मिलता। हमीं बहन•••मालिक इस देवी के और हम ही खीर-मालपुओं को तरसते रहें, और तुम साले माल उड़ाओ!"

"तो ठाकुर, जि तौ सदा सूँ चली आई है, छत्री तो रच्छक रहे हैं।" ललिता प्रसाद ने नरमी से पुचकारते हुए ठाकुर को उत्तर दिया।

"ऐसे रच्छक किस काम के, सवेरे मैं बैठा टुकुर-टुकुर देखता रहा

और तुम साले माल चरते रहे, तुममें से किसी ने इतना न किया कि सेठ से कहकर एक पत्तल इधर भी डलवा देते।"

"तो ठाकुर हैकें तुम का खाते ? जि तौ बामनन को काम है।"

"मैं नहीं मानता, ठाकुर के भी वैसा ही मुँह है जैसा बामनों के, उनको क्या कम स्वाद लगता है और तुमको ज्यादा, सब गलत बात है।"

"तो या में का है, तुमउ नाऊ बारी के पास बैठ जाग्रौ करौ, एक पत्तल मिल जाग्रौ करैगी।"

ठाकुर और भी भभक उठा। ललिता प्रसाद ने हाथ पकड़कर शान्त करते हुए, जेब से एक बीड़ी निकाली और बोला—

"लेउ बीड़ी पियौ, यामें का रक्खौ है, आगे सूँ एक परोसा कौ इन्तजाम है जायगौ।"

ठाकुर बीड़ी पीता वहीं चबूतरे पर बैठ गया, एक कश खींचकर बोला—

"मैं कुछ नहीं मानता, न गंगा को मानता हूँ न तुम्हारी देवी को।"

"तो देवी को चढ़ाग्रौ लेउगे ?"

"मुफत में मिलता है तो क्या छोड़ दूँगा ?"

"मुफत-उफत की बात नायें, बात तो बामन-ठाकुरन की है। हमने तो सिरफ याई गाम में ठाकुरन कूँ देवी कौ चढ़ायौ लेत देखौ है, तुम जानौ ठाकुर, जि तौ बामनन कौ काम है।"

गुस्से में ठाकुर खड़ा होकर बोला—

"बामन क्या साले दूसरी जगह से पैदा होते हैं, और ठाकुर दूसरी जगह से, क्या फरक है हममें और तुममें ?"

दूर बैठे हुए एक लड़के ने कह दिया—

"बामन परमेसुर के मुख सों भये हैं ठाकुर।"

इसी समय और लोग आ गए, चबूतरों और पास पड़े तख्तों पर बैठ गए। ठाकुर फिर भी बड़बड़ा रहा था। लोगों ने उसकी बातें अन-सुनी करके आपस में बोलना शुरू कर दिया। ठाकुर थोड़ी देर बाद

उठकर चला गया तो एक ने कहा—

"याय ठाकुरैं बड़ी जलन है, लोग बामनन कूँ क्यों खवावैं हैं, क्यों पूजें हैं। देवी कूँ पत्थर माने है और चढ़ाये कूँ मूड़ फोरे है।"

"ठाकुर क्या करें, भूखे मर रहे हैं, काम होय नहीं है, तुम जानों, जिमींदारी जब से गई तब से इनके और बुरे हाल हैं।" दूसरे ने गम्भीर होकर जवाब दिया।

तीसरे ने नशे में धुत्त होकर अँगड़ाई ली, तो चौथा बोला—

"गौनों करायले, चर्राबे क्यों है ?"

"जात के बाद जांगो, रह्यौ नायँ जाय, कछु पैसउ तो होंय गांठि में। परसादी से कई ही रबड़ी लै कै सीधौ अइयो, अभी लौटोई नायँ, याकौ सिर फोरूँ। नसा तेज है रह्यौ है।"

"अरे आ जायगौ, मरौ क्यों जाये ?"

नशे में धुत्त बैठे हुए उसने देखा, परसादी रबड़ी का दौना लिये हुए आ रहा है, तो गंगाचरण ने दूर से पुकारकर कहा—

"रबड़ी लैबे गयौ हो, कै ब्याह करायबे, यहाँ नसापत्ता में पेट धधकि उठौ, ला जल्दी।" परसादी ने चुपचाप दौना दिया तो गंगाचरण वहीं बैठा-बैठा सब चाट गया। पास रखे लोटे से हाथ धोकर धोती से पोंछ लिए और एक आदमी से बीड़ी माँगकर पीता हुआ टीले से नीचे उतर गया।

रात बढ़ रही थी, आरती करके धीरे-धीरे पुजारी आया, तो ललिता प्रसाद ने पूछा—

"कुल कितनौ बनौ ?"

"पचास रुपैया। बीस तो मैंने अलग छिपाय लीन्हें, तीस बाँटे।"

"तो दस मोकूँ दे, ला।"

"दो मैं और लंगौ।"

"क्यों ?"

"हुसियारी के नायँ देउगे ?"

"काये बात की हुसियारी, हमऊ तो आधे देते।"

"बड़ी मुसकिल सूँ बचाये हैं। ठकुरा गिद्ध की तरें देखत रह्यौ ह्वो। मैंनेऊ कई, सारे तेरे जैसे तो मैंने टाँग के नीचे सूँ निकारि दये हैं, लेउ आठ और लेउ।"

ललिता प्रसाद ने आठ रुपये अंटी में खोंसे और पुड़िया में से एक पान निकालकर खाया।

"जमानौ बड़ौ खराब है, हुसियारी सूँ न रहौ तो सब चबाय जायँ। दिन-भर मेहनत हम करें, रात कूँ मन्दिर में हम रहें, रखवाली हम करें, और ले जायँ जे ठकुट्टा।"

लछमन चुपचाप बैठा रहा, ललिता फिर भी बड़बड़ा रहा था। दो कुत्ते आकर उनके पैरों के पास बैठ गए। ललिता प्रसाद उठकर गया और चार पूरी दोनों को डाल दीं। दो-दो लड्डू दोनों खाने लगे। उसने बताया सेठ जब ब्राह्मणों को भोजन करा रहा था, और सेठानी भोग लेकर मन्दिर में गईं तभी मैंने दस-बारह लड्डू और पूड़ी निकालकर चुपके से आलमारी में रख दिए थे। लछमन का जी लड्डू खाकर न भरा तो वह मन्दिर के एक कोने से एक पत्तल में कुछ पेड़े और पूरी ले आया। ललिता प्रसाद कुएँ से पानी भर लाया। दोनों ने डटकर भोजन किया। लछमन बाकी बचा कपड़े में बाँधकर घर ले गया। ललिता प्रसाद मन्दिर की रखवाली के लिए दालान में चटाई पर लेट गया।

ललिता प्रसाद बूढ़ा नहीं है, पर दाँत गिर गए हैं। काठी काफ़ी कड़ी और मेहनती है। उम्र चालीस-पैंतालीस के बीच। बचपन में बाप ने संस्कृत पढ़ाई तो मन न लगा। पाठशाला गाँव के बाहर गंगा के किनारे थी। सबेरे दो रोटी पोटली में बाँधकर ले जाता और वहीं दस बजे के लगभग गंगा नहाने के बाद अचार या नमक से खा लेता। फिर इमली तोड़ता-खाता घर लौट आता। मौसम के दिनों में कभी-

कभी खेतों से कपास के टोंटे तोड़कर उसके बदले गुड़ से रोटी चलती। वह ललिता का आनन्द का दिन होता। बाप माता के मन्दिर का पुजारी था। वह समझता, लड़का शास्त्र-पारंगत हो रहा है, बस, कुछ ही दिनों में पाणिनि या पतंजलि बन जायगा। कहने को ललिता पाठशाला जाता, पर घाटों पर यात्रियों से पैसा माँगता और चुपचाप ठीक समय पर घर लौट आता। एक दिन अचानक शाम को गाँव में आये गुरुजी से पूछने पर मालूम हुआ कि ललिता महीनों से दिखाई नहीं दिया। बाप मंगली ने घर आकर खाना खाते लड़के को देखा तो मन्दिर में कुत्तों की रखवाली करने वाले डंडों से धुन डाला। उसकी आदत फिर भी न सुधरी। उम्र के साथ शरीर मजबूत हुआ, कद उठा तो उजड्डपन बढ़ा। चौड़ी छाती, मजबूत पुट्ठे और बेफिक्री के माल ने ललिता को रसिया बनने के साथ उच्छृङ्खल और अशिष्ट बना दिया। बाप तो जैसे उसका दोस्त हो गया। माँ को उसने कभी सेंटा ही नहीं और एक दिन पड़ोस की लड़की को लेकर भाग गया। पर वह, इस ज्ञान में मूर्ख, स्टेशन पर ही पकड़ लिया गया।

आखिर घाट पर चटाई बिछाकर चन्दन, रोली, गंगारज, कंघे, शीशे के सामान के साथ वह स्वयं हल्दी मिले पीले चन्दन की मछली माथे पर बनाने में सारे घाट पर प्रसिद्ध हो गया। मन्दिर की पूजा से उसे घाट पर बैठने में अधिक सुख मिला। चन्दन में कपूर मिलाकर उसे ठंडा और खुशबूदार बनाना उन घाटवालों में इसका सर्वप्रथम आविष्कार था। सवेरे ही भाँग का गोला चढ़ाकर, सरसों के तेल में डूबे बाल काढ़कर और सारी देह में चन्दन गंगारज पोतकर जब वह घाट पर बैठता तो उसका मजबूत और साँवला शरीर रामायण में वर्णित लंका के किसी शिवभक्त का चित्र उपस्थित कर देता। डोरे पड़ी, लाल-लाल कजरारी आँखों में अकड़ के साथ-साथ मूर्खता और उजड्डपन झाँक उठते। ज्ञान की नींव में उसे एक अधूरा संकल्प और पाँच-सात 'गंगा-लहरी' के श्लोक याद थे।

एक दिन गाँव का एक आदमी उसे ब्याह कराने ले गया तो उन पाँच-सात श्लोकों और संकल्प के सहारे उसने वर-वधू को पार पहुँचा दिया। उसके वे श्लोक श्राद्ध में, मरे हुओं के पिण्डदान में भी सहायता करते, सत्यनारायण की कथा बनकर यजमान की कामना पूरी करते। उसे गाने का शौक बचपन से ही था। गला बहुत अच्छा तो न था पर ऐसा बुरा भी नहीं कहा जा सकता। अकेली-दुकेली स्नानार्थी औरत के सामने उसका सामगान फूट उठता—

"तुम हमें देखो न देखो हम तुम्हें देखा करें।"

साथ ही 'जय गंगे' की धुन से तमाम नहाने वालों पर वह अपनी भक्ति की धाक बैठा देता। एक दिन मंगली ने दूसरे गाँव से लाकर रीछ के साथ बंदरिया बाँध दी। इधर-उधर चरने वाला सांड बैल बनकर गृहस्थ की गाड़ी में जोत दिया गया। घाट पर मामूली दिनों में चार-पाँच आने, कुछ आटा, गेहूँ, चना, गुड़, बाजरा, मक्का, सतनजा मिल जाता। मेले के दिनों में अधिक आमदनी हो जाती। कभी कोई यात्री भोजन करा देता, तो दही, पेड़ा, बूरा, पूरी और लड्डुओं पर हाथ साफ करते उसका पेट 'ब्लेडर' की तरह तन जाता। साँस की नालियाँ भारी हो जातीं। फिर भी ललिता के प्राण भोज्यान्न के अमित आनन्द में धन की ढेरी पर सांप की तरह साँसों के फन फैलाए निकलने का नाम न लेते। थोड़े ही दिनों में गांव में भोजन के मैच की टीम में वह 'फर्स्ट इलेवन' में आ गया। कसरत और भाँग, यही उसके दो मित्र थे। सृष्टि के निर्माण में ब्रह्मा के आदेश का पालन करते हुए यद्यपि उसने अपनी तरफ़ से कोई कोर कसर नहीं रहने दी, पर धरती ने उन्हें अपनाया ही नहीं, तो वह क्या करता। तेरह की सृष्टि में तीन बचे—एक लड़का और दो लड़कियाँ। ललिता ने चाहा, यदि वह लड़के को अंग्रेजी पढ़ाकर वकील बना सके तो क्या गाँव उसकी भृकुटी का तेज सह सकेगा—नहीं। इसी उद्देश्य से उसने थोड़ी हिन्दी के बाद पास के कस्बे में लड़के को अंग्रेजी पढ़ने बिठा दिया। पर पिता का

अनुगामी यशस्वी पुत्र पाँच साल के निरन्तर प्रयत्न से जब एक भी क्लास आगे न बढ़ा तो पिता को मजबूर होकर, अपने हृदय से पुत्र के वकील बनने की 'कील' उखाड़ लेनी पड़ी। हारकर एक दिन शुभ मुहूर्त में उसे अपने पास ही तख्त बिछाकर घटवालिया बना लिया। पुत्र को किसान बनने की धुन थी, उसे इस काम से घृणा थी। उन्हीं दिनों लोगों ने देखा, उसने आध बटाई पर एक खेत ले लिया है। आम के मौसम में उसने बाग ले लिया और आम बेचने लगा। बाप की मृत्यु के बाद ललिता ने मन्दिर की पूजा द्वारा अपना जन्म सुधारने का निश्चय किया। अब वह ठेके पर मन्दिर का पुजारी था। उससे बहुत आमदनी तो नहीं थी, फिर भी पेट भर जाता था।

ललिता ने जीवन में रोटी-दाल को कभी भोजन नहीं माना। उसकी दृष्टि में पूरी, कचौरी, लड्डू, मध्य स्तर के भोजन थे और रबड़ी पेड़ा, खीर उच्च स्तर के। इसलिए हर सवेरे उसकी कोई कामना जागती तो वह स्वर्ग की उसी आखिरी सीढ़ी पर पहुंचने की, जहाँ जाकर उसके पितर भी तृप्त होते रहे हैं। कपड़े का महत्त्व उसे कभी भी अपनी ओर नहीं खींच सका। इसलिए, भोजन के समय जैसे अन्न को मक्खियों, कुत्तों से बचाना आवश्यक है, इसी तरह पेट की सुरक्षा के लिए उसने कपड़ों के महत्त्व को स्वीकार किया। लड़का रामधन बहू के साथ अब घर का मालिक बन गया। ललिता, पत्नी की मृत्यु के बाद से रात को मन्दिर में ही रहने लगा था। इससे दूसरे पुजारी गंगाचरण को भी सुभीता हो गया। अब वह रात में घर पर रहता। एक तीसरा पुजारी था—संग्रहणी का रोगी लछमन, जो बीमारी के मारे केवल दिन में ही आता, बाकी समय घर में पड़ा या तो मक्खियों की संख्या गिनता या फिर जंगल की धरती को अपने पेट का प्रसाद बाँटता रहता।

उस चतुर्दशी की रात में अंधेरा अपने पूर्ण यौवन पर था। अंधेरे में चमकती काने बैल की आँख की तरह मन्दिर के दरवाजे पर कड़वे तेल का दीया अपने अस्तित्व के लिए लड़ रहा था। सि[illegible]ों के

उसके सारे अवयवों को जैसे अंधेरे ने पी लिया हो। मन्दिर के मुख्य द्वार पर दो कुत्ते चौकसी कर रहे थे। मामूली तौर पर और समय सोने से पहले ललिता प्रसाद मुख्य द्वार बन्दकर देता, पर आज न जाने क्यों वह चुपचाप चटाई पर जा लेटा। अलमारी से उसने न बिस्तरा निकाला, न लोटा ही पानी का भर कर रखा। वह नशे में सुस्ताने जो लेटा तो सो ही गया। उस समय मन्दिर में उसकी नाक हारमोनियम बजा रही थी। पहले तो स्वाभाविक रूप से ललिता-प्रसाद की नाक के सरगम पर कुत्ते चौंके, गुर्राए; फिर अपनी पहचान की भूल पर शर्म के मारे चुप हो गए। फिर भी गाँव के कुत्तों के प्रास्ताविक व्याख्यान सुनकर वे कभी-कभी अपनी ओर से संशोधन पेश कर देते। अन्य मूक प्राणियों में 'लेह्य' की एकान्त तलाश में सूअर कभी-कभी आपस में घुरघुरा उठते। कभी मचान से अधनींदे किसानों की चेतावनी-भरी ललकार सुनाई दे जाती, जिससे झाऊ के झुण्ड में भागती नीलगायों की सुरसुराहट प्रखर हो उठती। एक तरह से सब ओर चुप्पी थी। मन्दिर के नीचे बहती हुई गंगा की लहरें भी ऊंघ रही थीं।

न जाने कब तक ललिता औंधा-नींदी में पड़ा रहा कि इतने में कुत्ते गुर्राये, परन्तु हल्की डपट सुनकर चुप भी हो गए। ललिताप्रसाद अब भी हवा को अपनी सांसें बाँट रहा था। वह तो जैसे ब्रह्माण्ड में चेतना-तन्तुओं को छिपाये सांसों की उलट-बासी पढ़ रहा हो।

"ललिता, ओ ललिता," धीरे से एक आवाज आई।

ललिता फिर भी खुर्राटे ले रहा था, अन्त में हिलाने पर उसके सुप्त प्राण लौटे।

"कौन ?"

"मैं हूँ, सो रहा है ?"

"हाँ" कहकर उसने करवट बदली, "तू !"

"हाँ" कहकर वह पास ही चटाई पर बैठ गई।

'बड़ौ अंधेरौ है।"

"मुझे अंधेरे में भी दीखता है।"

"आज ब्राह्मण भोजन हते, मैंने सोची तोऊ बुलावतो पर फुरसती नायँ मिली, कछु खायगी ?" कहकर ललिता अलमारी में से लड्डू, पेड़े और पूरी निकाल लाया। दोनों ने मिलकर खाया। खाते-खाते चमेली बोली, "मुझे भी फुरसत नहीं मिली और मिलती तो भी क्या आती ? रिपुदमन, मंगनिया, होती, खेरापत गंगापुर गये हैं।"

"क्यों ?"

"तू नहीं जाने, जैसे तू तो बिलकुल भोला है।"

"समझि गयौ, तेरो कितनौ हिस्सा है ?"

"चार आने, मैंने कही, मैं बताती हूँ, रखवाली करती हूँ तो चार आने से कम न लूँगी।"

"तो मानि गए ? देखि, काऊ दिना पकरी गई तो फाँसी पै धरी मिलैगी। तेरे है ही कौन जो इतने फरफन्द रचै है, घाट पै बैठेई है। मोय तो तेरो काम पसन्द नायँ चमेली !"

चमेली ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह खाकर मुँह पर हाथ फेरने लगी। चटाई पर गिरे अन्न को अन्दाज से साफ करते हुए, उसने जेब से बीड़ी निकाली और पीने लगी। फिर बोली—

"आता रुपया किसे बुरा लगता है ललिता, मैं तो डाका नहीं डालती। पकड़े जायँगे, फँसेंगे तो वे ही। जिस दिन ऐसा होगा सारे हथियार और गहना गंगा में फेंक दूँगी।"

"तो तोय इतने रुपैयन को करनो का है, अकेली जान ?"

"चमेली जान।" कहकर चमेली हँस दी। "मैं जाती हूँ, जरूरी जगह जाना है।" वह उठी तो रुककर बोली, "बाप-बेटों में से किसको चुनूँ ललिता ?"

"क्यों ?"

"रामधन की आँखें खराब हो रही हैं, जब-तब मुझसे मसखरी करता है।"

"मैं तो वासूँ बोलतउ नाऊँ, मेरे जान तो वु मरि गयौ। वा दिना वाकी औरत ने मेरी बेइज्जती कर दई।"

"खैर, मैं उसे ठीक कर दूँगी। तू चिन्ता मत कर। यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है। चमेली कच्ची गोटियाँ नहीं खेली है।"

ललिता हँसकर बोला, "यामें का सक है, नौ सौ चूहे खाये भई है।"

दोनों बाहर आ गए। बिदा होते-होते चमेली ने कहा—

"बद्रीनाथ, जगन्नाथ, द्वारिका चलेंगे ललिता!"

"मैं तौ नंगौ हूँ चमेली, सौ-दो सौ सें तो कछु है नायँ सकै।"

"मैं किसलिए हूँ, तू परवा मत कर!"

चमेली अँधेरे में गायब हो गई, ललिता बिस्तर बिछाकर लेट गया। चमेली से रामधन की हरकतें सुनकर पहले तो उसे बड़ा गुस्सा आया पर भाँग के नशे की नपुंसकता में धीरे-धीरे शान्त हो गया। उसने सोचा, यही कौन अच्छी है, न जाने कहाँ-कहाँ खेलती रही है, क्या-क्या किया है इसने। उसे वह दिन याद आया, जब वह एक बार उसे लेकर भागा था और स्टेशन पर ही पकड़ लिया गया था। यही सोचता वह सो गया।

चमेली ललिताप्रसाद से बिदा होकर गंगा के किनारे-किनारे गहरे खारों में उतरती-चढ़ती लगभग एक मील दूर एक झोंपड़ी में घुस गई। उसमें बहुत ही हल्का एक दीया जल रहा था। एक ओर चटाई बिछी थी। उसी पर कम्बल बिछाये एक आदमी लेटा था। चमेली के घुसते ही उसने उचककर पूछा, "कौन?"

"चमेली। अभी नहीं आये?"

"आते ही होंगे," कहकर वह उठा और बाहर जाकर बरोसी से चिलम में आँच रख लाया। दोनों चिलम पीने लगे।

"सुलफा नहीं है?"

"खतम हो गया। एक चिलम का था, सो लोग पीकर चले गये।"

"हूँ, राँड चिलम मैं नहीं पीती, तू ही पी।"

वह व्यक्ति चिलम पीता हुआ बोला—

"राँड को राँड कैसे अच्छी लग सकती है चमेली ?" कहते हुए वह मुस्कराया।

"तू क्यों नहीं गया ?"

"तू ही समझ ले।"

चमेली चुप बैठी रही, वह व्यक्ति ज़रा पास सरककर बोला, "चमेली !"

चमेली फिर भी चुप रही। थोड़ी देर बाद उसने कहा—

"दूर हट के बैठ।"

वह और भी निकट आ रहा था। चमेली ने आव देखा न ताव, कसकर एक चांटा उसके मुँह पर जड़ दिया और दूर हटकर बैठ गई।

वह आदमी थोड़ी देर चुप रहकर चमेली पर जा टूटा। वह भी कम न थी, तड़ातड़ हाथ के मोटे कड़ों से उसे मारने लगी। जहाँ पाया काट लिया, दोनों में काफी देर तक मिसमिसी लड़ाई होती रही। उस झोंपड़ी में तेज सांसों के सिवा चांटों और मुक्कों की आवाजें आ रही थीं। चमेली टाँग से उसे घसीटकर बाहर ले गई और तड़ातड़ दो-तीन लातें जमाती बोली—

"ले और ले मरे, चख लिया मज़ा ?" लौटकर चटाई पर आ बैठी। वह आदमी बाहर पड़ा गाली देता रहा।

"देख लूँगा, डायन है डायन।"

चमेली फूली हुई सांसों से कह रही थी—

"भीतर पैर रखा तो मरे, खोदकर गाढ़ दूँगी।"

एक-डेढ़ घंटे बाद कुछ आदमियों के पैरों की आहट सुनाई दी। वे एक-एक करके झोंपड़ी में घुसे। हथियार उन्होंने पेड़ के नीचे गड्ढे में कपड़े में लपेटकर रख दिए और मिट्टी डालकर गढ़ा बराबर कर दिया। चमेली ने दीये की लौ ऊँची कर दी। एक ने अंटी में से

सुल्फा निकालकर बाहर पड़े आदमी से भरने को कहा और चटाई पर लूट का सामान फैला दिया गया।

"आज अच्छी बौहनी नायँ भई।"

"बनिया होता तो कुछ मिलता, औरतों से क्या मिलेगा?"

"एक हजार का माल तो होगा ही।" कहकर पहले ने गहने-रुपये अलग-अलग किये। दूसरे ने टार्च जलाकर गिना। एक सौ अड़तालीस रुपये चार आने के अलावा सोने-चाँदी के गहने थे। रूपा को आवाज लगी, "ले गला जल्दी से।" सब चिलम पीने लगे। रूपा ने कोने में पड़े कोयले सुलगाकर धोंकनी चलाना शुरू कर दिया। थोड़ी देर में सोना-चाँदी अलग-अलग करके गलाया और टुकड़े करके सबमें बाँट दिया गया। घंटे-भर के बाद चटाई और दीये के सिवा वहाँ कुछ नहीं था।

चमेली ने पोटली धोती की गाँठ में बाँधकर खोंस ली और सीधी घर पहुँची। उस समय ढाई-तीन का समय होगा। पाँच बजते-बजते गंगा नहाकर तख्त बिछाया, हुरसा लेकर चन्दन घिसा और माला लेकर राम-राम करने लगी। वह सवेरे सबसे पहले आकर अपने तख्त पर चन्दन तैयार करती और माला लेकर बैठ जाती। सबेरे नहाने वाले यात्रियों में सब उसे अच्छा समझते। शक्ति-भर आटा, चावल, गुड़, जो कुछ बनता देते और तिलक लगाकर चल देते। देर से आने वाले घाटिये उससे ईर्ष्या करते। कभी-कभी कोई मज़ाक में कह बैठता—

"चमेली, तू इतनी कमाई कौ का करैगी, आगे नाथ न पीछे पघा। सबेरौ भयौ नईं कें आय गई।"

चमेली जवाब देती, "भैया, इतना आता ही कहाँ है, थोड़ा-बहुत मिलता है उसी में गुजारा करती हूँ। न जाने कितनी जिन्दगी है। हारी-बीमारी में तुम्हीं लोगों का सहारा है, मर जाऊँ तो गंगा में फेंक देना।"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं?" एक कहता।

"तू मोय अपनौ बारिस बनायलै चमेली !" दूसरा कहता ।

"तुम सभी तो मेरे बारिस हो, सब-कुछ तुम्हारा ही तो है ।" चमेली जवाब देती ।

चमेली खड़ी बोली में बात करती तो लोग कहते—

"फारसी बोलै है चमेली ।"

दूसरा जवाब देता, "अरे दुनिया देखे भई है । कौन-कौनसे गाम में रई है तू ?" उन्हीं में से एक कहता, "गाम नहीं सेहर कह । सेहर में रई है—बम्बई, कलकत्ता, एमदाबाद, जाने कहाँ-कहाँ अपने मालिक के साथ घूमती रई है ।"

"अखीर में गंगा बदी ही, सो गंगा पै आय गई ।"

चमेली अपने सम्बन्ध में उनके प्रश्नोत्तर रोज सुनती और मुस्करा देती ।

एक दिन यात्री नहा-धोकर चले गये थे । घाट वाले मक्खी मार रहे थे कि एक नौजवान घाटवाला उसके तख्त पर बैठकर कहने लगा—

"चमेली, बरसात में मेरौ टपरा गिरि गयौ है, रहवे कूँ जगह नायें, तू कहै तो तेरे ही घर आय रहूँ । थोरे दिनन की बात है । मकान बन जायगौ तो चलौ जांगो ।"

दूसरे ने सुना तो वहीं से हँसकर कहने लगा—

"आदमी बुरौ नायें चमेली, तेरे सब काम करैगौ ।"

चमेली ने जवाब दिया, "नहीं भैया, मैं नहीं रख सकती, मैं अकेली ही भली हूँ ।"

सीधे-सादे घाट वाले मानते कि चमेली नेक औरत है, बेचारी जैसे-तैसे जिन्दगी के दिन काट रही है ।

चमेली बहुत खूबसूरत नहीं थी, पर बुरी भी नहीं थी । मझोला कद, साफ रंग, गोल और लम्बा मुँह, ओठ और नाक पतले, तीखी और नशीली आँखें, उभरा माथा, सुता हुआ शरीर । देखने में आकर्षक ।

तीस-बत्तीस के बीच की उम्र। चेहरे से भोलापन टपकता, पर उसकी तेज आँखों को निरन्तर देखते रहने से लगता, यह स्त्री जैसी दीखती है वैसी नहीं है। गहराई से देखने पर कोई भी समझ सकता था कि इसके मुस्कराने और हँसने के भीतर कुछ और भी है। अपने जीवन के अनुभवों के कारण आदमियों को समझने, उनके भीतर की थाह पाने की उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। आदमियों को खिलाने, उन्हें चकमा देने में उसे आनन्द आता था। उसने शिवचरन से पूछा—

"आजकल तू अकेला ही है क्या, बहू कहाँ गई?"

"पीहर गई है।"

"तो चल घर रोटी खा लेना, मैं चलती हूँ, आ जाना भला।"

चमेली ने खाना बनाया तो शिवचरन पहुँच गया। खाने से पहले हाथ धोने पहुँचा तो घड़े खाली थे। कुएँ से घड़े भरे और खाने बैठा। उसी ने बरतन माँजे, चौका फेर ही रहा था कि ललिता ने घर में प्रवेश किया। देखकर बोला—

"शिवचरन!"

चमेली ने खाट पर लेटे-लेटे उत्तर दिया, "माँ की सेवा कर रहा है, क्यों?"

"कुछ नहीं, पूछी हो, कैसी तबियत है।"

"तेरी तबियत खराब हो गई है, इसे देखकर।"

"नायँ तो।" ललिता चौंका, जैसे पकड़ा गया हो।

"ललिता जा, भीतर से दरी-तकिया तो उठा ला।"

ललिता बाजार जा रहा था, अचानक इधर लौट पड़ा। उसने दरी बिछा दी, तकिया लगा दिया। चमेली फैलकर लेट गई—

"अब तुम दोनों जाओ, मैं सोऊँगी।"

शिवचरन अब बेदाम का गुलाम था। सुबह-शाम आकर घर-बाहर के सब काम करता, रोटी बनाता।

एक दिन ललिता ने आकर देखा, शिवचरन चमेली की धोती

साबुन से धो रहा है, और चमेली खाट पर बैठी रामायण पढ़ रही है। ललिता वहीं आकर खाट पर बैठ गया। उसकी आँखों में प्रश्न था। थोड़ी देर बाद चमेली ने शिवचरन को पान लेने भेज दिया।

"पूछ अब, क्या पूछता है ?"

"जि का है ?"

"क्या ?"

"शिवचरन।"

"नौकर।"

"नौकर ?"

"हाँ।"

"गाँव में बदनामी है रई है, लोग कहै हैं शिवचरन कूँ कर लीनो है।"

"क्या कर लिया है ?" चमेली ने कड़ककर पूछा।

ललिता गुस्से में भरा बैठा था, उसने उसी तेज़ी में जवाब दिया, "खसम, और का।"

"खसम धोती धोता है ?"

"पर जि है का ?"

"इच्छा का दास। उसकी इच्छा है, मेरी सेवा करे सो कर रहा है। तुझे क्यों जलन है ?"

"मोय जलन कायेकू होती।" ललिता ने तुनककर जवाब दिया।

"तू तो ललिता है न ?"

"हाँ, सो तो हूँई।" कहकर ललिता मुस्कराया।

चमेली ने पैर बढ़ाकर टखना मसलते हुए कहा—

"बड़ा दर्द होता है कभी-कभी। तेल भी मसला, आराम फिर भी नहीं है।" वह मसलती रही। ललिता ने देखा तो उसका हाथ हटाकर खुद मसलने लगा। इसी समय शिवचरन भीतर घुसा, देखा ललिता चमेली के पैर मसल रहा है। चमेली ने पैर हटाते हुए कहा, "बस

कर। इतनी जोर से मला कि जलन होने लगी।" ललिता शिवचरन को देखकर शरमा गया।

विक्रमसिंह की चौपाल पर कुछ ठाकुर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। एक मूढ़े पर नौजवान लड़का बार-बार मूँछों पर ताव देता सिगरेट पी रहा था। वह एकाएक सिगरेट की राख झाड़कर बोला—

"आपकी बात मैं मानता हूँ। ठाकुरों की अब वह इज़्ज़त नहीं रही जो किसी जमाने में थी। अब तो उन्हें दूसरों के कंधे-से-कंधा मिलाकर अपनी लियाकत दिखानी होगी। आजकल सरकार फौज में उनको भी भरती कर रही है, जिनके बाप-दादों ने कभी बन्दूक नहीं उठाई।"

गजाधरसिंह बोला, "यही तो खराबी है। जब बनिये-बक्काल और नीच लोग फौज में भरती होने लगेंगे तो हमें कौन पूछेगा! नहीं तो इन्हीं छत्रियों ने राज किया है। मैं तुमसे कहे देता हूँ, गजाधरसिंह झूठ नहीं कहता, आगे भी ये ही राज करेंगे। ये राज के लिए ही पैदा हुए हैं।" कहकर ज़ोर से हुक्के का कश खींचा और ऊपर धुआँ छोड़ते हुए हुक्के की नली साथी को दे दी। धुआँ फैलकर छप्पर के फूंस से टकराकर इधर-उधर फैल गया, जैसे कहने वाले की बात भी उड़कर हवा में फैल गई हो। गुड़-गुड़ की ध्वनि देर तक जैसे जवाब देती रही।

विक्रमसिंह ने देखा, ठाकुर लोग सारा तमाखू जोर से कश लेकर फूँके दे रहे हैं और वह बेवकूफ बना देख रहा है। उसने तेजी से दूसरे के पीते हुए भी, हुक्के के लिए हाथ बढ़ाया। पर दूसरा तो जैसे तमाखू का दम निकाल देना चाहता था। उसने जोर से साँस के साथ दम खींचा तो चिलम में आग की 'लौ' उठी। इसके साथ ही धुआँ छोड़कर बेभाव खांसने लगा। विक्रम ने झल्लाकर कहा, "ठाकुर को हुक्का कभऊँ पियो नायें, धीरे-धीरे पियो भलेमानसो।" इसके साथ ही उसने

जो दम खींचा तो जले तमाखू से उसका मन बिगड़ गया। वह उठा, चिलम उलटकर नई तमाखू भरी और अपने-आप पीने बैठ गया। खाँसने वाला अब भी खाँस रहा था। उसने उठकर दो-तीन बार कफ़ थूका, पर खाँसी अब भी कम नहीं हो रही थी।

"मैं''''मेरी समझ में''''खौ-खौ-खौ''''वह खाँसता रहा।

"इतना क्यों कश खींचा, जो दम निकल रहा है?"

"देखि भर लें हुक्का, फिर सारे कूँ छोड़िंगे थोरेई, जिही या ठाकुर में खराब बात है।"

"मुफ्त के माल में विश्वास करतें ठाकुर।"

"अरे रे ए ए खौ खौ''''"

"बैठि जाओ, पिरान काये को दै रये हो। बैठो, जब नायँ पचै तो काये कूँ इतनो पीवतो ठाकुरो?"

जैसे-तैसे खाँसी कम हुई तो ललचाई आँखों से सरदारसिंह फिर हुक्के की तरफ देखने लगा। लेकिन विक्रमसिंह ने हुक्का नहीं छोड़ा। वह लहलहाती तमाखू पीता रहा। जी भरकर पीने के बाद उसने लोटनसिंह को हुक्का देते हुए कहा—

"मैं कहता हूँ ये बड़ी अजीब बात है, ये बामन ही पूजा करने के वास्ते रह गये हैं। भोजन होयं तो बामनों के, दान का मौका आवे तो ये लें। मैं तुमसे पूछता हूँ, माता का मन्दिर ठाकुरों का है कि नहीं? जितना चढ़ावा चढ़े वह सब साला ठाकुरों को मिलना चाहिये। लेकिन बिरचो खायें तो ये बामन और हम तो टुकुर-टुकुर देखते रहे हैं। उस दिन एक बनिये ने माल खिलाये तो हम सालों को किसी ने नहीं पूछा, हालांकि हम भी वहीं थे।"

"सुनो विक्रमसिंह, यह काम छत्रियों का नहीं है। अव्वल तो येई गलत है कि हम चढ़ावा लेते हैं। हमें क्या हक है कि हम चढ़ावा लें, हम कोई भिखारी हैं?" गजाधरसिंह ने विक्रमसिंह को डांटा।

"तो तुम्हारा क्या है माता पै, माँगो भीख, अब तुमपै है ही क्या,

जिमींदारी तुमपै है नहीं, और तुम जानो साब, गाम तुम्हारे पास नहीं रहे, व्यापार तुम नहीं करते, ऊँचे हौदे की लियाकत तुममें है नहीं, तो अब भूखे तो मरोगे ही।"

"पढ़ाते क्यों नहीं हैं आप अपने बच्चों को," नवयुवक ने टोककर कहा।

"बच्चों को तो पढ़ावें, पर ये बूढ़े क्या करें, बूढ़े तोते तो नहीं पढ़ सकते, इनको भी तो आध सेर अनाज चाहिये ही और फिर जो कभी बाहर नहीं निकलीं ठकुरायिनें, उनका क्या हो ? क्या वे भी बाहर निकलें, भीख मांगें, काम करें ? तुम बताओ, ये अब कैसे होय ?" जोर से जाँघ पर हाथ की थाप देकर बोला, "विरचो बड़ा बुरा वखत आ गया है, इस सुराज में सुसरी सब मुसीबत जिमींदार पै पड़ी है।"

"तो समय के मुताबिक अपने को तैयार करो, यह तो तयशुदा है, जिमींदार और राजा लोग अब नहीं रहेंगे।" नवयुवक ने सिगरेट फेंककर एक और जलाई।

गजाधरसिंह ने धीरे से कहा, "सुना है रिपुदमन, मगनियाँ के साथ रात को""क्या करें, पेट तो भरना ही पड़ेगा। कहीं किसी दिन सारे गाँव पर मुसीबत न पड़े।"

सरदारसिंह अब स्वस्थ हो गया था, बोला, "उस चमेली को जानो हो न ?"

"अरे चमेली को कौन नहीं जानता, वो गिरवरा बामन की छोरी जो आसमान में थेगरी लगावै है ?"

"हाँ वही तो, वही तो सरदार है इसकी, उसीका हुकम है। घाट पर बैठेगी तो लोगों पर डोरे डालेगी। रिपुदमन भी वहीं जाय है।"

"सुना रात-भर कौड़ी फिकीं, कोई सेठ आया है।"

"भला जी !" विक्रम ने चौंककर पूछा।

"उस साले को खूब लूटा, क्या याद करेगा वह भी कि कहीं गाँव में आया था। सब धरा लिया यार लोगों ने और चूतड़ पै लात मारकर

निकाल दिया।"

"तुम्हें कैसे पता लगा ?"

"कहना मत, रिपुदमन के घर वालों ने मुझसे कई थी।"

"सेठ अब कहाँ है ?"

"गाम की धरमशाला में धरौ है। कहै है गंगा नहाने आयौ हूँ।"

"फिर ?"

"फिर क्या, सुने हैं, सही-गलत भगवान् जाने, चमेली पै लट्टू है।"

"उस बुढ़िया पै।"

"अरे, अब भी उसपै जुवना बरस रहा है ठाकुर, तुमने देखी नई है।"

उसी समय चौपाल के बाहर रिपुदमन हाथ में मिठाई का दौना लिये घर जाता दिखाई दिया तो विक्रम ने आवाज लगाई—

"कुँवर रिपुदमनसिंह, कहाँ चले, हुक्का पी जाओ न !"

"फिर आऊँगा, अभी काम है, एक मेहमान आये हैं।"

"कौन मेहमान हैं ?" गजाधर ने पूछा।

"एक सेठ आये हैं, हमारे दोस्त, उनकूँ जलपान करानौ है।"

"तो भलेमानसो, ऐसी क्या जल्दी है, हुक्का तैयार है।"

रिपुदमन अनमने भाव से दौना सँभाले खाट के कोने पर आकर बैठ गया। विक्रम ने हुक्का पेश करते हुए कहा—

"आजकल तो दिखाई भी नहीं देते रिपुदमनसिंह, कहाँ रहते हो ?"

"कहीं नहीं, काम के मारे फ़ुरसती नहीं मिलती।"

"आँखें लाल हो रही हैं, रात-भर सोए नहीं हो क्या ? इतना काम मत किया करो ठाकुर।"

"खेत पै गया था," रिपुदमन ने उत्तर दिया। वह भागना चाहता था पर लोगों ने बातों-ही-बातों में पूछा।

"कौनसे खेत पै ?"

"दूधाधारी वाले पै।"

"वहाँ क्या था ?"

'ऐसे ही तुम जानों बीस झंझट हैं।"

"ये सेठ कौन हैं ?"

"सहर से आये हैं।"

"का करिबे ?"

"गंगा नहायिबे, और का।"

"सुने हैं चमेली के घर रात-भर कौड़ी फिकीं, तुम भी वहाँ थे।"

"कौन कहता है साला ! इस गाम में यही खराबी है, वैसे ही बातें उड़ाया करें हैं। मैं तो था भी नहीं, और चमेली कौन है, मैं तो जानूँ भी नहीं हूँ, कौन है वो ?" रिपुदमन उठा और चलने लगा।

"अरे वोई गिरवरा बामन की छोरी। कुँवर रिपुदमनसिंह, नैक सँभल के रहे करो।"

रिपुदमन चलते-चलते रुका और बोला—

"चचा गजाधरसिंह, रिपुदमन ऐसा-वैसा नहीं है। कोई साला कह तो दे कि हमने किसी की छोरी भगाई है, चोरी करी है, डाका डाला है। क्या किया है, जो तुम ऐसा कहते हो ठाकुर ? गाँव का हिसाब ही साला खराब है, कोई किसी को खाता-पीता देख ही नहीं सकै है।"

"लल्ला, मैंने जो सुनी सो कह दीनी, तुम जानो तुम्हारा काम जाने।" गजाधर ने टोककर जवाब दिया।

"चचा, तुम चिन्ता मत करो, तुम्हारी दया चइये।" कहकर रिपुदमन आँखों से ओझल हो गया। फिर भी यदि कोई पास से देखता तो पाता कि वह भीतर-ही-भीतर एकदम सिहर उठा है, उसका रंग पीला पड़ गया है।

हुक्के का कश खींचकर विक्रम बोला—

"हम सब मिल जायँ तो इन बामनों को माता के मन्दिर से निकाल दें। छः हज्जार की आमदनी है, भलेमानसो, और ठाकुरों में रुपया बँट जाय तो बहुत से घर न पलें, क्यों ऐरे-गैरे खायँ ? मैं तो जब किसी

बामन को देखता हूं तो देह में आग लग जाती है। ये साले बिना बात के हमारा ही माल चरते हैं।"

उसकी बात का किसीने जवाब न दिया। गजाधरसिंह रिपुदमन की बात सोचता रहा। वह उसका दूर का भतीजा था। सरदारसिंह की गिद्धी आँखें हुक्के पर थीं। वह जब मौका पाता नली खींचकर हुक्का पीने लगता। विक्रमसिंह सोच रहा था, मन्दिर से पुजारियों को निकालकर खुद वहाँ बैठ जाय, तो भूखे मरने से बच जाय। नवयुवक सैनिक सिगरेट का धुआँ छोड़ता हुआ सामने के पेड़ पर बन्दरों की लड़ाई देखने लगा। असल में विक्रम के मकान के सामने कुएँ पर औरतों को पानी भरते देखकर उसका मन लग रहा था, वह चुपचाप बैठ दिल बहलाता रहा। गाँव में उसकी ससुराल थी। थोड़ी देर बाद विक्रम का छोटा लड़का पान लेकर आया तो केवल विक्रम और गजाधर ने पान लिये। सरदारसिंह ने दाँत न होने का बहाना किया। नवयुवक सैनिक ने कहा, "मैं पान नहीं खाता।"

"क्यों, बड़ा अच्छा लगा है।" लड़के से कहा, "अरे इलायची नहीं लाया ?"

"इलायची नहीं थी घर में।" लड़के ने जवाब दिया।

"पान आजकल अच्छा नहीं समझा जाता, दाँत लाल हो जाते हैं।"

"तो इसमें कोई बुराई है ?" गजाधरसिंह ने वैसे ही पूछ दिया।

"अफसर लोग बुरा समझते हैं।"

"लो ये और एक नई बात सुनी।" विक्रम ने कहा।

"मालूम होता है, देश की स्वतन्त्रता का गाँव में कोई प्रभाव नहीं पड़ा। न लोगों में उत्साह है, न आगे बढ़ने की इच्छा।" नवयुवक सैनिक ने सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए विक्रम की ओर देखकर कहा—

"सारे देश में नव-निर्माण हो रहा है, सड़कें, मिलें, कारखाने बन रहे हैं, हर तरफ काम-ही-काम है। बरसाती नदियों के बांधों में करोड़ों रुपया खर्च हो रहा है। हमारी सेना के लोग तरह-तरह से जनता की

सेवा कर रहे हैं। लेकिन इस गाँव को देखकर लगता है, जैसे कुछ भी करने को नहीं है। न लाइब्रेरी है, न स्कूल, न हस्पताल की माँग है न कुछ।"

"लिबरेरी, जे क्या भई ?" लोटन ने पूछा।

"जाने का भई !" विक्रम ने हुक्के का कश खींचते हुए गजाधर को दे दिया।

"किताबन की दुकान, चों भैया ?" गजाधर ने ज्ञान बघारा।

"लाइब्रेरी किताबों की दुकान नहीं होती, वहाँ लोगों के पढ़ने के लिए अच्छी-अच्छी किताबें इकट्ठी की जाती हैं, चन्दा देकर लोग मेंबर बन जाते हैं और हर तरह की किताबें घर ले जाकर या वहीं बैठकर पढ़ सकते हैं।"

"क्या रक्खौ है इन किताबन में, मैं तो इतनौ जानूँ, कोई मोय ठग तो ले। एक दिन छोरे ने कही, कक्का, हमें भी स्कूल में भरती करा दो, मैंने कई, सारे, काये कूँ पागल भयो है। क्या रक्खौ है इस पढ़ने में। हल जोत, खेती कर, जो कुछ बचा है, वाइ सम्हार। जिमींदारी तो सुसरी निकरि गई। द्वै सै बीघा के खेत हैं, करो और खाओ। हमनेऊ ज़िमींदारी जात-जात बाग बेचि दये, पेड़ कटवाय डारे, पैसा खड़े कर लये, कुछ ठकुराइन के नाम कर लियौ। मौज-ई-मौज हैं। करलेउ का करौगे। जिनन ने खेत लये हैं, वे जोत तो लें, सारेन कूँ खोदि कें न गाढ़ दऊँ, सूखे खेत परे हैं, जोतिंगे तो हमई। मैंने वा दिन जगना लोधे से कई, 'सारे, खेत में घुसौऊ तो मढ़ैया में आग लग जायगी। एक-एक को नाम-निसान नहीं रहैगो।' तो बोलो, 'ठाकुर जैसे तुम कहोगे वैसेई होयगी।' मैंने कई, 'ता हमारो हिस्सा देतु रै।' अब दस मन में दो मन दैबे की बात ठैरी है। ठाकुर हैं, कोई हँसी-खेलु है।' लोटनसिंह ने गरदन झुकाये वीरता के उतार-चढ़ाव में इतनी बातें कह दीं। नवयुवक की लाइब्रेरी वाली बात ठाकुरों की लंतरानी में न जाने कहाँ लीन हो गई। वह हतप्रभ हो गया। गजाधरसिंह ने कहना शुरू

किया—

"मैं कहता हूँ, छत्री खेत जोतने को पैदा नहीं हुआ है वह तो हकूमत करेगा, हकूमत। एक ज़माना था, इस गढ़ी के ठाकुरों के सामने बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम साले पानी भरते थे। मजाल है कोई चूँ तो कर जाय। एक बार डिप्टी साहब आये तो उन्होंने हमारे दादा ठाकुर मनोहरसिंह को बुलाया। दादा अपने वाहर के दालान में बड़े पलंग पर गावतकिये के सहारे बैठे हुक्का पी रहे थे। दो-तीन दोस्त-अहबाब पास ही कुरसियों पर जमे थे। एक तरफ जमीन पर दस-बारह आसामी उकड़ूँ बैठे थे। हरकारे ने आकर अर्ज की तो दादा ने शराब में अधखुली आँखों से उधर देखा और हुक्का पीने लगे। उसने दूसरी बार अर्ज़ की तो दादा ने कहा, 'जाओ, इस वक्त हम कुछ भी सुनना नहीं चाहते, कोई भी आया हो, हम किसीसे भी कम नहीं हैं।' एक मुसाहिब ने समझाया, 'शाम को आकर अर्ज करना।' बस, उस साले की क्या मजाल कि आगे कुछ कहता, भीगी बिल्ली-सा चला गया और शाम को डिप्टी साहब खुद आये। फिर तो कलट्टर, कमिश्नर, हत्ताकि लाट साहब भी जब इधर तशरीफ लाते तो हमारे यहीं ठहरते। अब क्या है, ज़माना ही बदल गया है, भैया !"

"ज़माना कुछ नहीं बदला गजाधरसिंह, हम ही बिगड़ गए हैं। अब इसीको लो, अगर हम मिलकर मन्दिर पर कब्जा कर लें तो कौन कुछ कह सकता है ! मैं कहता हूँ, मन्दिर के पुजापे पै कब्जा कर लो। एक दफे कब्जे की जरूरत है, फिर हमने जानी, एक-एक को गाढ़ न दिया तो कहना विक्रमसिंह क्या कहता था।"

"गाँव में क्या पंचायत नहीं है ?" नवयुवक ने पूछा।

"है क्यों नायँ," लोटन ने जवाब दिया।

"न सड़क ही ठीक है, न कहीं लैम्प ही हैं रोशनी के लिए।"

"हमें तो सड़क की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती, खार हों, खड्डे हों, मजे से जाते-आते हैं। जिमींदारी तो छीन ली, अब सड़क बनवा

के क्या होगा, और लम्प लगाके रात को क्या देखना है ?" विक्रम ने उत्तर दिया। गजाधर ने गाँव की मूर्खता पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—

"सड़क, ये तुम सामने सड़क में खार देखते हो, कई बार गाँव-पंचायत में अर्जी दी लेकिन सरपंच में और मोहल्ले के एक आदमी में पुरानी अदावत है। पंच क्यों चाहेगा कि उस आदमी को फायदा हो, वह टाल देता है। होता यह है कि बारिश में यहाँ नदी बहने लगती है, निकलना मुश्किल हो जाता है। एक आदमी ने अपने मकान के खडहर से ईंटें लाकर इसे भर दिया। दूसरे रोज देखा कि वहाँ एक भी ईंट नहीं है, रातों-रात वहाँ से ईंटें गायब हो गईं। हमारे गाँव की खूबी यह है कि कोई किसीका भला नहीं चाहता। मुँह पर और, और पीठ पीछे और।"

"वे कौनसे लोग थे जो ईंटें उठा ले गए ?"

"अरे वहीं के लोग, उसी मोहल्ले के।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि पड़ोसी का गिरता मकान बच जायगा। उसे फायदा क्यों हो ? गिर रहा है साला तो गिरे। मकान छोड़कर भाग जायगा तो उनके गाय-बैलों के काम आएगा। न होगा, कंडे ही थापे जायँगे। फिर पड़ोसी का मकान गिरना क्या कम खुशी की बात है ?"

नवयुवक ने सुना तो चुप हो गया। गजाधरसिंह फिर कहने को हुआ तो बीच में विक्रम बोल पड़ा—

"क्यों किसीकी बुराई करो हो ठाकुर, सुन लेगा तो बीस-बीस गाली देगा।"

"मैं किसीका नाम तो नहीं लेता विक्रमसिंह।"

लोटनसिंह चलने लगा तो विक्रम बोला—

"चले ठाकुर ?"

"हाँ और का, हमारी समझ में तो आवें नांय जे तुम्हारी बातें, जे

लल्ला पढ़ि का गए हैं, फौज में नौकर का है गए हैं, गाम कूँ बिगारिबे आय गए हैं, कहे देनूँ जा गाम में कछु नायें होयगो। ह्यां नायें काऊ बातन की जरूरत। में पूछतूँ, सड़क बन जायगी तो का है जायगो ?"

"मोटर चलने लगेगी," विक्रम ने व्यंग में उत्तर दिया।

"हमें नांय तुमारी मोटर की जरूरत, चलाओ जहाँ चले। जे गाम-पंचायत का बनी है, कछु लोगन कौ खायवे-पीबे को इन्तजाम है गयो है। लोग सारे सुपडन्ट समझते अपने कूं" कहकर लोटनसिंह चला गया।

गजाधर उठते-उठते बोला—

"भैया, तुम तो छत्री हो, छत्रियों को बढ़ाओ तभी सब सुधरेगा। ईश्वर ने छत्रियों को राज्य के लिए पैदा किया है। गांधीजी ने भी 'रामराज्य' कहा है, तो छत्रियों में राम जब तक पैदा नहीं होंगे तब तक कुछ भी नहीं होगा। आजकल न जाने क्या नाम है, इस राज्य का ? क्या कहते हैं ? साला नाम भी तो नहीं आता।"

"प्रजातन्त्र।" नवयुवक ने कहा।

"प्रजातन्त्र क्या, यानी प्रजा का राज ? तुम्हीं बताओ कहीं प्रजा भी राज कर सकती है ? गलत है, एकदम गलत।" गजाधर लकड़ी उठाकर चला गया। नवयुवक उठने लगा तो विक्रमसिंह बोला—

"देखी तुमने, सब ठकुरा अपनी-अपनी हाँक गए, मेल ही नहीं है। मन्दिर पै कब्जा कर लो तो छः हज्जार की आमदनी है, कम है क्या ? तुम्हीं कहो, कोई साला सुनेई नहीं है। इन ठाकुरों के भीख माँगने के दिन आ गए हैं। ये लोटन बड़ा ठाकुर बना फिरे है, दो साल हुए इसकी छोरी को उसके खसम ने निकाल दिया तो साब, थोड़े दिनों के बाद किसी के साथ भाग गई। बड़ा ठाकुर बना फिरे है। ठाकुर हम हैं, एक भी दाग नहीं है खानदान में। किसीने जेल काटी, कोई चोरी में, कोई डाके में, कोई मार-पिटाई में पकड़ा गया है। एक भी साफ नहीं है, सब दागी हैं, दागी, साले। छत्रिय बने फिरें हैं। इस

गजाधरसिंह के दादा हमारे घर चिलम भरा करते थे ।"

"तो आपके दादा बहुत बड़े आदमी होंगे ।"

"अरे क्या पूछौ हो, हाथी बँधते थे हमारी हवेली में । बन्दूक से लैस चार सिपाही पहरा देते थे, और जब हमारे दादाजी की सवारी निकलती तो ये सब घर से निकलकर जुहार करते थे, और न करते तो गड़वा न देते । ऐसा था उनका रौब ।"

"तो आप मन्दिर पर कब्जा करना चाहते हैं," नवयुवक ने पूछा ।

"अब कही तुमने, मेरा मतलब है, छः हजार किसी के घर क्यों जायँ, हम ही क्यों न लें ?"

"तो आपके घर भी तो जिमींदारी होगी ।"

"थी कभी, अब कहाँ रही है ! मुकदमों में उजड़ गए, अब तो···।"

"हाँ रुक क्यों गए ?"

"क्या कहें, अब तो गुजारा भी मुश्किल से होता है, जमीन तो हम पर है नहीं, बीस बीघे का एक छोटा-सा खेत है, उसी में गुड़ फोड़ते हैं । माता से जो कुछ मिल जाता है, उससे ऊपर का खर्च चलता है । ठाकुर तो अब खतम हो गए तुम जानो ।"

"हूँ, कोई और काम करिये ।"

"क्या काम करें ? काम हमसे होता नहीं है, बड़ा लौंडा है, उससे कहता हूँ कुछ काम कर, लेकिन वह तो मेरा बाप है, कुसंगत में पड़ गया है साला । दिन-भर कलाउड्डू-सा डोलता है । कहता है, चाचा ठहर जाओ तनक, रुपयों से घर भर दूँगा । न जाने कैसे भर देगा । धेसेर खाने को चइये ।"

"पढ़ा-लिखा नहीं है क्या ?"

"तुम्हीं फौज में करा दो ।"

"सिपाही बनेगा ।"

"सिपाही ही सही, लेकिन उससे नीच काम ही नहीं होता । उस दिन एक ने दरबानगीरी के लिए कहा तो बोला, 'ठाकुर है कें दरबान-

गीरी करूँ, हमपै नाँय होइगी तुम्हारी दरबानगीरी-फरबानगीरी। ऐसेई मौज में है। नाँय होयगो सारे कूँ डाको डारिंगे।"

उसी समय कान तक लट्ठ उठाये उद्धत प्रकृति के एक नवयुवक ने प्रवेश किया—पीली मैली गांधी टोपी, मैला गजी का कुरता, वैसी ही अधमैली धोती, छाती ताने, बड़े बाल, छोटा माथा, चेहरे पर सब भावों का अभाव, उम्र बाईस-तेईस। बाप के सिरहाने बैठकर हुक्का खींचकर और चिलम में उँगली छुलाकर कहने लगा—

"कुछ हैऊ या में, पी का रहे हो, अरे दुर्दमना, ओ दुर्दमना!" भीतर से आवाज आई, "होत्।"

"नैक चिलम तो भर जा।" उसने वैसे ही चिल्लाकर आवाज दी। फिर नवयुवक की तरफ देखकर बाप से पूछने लगा—

"जि को है?"

"फौज में काम करें हैं।"

"काऊ के मेहमान आये होंगे।"

"ठाकुर संकरसिंह के दामाद हैं, तू जाने नई है।"

"वेई दतुटा, जिनके एकऊ दांत नांय।" दुर्गासिंह ने बिना परिणाम समझे कह दिया। बाप को लाज लगी। सैनिक से बोला—

"लड़का जरा मूरख है, बुरा मत मानना।" फिर लड़के से बोला—

"तुझे बोलना नहीं आता, जरा अकल से बात किया कर। लट्ठ गँवार ही रहेगा क्या जनम-भर?" बाप ने समझाया तो कहने लगा—

"जामे बुरी बात काये, नायं का वे दतुटा, गंजे, हमतो साप कैतें। काऊ भली लगे चाहे बुरी। तुमई देखौ, तुम्हारो खपरा सौ मौं नायें, बोलो झूठ है कछु?"

बाप को गुस्सा आया तो डाँटकर कहने लगा—

"साले मुँह तोड़ दूँगा, समझा क्या है तूने, अभी इतना गया-बीता नहीं हूँ, अपनी अम्मा से तो पूछ।"

लड़का लट्ठ लेकर मुकाबले के लिए खड़ा हो गया।

"अम्मा सूं चों पूछें, वुई कौन अपसरा है, फटी-फटी आँखिन सूं ऐसे देखति है, कि भुतनियाँ होय काऊ दरखत की।"

"मैं कहता हूँ साले तू चुप नहीं रहेगा, बोलता ही जायगा, न बखत देखे न बेबखत।"

कड़ककर लड़के ने जवाब दिया, "चों चुप रऊँ, तुम रोटी देतौ मत देउ, कऊँ और चलौ जांगो। जि मत समझियौ, मोय रोटी नाँय मिलैंगी।"

नवयुवक बोला—

"दुर्गासिंह, बाप की इज्जत तो करनी चाहिए।"

"हमपै नायँ होति काऊ बाप-फाप की इज्जत, हम नायँ मानैं काऊ सारे कूँ।"

"दुर्गा लट्ठ उठाकर बिना हुक्का पिये जिधर से आया था उधर ही चलने लगा तो विक्रम बोला—

"अरे रोटी तो खाजा, भिनकेगी पड़ी-पड़ी।"

"हमें नाँय खानी तुमाई रोटी। धर राखो," कहकर चला गया। इसी समय शंकरसिंह दामाद को बुलाने आया और बातचीत सुनकर बोला—

"क्या बात है, विक्रमसिंह? अरे लल्ला जादौंसिंह, दोपहर हो रही है, खानौं धरो है, चलौ। हाँ, क्या बात थी विक्रमसिंह?"

"कुछ नहीं, करमों को रोते हैं," कहकर बिना संकोच के विक्रमसिंह ने सब बातें सुना दीं। तो गुस्से में आकर शंकरसिंह बोला—

"न हुआ मैं, साले की माँ को......"

जादौंसिंह उठते-उठते बोला—

"बस-बस पिताजी, चलिए।" हाथ पकड़कर उठाने लगा। फिर भी शंकरसिंह गुस्से में भरा हुआ कहता रहा—

"विक्रमसिंह तुम्हारा लौंडा नहीं है, साला किसी भंगी की औलाद है।"

शंकरसिंह ने गाली उसे दी, या लड़के को, या उसकी माँ को—विक्रमसिंह यह विवेचन न कर सका। वह दाँत निपोरकर हँसने लगा।

दुर्गा लट्ठ उठाकर जो चला तो बीच बाजार में लट्ठ पर दोनों हथेली टेके कुछ देर खड़ा रहा। भूख उसे लग रही थी। पहले कुछ पछतावा हुआ, क्यों वह खाना छोड़कर चला आया। खाकर आता तो शाम तक के लिए निश्चित हो जाता। अब क्या करे, कहाँ जाय, सोचा रिपुदमन के घर जाय, वह आजकल खूब गुलछर्रे उड़ा रहा है। न जाने कहाँ से उसके पास रुपया आ गया है। कल शाम उसने कहा भी था कि दुर्गा मेरा साथ दे तो निहाल न कर दूँ। न जाने कैसे निहाल कर देगा? भूख बढ़ती जा रही थी। बाप के पास जाना बेइज्जती होती, यही सोचकर वह रिपुदमन के घर पहुँचा तो मालूम हुआ ठाकुर बाहर गये हैं, हैं नहीं।

"कहाँ गये हैं?"

"न जाने।"

वह बाहर छप्पर में खाट पर बैठ गया। जो लड़का खबर देने आया था वह भीतर चला गया। गाँव में उस समय सुनसान हो रहा था। कुछ लोग हल-बैल लिये खेतों से लौट रहे थे, कुछ बैलों, गायों को कुएँ पर पानी पिला रहे थे। एक तरफ एक आदमी लोटे से पानी खींचकर नहा रहा था। दुर्गा बैठा रहा, फिर एकदम उठा और गंगा के किनारे स्वामी शंकरानन्द के आश्रम में जा पहुँचा। उसने इधर-उधर झाँककर देखा कि लोग भोजनशाला की ओर जा रहे हैं। वहाँ कई प्रकार के भोजन बने थे। पूछने पर मालूम हुआ एक सेठ की तरफ से भंडारा हो रहा है। ब्राह्मण और साधु लोग पेड़ों की छाया में बैठे रसोईघर की ओर ताक रहे थे। घी की सुगन्ध से सारा वातावरण महक रहा था। दुर्गा उसी ओर चल दिया। उससे रहा न गया। वह पीछे की ओर से रसोईघर के दरवाजे पर जा पहुँचा। रसोइया गाँव का ही था। भोजन की तैयारियाँ हो रही थीं। कहार

पानी भर रहे थे। उसने चुपके से रसोइये से कहा—"अरे मनोहरा, यार भूख लगी है।" मनोहर ने देखा तो बोला—

"ठाकुर, तुम्हें खाना कौन देगा ? यहाँ तो साधु, ब्राह्मणों का भोजन है।"

"मोऊ बिराम्मन बनायलै यार। भूख के मारे पेट में चूहे डंड पेल रए हैं।"

"अच्छा पंगत में बैठ जईयो, मैं परोस दंगो, चुपचाप बैठियो भला।"

नये आदमी को देखकर स्वामीजी के शिष्य ने पूछा—

"आप कौन हैं ?"

"आदमी हैं।" दुर्गा ने जवाब दिया। भीतर से रसोइये ने कहा—"बिराम्मन हैं।"

"ब्राह्मण ! कहाँ से आये ?"

एक आदमी, जो उसी गाँव का था, बोल पड़ा—

"अरे दुर्गासिंह, तू कां सूँ आय गयौ ! गाम कोई ठाकुर है साब !"

"यहाँ ठाकुरों को खाना नहीं मिलता, जाओ !" उसने रसोइये को भी डाँट दिया। हाथ-पैर धोये हुए दुर्गा बाहर आ खड़ा हुआ। लोग मंत्र पढ़ने लगे। मालपुओं की सुगन्ध से सारा वातावरण खिलखिला रहा था। दुर्गासिंह बाहर पेड़ की छाया में लट्ठ ताने खड़ा रहा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था क्या करे। भूख के मारे उसका बुरा हाल था। कभी वह अपने ठाकुर होने की मन-ही-मन निन्दा करता, कभी मुफ्त का माल खाने वाले ब्राह्मणों को कुसमुसाकर गाली देता, वे लोग उसके सामने ही बढ़-बढ़कर हाथ मार रहे थे, खीर के सड़ोपने की आवाज आसपास गूँज रही थी। उसके सामने ही कुछ लोग थाली-पर-थाली खीर साफ कर रहे थे। वह खड़ा रहा। बाहर कुत्तों में जगह घेरने के लिए लड़ाई हो रही थी। कौए पेड़ों पर बैठे अपने परिवार को बुला रहे थे। चीलों के झुंड मँडराने लगे। कुछ भिखारी बाहर

उसीके पास आकर खड़े हो गए। पेड़ के नीचे वह अब भी लट्ठ ताने खड़ा था, जैसे रखवाली कर रहा हो। इसी समय टोकरियाँ लिये भंगिनें आ गईं। वे भी कोने में खड़ी स्वामीजी की जय मना रही थीं। एक भंगिन दुर्गा को देखकर बोली—

"जि कोहै, भंगी तो है नायँ, क्यों रे क्यों खड़ौ है ?"

दूसरी ने पहचाना तो बोली—

"ठाकुर है गाम कौ।"

इसी समय स्वामीजी भोजन करके निकले तो बोले—

"कोलाहल मत करो, तुमको भी मिलेगा।" वे भोजन की व्यवस्था देखने लगे। लगभग घंटे-भर भोजन होता रहा। ब्राह्मण लोग एक-दूसरे को चिनौती देकर खा रहे थे। पास खड़ी भंगिन की एक लड़की बोली—

"न जाने जे बिराम्मन कितनौ खातें।"

उसकी माँ ने कहा—

"ऐसे नायँ कैतें, बैठिजा, ठांड़ी चों है ?" लड़की बैठ गई। सब लोग खा चुके थे, पर दो ब्राह्मणों में होड़ लग रही थी। सेठ को आनन्द आया तो बोला—

"हाँ महाराज, देखें कौन जीतता है ?"

बूढ़े ब्राह्मण देवता ने हाथ रोककर कहा—

"अब शरीर में दम नहीं है सेठ, कभी थे।" दूसरे ने कहा, "हाँ सेठ, अब क्या है। हम और पंडित रामधन शर्मा दो ही तो बचे हैं। एक बार एक सेठ आयौ तो उसने कही महाराज, इक्षा भोजन कराना चाहता हूँ।"

पहले को जैसे कुछ याद आ गया, पूछने लगा—

"कौनसौ सेठ ?"

"अरे बोई आगरे बारौ सेठ आयौ नाओ, या बात कूँ बीस-एक बरस भई होंइगी।"

"हाँ-हाँ जाने रबड़ी के भौजन कराये हे, और ऊपर दस दच्छिना के दये।"

"बोई—हाँ तो बाने कई, 'महाराज बोलो का भोजन करोगे?' हमने उत्तर दीनो, 'सेठ तेरी इक्षा है। वैसे रबड़ी के भोजनन की मन में है।' तो सेठ, उसने रबड़ी कौ आडर दीनों। हम पाँच ब्राह्मण हे बा बखत। नन्दी पण्डित, मथुरा उपाध्याय, ललिता मिसिर, रामधन और हम। वैसे ब्राह्मण तौ औरऊ हते, हम पाँच वा बखत खाने वारे प्रसिद्ध हते। सो सेठ, हम पाँचन ने सबेरे-ही-सवेरे आध-आध पाव को अंटा चढ़ायौ, निश्चित भये, स्नान-ध्यान कीनो। भजन करन लगे। तीन बजे के बखत सेठ ने बुलाये। तो वासूँ पैलें हमने एक बार फिर छानी। न्हाय-धोय कें भोजनन कूँ बैठे। सो साब, जे देखो हम पाँचन ने पन्द्रह सेर रबड़ी खाई। सेठ बोला, 'महाराज अबई रबड़ी बहुत है' तो नन्दी पण्डित ने कई कै, 'सेठ दच्छिनऊ की बात करि।' सेठउ मजाकिया हो। बोलौ, "आध सेर रबड़ी द्वै रुपैया।' हमने द्वै रुपया लये, तो सेठ ने फिर आवाज लगाई, 'पाँच रुपैया आध सेर।' हमन्नें आध-आध सेर और चढ़ाई। हम तीन तौ रहि गये, ललिता मिसिर और नन्दी पण्डित दस रुपया तक गये। तो यों समझो एक-एक ने पाँच-पाँच सेर रबड़ी नीचे उतारी। सेठऊ मानि गयौ कोऊ मिले। वाने दस-दस रुपया दच्छिना के ऊपर सूँ दये।"

"इतनी रबड़ी पाँच आदमी खा गए," सेठानी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"हाँ मैया, भगवती कौ प्रताप है, अब वे पुरुषार्थ नायें, अब तौ दो सेर हद्द है। मसीन ढीली है गई है सेठानी!"

"हमारा पुरोहित भी चालीस पूड़ी खा ले है।"

"भुखमरौ होयगौ कोऊ, पूरी हम नायं खायें। लड्डू, खीर, रबड़ी के उपासक हैं सेठानी! जय शिव, जय शिव।"

बहुत भोजन करने वालों ने भीमसेन, कुंभकर्ण, अग्नि देवता का

नाम लिया और डकार-पर-डकार लेते हुए ब्राह्मण उठे तो सेठ ने दो-दो रुपये दक्षिणा के दिये। ब्राह्मणों ने पास वहीं पेड़ों की छाया में अंगोछे बिछाये और लेट गए। सेठ के परिवार ने भोजन किया। दुर्गा अभी तक बाहर ही खड़ा था। उसके पेट में आग धधक रही थी। वह आगे बढ़कर भोजनशाला की तरफ जाता और झाँककर वहीं आ खड़ा होता। सेठ ने उसे देखकर पूछा—

"तू कौन है ?"

"हैं तो ठाकुर।"

"पर यहाँ तो साधुओं का भोजन है।"

"तौ हमका बदमास हैं ?"

"क्या मतलब !" सेठ ने पूछा।

"हमेंऊ साधू समझलेउ। भूख लगी है सेठ !"

"साधू ऐसे होते हैं रे।" सेठ ने पूछा।

"तौ जे साधू हैं, दिन में माला जपतें, रात कूँ लुगाई रखतें।"

सेठ चौंका, वह जाते-जाते रुका और पूछने लगा—

"तुझे कैसे मालूम ?"

"हम जाई गाम में रैतें, जे साधू लंगोटी में रुपैया बाँधें फिरतें, मूड़ मुड़ाय भये संडासी। हम तौ साप कैतें, चाये काऊ बुरी लगे चाये काऊ भली।"

"तू क्या काम करता है ?"

"काम कछु हैई नायं जो करें, खेती-बारी कर लेतें, आज बाप से लड़ाई है गई सो रोटी नायं खाई, कहूँ मिल जाय तो खाय लें, सोची, तुम दै देउगे सो तुमन्नेउ मनें कर दई।"

"नौकरी करेगा ?"

"ऐसी-वैसी नौकरी हमपै नायँ होयगी, ठाकुरें।"

"नाम।"

"कुँवर दुर्गासिंह।"

सेठ ने सुना तो हँस पड़ा। 'कुँवर' उसने दुहराया। इसी समय और लोग इकट्ठा हो गए। एक चेले ने कहा, "गाँव का है। इस गाँव के लोग बहुत ही अशिक्षित और असभ्य हैं, माँगते-खाते हैं और लट्ठ-गंवार बने रहते हैं।"

दुर्गा स्वामी की तरफ देखकर बोला—"तुमसों सोउ अच्छे हैं स्वामी जी, चकमा दै कें माल नायं उड़ावतें।"

चेले ने आगे बढ़कर उसकी गरदन पकड़ ली। दुर्गा ने हाथ से पकड़कर झटक दिया।

"बदमाश है," चेला बोला।

"बदमाश होउगे तुम, सँभार कें बोलियो, जि लट्ठ देखौ है, भेजौ फोर दंगो, मोय नायं काऊ की परवा।" दुर्गा फिर वैसे ही तनकर खड़ा हो गया। सेठ ने रसोइये को बुलाकर उसे खाना खिलाने को कहा तो चेले कुसमुसाकर रह गए। सेठ बोला—

"खाकर तुम हमारे डेरे पर आना।"

"का काम है?"

"नौकरी देंगे।"

"ओछो काम मोसूं नायं होयगो।"

दुर्गासिंह लट्ठ रखकर भोजन करने बैठ गया। उसने डटकर खाया। हाथ धोकर मुँह पर हाथ फेरा। सेठ थोड़ी देर ठहरकर धर्मशाला की ओर चल दिया तो एक चेले ने कहा—

"तुम हमारी निन्दा करते हो?"

"हम काऊ की निन्दा नायं करें, हमें का परी।" कहकर वहीं पेड़ के नीचे अंगोछा बिछाया और सोने लगा तो एक शिष्य बोला—

"यहाँ से चला जा।"

"क्यों?" अकड़कर उसने कहा—"जिका तुम्हारे बाप की जगह है?" कहकर वह सो गया।

जब आँख खुली तो सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। उसने देखा,

स्वामीजी के आश्रम में यात्रियों की भीड़ इकट्ठी हो रही है। वे ब्राह्मण, जिन्हें सवेरे न्यौता दिया गया था, अर्दल में दूर-दूर बैठे हैं।

उसने देखा तो रसोइये से पूछा—

"अब का होयगो ह्याँ? अरे मनोहरा?"

"स्वामीजी बूकिगे। रोजई बोलतें।"

"का मतलब?"

"बोलिगे और का। तू जानतु नायें। हम रसोई बनावतें तब रोटी मिलतिये। जे बोलिकें खीर उड़ावतें, मालपुआ खातें।" दुर्गा की उत्सुकता बढ़ी कि सुना जाय स्वामीजी क्या कहते हैं। वहीं मैदान में दूर दो ईंटें रखकर बैठ गया। लट्ठ उसने पैरों के पास रख लिया। चेलों ने एक तख्त पर गेरुए गद्दे के ऊपर वैसी ही चादर और एक मृग-छाला बिछाई। पीछे गेरुए रंग का तकिया रख दिया। बैठने के सीधे हाथ की तरफ छोटी चौकी पर उनके गुरु की तस्वीर थी जिस पर गेंदे की फूलमाला चढ़ी थी। कुछ फूल तस्वीर के चारों ओर बिखरे थे। लोग आते जा रहे थे। थोड़ी देर में वह सेठ भी अपने परिवार के साथ आया। गुरुजी भी यथासमय आये। सब लोग उठकर खड़े होने के साथ उनके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम करने लगे। स्वामीजी माथे पर भस्म रमाये, चारों ओर मुँह पर कपड़ा लपेटे, गेरुए वस्त्रों से शरीर ढके, गले में मोटी रुद्राक्ष की माला पहने थे। शरीर कांतिमान, आँखों पर चश्मा, बढ़ी दाढ़ी और मूँछें। उम्र लगभग पैंतीस वर्ष।

चेलों ने एक-एक करके गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया। लोगों की भीड़ में दूर दुर्गासिंह ने देखा तो उसकी समझ में नहीं आया ये चेले क्या कर रहे हैं। वह उचककर देखने लगा। एक-एक चेला सात-सात बार साष्टांग प्रणाम कर रहा था। उसके लिए यह नई बात थी। उसके मुँह से निकल गया—"खीर पचावतें का?"

पास के आदमी ने सुना तो डाँट दिया, "चुप बैठ।" दुर्गासिंह चुप होकर देखने लगा। उसके बाद सब चेलों ने मिलकर गुरु की स्तुति में

पाठ किया। स्वामीजी के चरणों में फूल चढ़ाये और अपने स्थान पर बैठ गए।

स्वामीजी ने, जो अब आँखें बन्द किये थे, आँखें खोलीं और धीरे-धीरे बोलने लगे। लोग चुप हो गए। उन्होंने ईश्वर-माया का वर्णन किया। बोले, "माया के कारण संसार में दुःख और अशान्ति है। जब तक ब्रह्म का चिन्तन नहीं होता तब तक माया मनुष्य को कष्ट देती रहती है, आदि-आदि।" स्वामीजी संस्कृत के श्लोक बोलकर उनकी व्याख्या करने लगे। संसार की अनित्यता, नश्वरता पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने सद्गुरु के चरणों की सेवा पर बल दिया, "सद्गुरु ही ब्रह्म है, उसीकी दया से मनुष्य भवसागर से पार होता है।" लोग सिर हिला-हिलाकर गुरुभक्ति से गद्गद होकर प्रवचन सुन रहे थे। अन्त में उन्होंने बताया, "मनुष्य का कर्तव्य क्या है?—इस संसार को पार करके गुरु-सेवा द्वारा ब्रह्म में लीन होना, मोक्ष प्राप्त करना। चौरासी लाख योनियों के बाद मनुष्य का जन्म मिलता है, इसको गृह, परिवार, समाज, धन की चिन्ता में खोना व्यर्थ है।" वे बीच में बोलते-बोलते रुके तो लोगों ने, "धन्य हैं गुरुदेव, धन्य हैं ब्रह्मलीन स्वामीजी!" आदि शब्दों से उनकी स्तुति की। इसी समय चमेली फूलों की माला लिये आई और सिर झुकाकर उसने फूलों की माला उनके गले में पहना दी और तख्त के नीचे बैठ गई।

स्वामीजी ने अन्त में सेठ की ओर लक्ष्य करके कहना शुरू किया, "भक्त और भगवान्, इन दोनों में भेद नहीं है। भक्त ही भगवान् है, यदि वह सर्वात्मलाभ कर सके। भगवान् की इच्छा है यह आश्रम पक्का बन जाय। लोग देश-देश चिल्लाते हैं, इससे क्या होता है? देश क्या है? एक भूभाग। याद रखो, जितना भौतिकवाद बढ़ेगा उतना कष्ट बढ़ेगा। जीवन रहते क्या कष्ट दूर हो सकता है? क्या ऐसा कभी हो सकता है—दिन तो हो, पर रात न हो। रात अवश्य होगी। कष्ट अवश्य होंगे। कष्ट को दूर करने का उपाय है भगवान् का चिन्तन,

जगद्गुरु की प्रेरणा।" गुरुदेव—गुरुदेव कहते स्वामीजी रुक गए। वे आँख बन्द करके चुप हो गए। लोगों ने कहा, "महाराज समाधिस्थ हैं।" बहुत देर बाद समाधि खुली तो उनके मुँह से कोई भी शब्द नहीं निकल रहा था। एक चेला दौड़कर गया और एक थाली में घी का दीपक ले आया। शिष्यों ने आरती उतारी। सबने स्तुति की और गुरुदेव को फिर लोगों ने सिर झुकाकर साष्टांग प्रणाम किया। स्वामीजी समाधि की अवस्था में ही कमरे में ले जाये गए।

दर्शकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। कुछ लोग वहीं बैठकर 'जय गुरुदेव, जय गुरुदेव' का जाप करने लगे।

दुर्गासिंह चुप बैठा रहा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था यह सब क्या हुआ। स्वामीजी का प्रवचन उसके लिए नया था। एक भक्त ने, जो मिठाई लाया था, भेंट चढ़ाने के बाद श्रोताओं में बाँटी। दुर्गा ने देखा कि बाहर के लोगों को मिठाई ज्यादा बाँटी जा रही है और गाँव के लोगों को कम। वह आगे बढ़ गया तो उसे केवल एक पेड़ा मिला। बोला—

"बराबर परसाद देउ न भैया!"

"लेना हो तो ले, नहीं तो भाग।" दूसरे ने डाँट दिया। जाते हुए भक्तों को रोककर कहा गया कि वे आश्रम का प्रसाद लेकर जायँ। कुछ लोग वहीं बैठकर कीर्तन करने लगे। शेष स्वामीजी के पास जा बैठे। दुर्गासिंह इधर-उधर घूमकर स्वामीजी के कमरे की तरफ गया तो देखा कि मिठाइयों, कपड़ों, रुपयों का ढेर उनके चरणों में फैला है। चेले उन्हें उठाकर जहाँ-तहाँ रख रहे हैं। उसकी आँखें फटी रह गईं। उसने इतना रुपया अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। यह खाने-पीने का सामान, इतना बेफिक्री का जीवन उसके लिए बिलकुल नया था। वह लट्ठ लिये एक कोने में खड़ा देखता रहा। कुछ लोग स्वामीजी के पैर दबा रहे थे। वह बैठ गया। देखता रहा, देखता ही रहा। उसे लगा, न ये चेले कुछ करते हैं न स्वामीजी। बेखटके माल खाते हैं और पड़े

रहते हैं ! उधर रसोई से शुद्ध घी की सुगन्ध आ रही थी, इससे उसका मन और भी बेचैन हो उठा। वह उठकर रसोई की तरफ गया तो देखा दूध का कड़ाह चढ़ा है। एक तरफ दाल-चावल बन रहे हैं। उसका दोस्त मनोहर रसोई में जुटा है।

उसने दूर खड़े होकर पुकारा, "मनोहरा, ओ मनोहरा !"

मनोहर ने चावल का पस निकालकर, कनस्तर में से कोई सेर-भर घी चावल में डालकर चलाते हुए जवाब दिया—

"का है रे, तू अभई गयौ नायें, जा !"

"अरे यार सुन तो !"

'मोय या बखत फुरसत नायें। फिर सुनुंगो।" वह दाल चलाने लगा।

"बड़ी मौज है ह्याँ तो यार !"

दूध में उबाल आ रहा था। उसने दूसरे आदमी के हाथ से कौंचा लेकर दूध चलाया। दूध गाढ़ा हो रहा था। एक तरफ चिरौंजी, बादाम, छीले, साफ किये हुए रखे थे। एक बोतल में केवड़ा, एक बरतन में पिस्ते, पिसी केसर। दुर्गा से न रहा गया। पूछ बैठा—

"इत्ते सारे दूध कौ का होयगौ ?" रबड़ी बनावतुए का ?"

"नायें रे नायें।" मनोहर ने धुएँ से पानी भरी आँखों को अँगोछे से पोंछकर जवाब दिया।

"फिरि ?"

"दूधपाकु ए।"

"दूधपाक, हमने तो कभउ बिरचौ, खायौ नायें।"

मनोहर ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने काम में लगा रहा। इसी समय एक चेले ने आकर पूछा, "कितनी देर है, सेठजी जल्दी जाना चाहते हैं।" बस तैयारइ समझौ। आध घंटा में सबरेन कूँ खवाइ दंगो। जल्दी कर रे नैनुका ! आटौ माड़ि।"

"अभंई लेउ," कहकर नैनुका बोरियों में भरा आटा परात में

निकालने लगा। मनोहर ने दूध उतारकर बादाम के टुकड़े, किशमिश, चिरौंजी, पिस्ते, केसर डाल दिए। फिर दाल में छौंक लगाने को एक बड़ा सा कड़छा आग में दबा दिया और मसाला निकालने लगा। बाहर एक कहार पत्तलें धो रहा था, दूसरा बड़े-बड़े पीतल के टोकनों में कुएँ से पानी भर रहा था।

यथासमय भोजन तैयार हुआ। दुर्गा अब भी दरवाजे के बाहर खड़ा सब देख रहा था। इसी समय एक चेले ने आकर पूछा—

"क्यों खड़ा है ?"

"खड़े हैं, तुम पै सें कछु माँगत तो नायें।

दूसरा, जो कमर कसकर परोसने को तैयार होकर आया था, बोला—

"सबेरे भी था। क्या चाहता है, उधर बैठ जा।" कहकर उसने कहार से आसन बिछवाये, पत्तलें डलवाईं, पानी भरवाकर रखवाया। और खुद चौके में जाकर बड़े बरतनों में खाने का सामान डालने लगा। एक चेला और आ गया। देखते-ही-देखते परोसने वाले और भी आ गए। फिर भोजन करने वाले। चमेली आकर सबसे पहले स्वामीजी के लिए एक कटोरा दूध लेकर चली गई। जाते-जाते उसने लोगों से कहा, "महाराज रात को कुछ नहीं लेते, यह दूध तो केवल मेरी प्रार्थना पर ले रहे हैं।"

थोड़ी देर बाद वापस लौटकर दूध का बरतन सबको दिखाते हुए कहा—

"मुश्किल से एक तोला दूध लिया होगा।"

परोसते-परोसते रुककर एक साधु ने कहा, "पिछले दिनों महाराज ने एक मास के लिये सब-कुछ छोड़ दिया, केवल गंगाजल पीते थे।"

दूसरे ने आगे बात बढ़ाते हुए कहा, "महाराज ने एक बार सदा के लिए अन्न त्याग दिया था तो भगवान् ने दर्शन देकर आदेश दिया कि शरीर को निर्बल करने से कष्ट होगा, भजन भी नहीं होगा। तभी से

एक बार अन्न लेने लगे।"

भगवान् के दर्शनों की बात लोग खाना रोककर सुनने लगे। "ऐसे महात्माओं को भगवान् के दर्शन क्या दुर्लभ हैं," एक ने कहा।

"अभी तक धरम धरती से उठ नहीं गया है," कहकर दूसरे ने दूध का कटोरा साफ कर दिया।

"ऐसे महात्माओं पर ही तो धरती खड़ी है भैया!"

चेले जबरदस्ती खाना खिलाने में लगे थे।

"दूधपाक सुन्दर बना है," सेठ ने कहा।

"महाराज कौ प्रसाद है, कछु खेल नायें सेठ!"

"एक तो प्रसाद, दूसरे गंगा मैया का तट, यहाँ कोई चीज़ खराब कैसे बन सकती है? सबेरे का भोजन भी अच्छा था।" एक दूर बैठे आदमी ने दुहराया।

तरह-तरह की बातों के बाद भोजन समाप्त हुआ ही था कि विक्रमसिंह ने दुर्गा के पास आकर कहा—

"घर नहीं चलेगा रे दुर्गा?"

"मोय नायँ जानौ।"

"क्यों?"

"मैं तो यहीं नौकरी करूंगौ। देखत नाओं दूधपाक बनौ है, सबेरे खीर-मालपुआ हे। मैं तो साधु है जांगौ।"

"साले चलेगा कै दूँ एक लट्ठ," कहकर उसने दुर्गा का हाथ पकड़ा। सेठ खाना खा रहा था। उसने पूछा, "क्या बात है?"

विक्रमसिंह ने बताया तो सेठ बोला, "तेरा लड़का ईमानदार है, चाहे तो मेरे यहाँ नौकरी कर सकता है—रोटी-कपड़ा और दस रुपया। जाओ, मन हो तो सबेरे आ जाना।"

उसने रसोइये से कहा—

"इन दोनों को थोड़ा-थोड़ा प्रसाद दे दो," कहकर डेरे पर चला गया।

"कितना आया आज ?" स्वामी शंकरानन्द ने कोठरी में बैठे-बैठे एकान्त होने पर पूछा।

"पचास तीन यात्रियों ने चढ़ाया है, दो मिठाई के थाल।"

"उस हाथरस के सेठ ने भी तो कुछ वचन दिया था ?"

"हाँ, सेठ ने कोठरी पक्की बनवाने का वचन दिया है।"

स्वामी शंकरानन्द ने कुछ मिठाई खाई और फल लिये। फिर बोला, "तो मकान बनवाना कल से शुरू कर दो। चमेली गई ?"

"हाँ, ठाकुर के साथ चली गई।"

शंकरानन्द ने अलमारी से वही निकालकर सारा हिसाब लिखा। फिर बोला, "भोलानन्द, तुझे कितना चाहिए ?"

"बीस घर भेजने हैं, कल ही चिट्ठी आई है।"

"स्वरूपानन्द, तुझे ?"

"मेरा खर्च तो ज्यादा है, तीस भेज दूँ तो काम चल जायगा। बड़ा लड़का बीमार है।"

"क्या बीमारी है ?"

"मलेरिया बुखार है।"

"तो तुम दोनों कल रुपये भेज दो, लेकिन अभी तीन दिन हुए भेजे थे।"

"इस बार कुल पचास ही तो भेज सका," भोला ने कहा।

"मैंने भी साठ ही भेजे," स्वरूपानन्द ने उत्तर दिया। शंकरानन्द थोड़ी देर सोचने के बाद बोला, "दो सौ रुपया हर महीने कहाँ से आएगा ? इधर मकान भी बनवाना है। वैसे आज का काम ठीक रहा। काफी प्रभाव पड़ा लोगों पर।"

दोनों ने जवाब दिया, "हाँ, गाँव के ब्राह्मणों ने भी ठीक काम किया। मैंने उनसे कहा कि जितनी स्वामीजी की प्रशंसा कर सको, करो। तुम्हें पेट-भर भोजन के साथ दक्षिणा भी मिलेगी। खाना खाने के बाद वे दिन-भर यहाँ रहे। आसपास के सब लोगों के सामने आपकी

तारीफ करते रहे।"

शंकरानन्द ने कहा, "भोलानन्द, तेरा श्लोक बोलने का ढंग अशुद्ध है। तू श्लोक ठीक ढंग से याद कर ले न! इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। किसी दिन कोई संस्कृत जानता यात्री आ गया, तो भद्द उड़ेगी, समझा! और साष्टांग करना भी तुझे नहीं आता। लम्बा लेटने के बाद नाक बिलकुल जमीन से मिल जानी चाहिए और हाथ सपाट। मुट्ठी बंधी मत रखा कर।"

"जी, अच्छा!"

"जी अच्छा, रोज ऐसे ही कह देता है। सीख ले न! व्योमरूपा कहाँ गया?"

"सो गया। आज उसने इतना खा लिया कि बैठे न रहा गया। खाऊ है, खाऊ।"

"खाने का तो तुम लोगों को कोई कष्ट नहीं है न?" स्वामी ने पूछा।

"पिछले दिनों से तो मौज-ही-मौज है," स्वरूपानन्द ने उत्तर दिया।

"एक बात का ध्यान रखना जरूरी है। कोई आए तो उसे मेरे पास सीधे मत आने दिया करो, कहो—'स्वामीजी समाधि में हैं', या कभी यह कि, 'इस समय चिन्तन कर रहे हैं।' कभी यह कि, 'इस समय महाराज भगवान् से बातें कर रहे हैं।' लेकिन यह बात कभी-कभी कहनी चाहिए, हमेशा नहीं, समझे?"

"जी, अच्छा," भोला ने उत्तर दिया।

"जब किसी यात्री को लेकर आओ तो उसके सामने खुद भी साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो जाया करो। जब मैं ऊपर निगाह करके तुम्हें देखूँ तो हाथ जोड़कर निवेदन करो, महाराज, दर्शन की इच्छा से कुछ लोग आये हैं। व्योमरूमा को भी समझा देना, हाँ।"

"जी, अच्छा!"

"बार-बार तेरा 'जी, अच्छा' मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"फिर क्या कहूँ ?"

" 'जो आज्ञा' कहा कर।"

"जो आज्ञा।"

"नहीं, जो आज्ञा महाराज ! 'महाराज' कहने की आदत डाल। यह स्कूल नहीं है। यहाँ जितना आडम्बर होगा उतना पुजोगे। याद रखो, इस काम में बहुत चालाकी की जरूरत है, समझे। तुम लोग गले में रुद्राक्ष की माला डाले रहा करो। 'हरिओम्, शिवोऽहम्' कहा करो।"

"जी, अच्छा !" भोला ने जवाब दिया तो स्वामीजी हँसकर बोले—

"महाराज कह। स्वरूपानन्द, तू तो क्लर्क रह चुका है, ज़रा सबको समझाया कर !"

भोला बोला, "स्वरूपानन्द अपने को बहुत बड़ा समझता है। जब-तब डाँट देता है किसी दिन मुझे…।"

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं, प्यार से समझाया कर।"

"समझ में ही नहीं आता। समझाता हूँ तो अकड़ पड़ता है। कहता है मैं तुझसे ज्यादा जानता हूँ।"

"कब कहा मैंने ?"

"सवेरे ही तो।"

"मैंने कहा, आओ, पहले हम लोगों को खाना खिलायें, फिर बाद में खायेंगे तो कहने लगा—नहीं, हम खायेंगे पहले।"

"मान तो गया था फिर।"

"और व्योमरूपानन्द तो बिलकुल लठ्ठ गँवार है। उसे सिवा खाने के कुछ नहीं सूझता, या फिर दिन-भर पड़ा सोता रहेगा।"

"देखो, तुम तीनों को मिलकर रहना चाहिए। जानते हो, हमारा काम ठीक नहीं चलेगा तो तुम्हें भी जाना पड़ेगा। फिर कहाँ जाकर नौकरी करोगे, तब क्या ऐसा आराम मिल सकता है ?"

"पर स्वामीजी, मुझे लगता है यह बेईमानी का काम है, धोखा है।"

शंकरानन्द चुप रहकर कहने लगा, "बेईमानी, धोखा कहाँ नहीं है ? फिर हम ईश्वर का नाम भी तो लेते हैं। मेरी इच्छा है, यह ग्राश्रम पक्का बन जाय तो इसी के सहारे घर का मकान भी पक्का करवा लूँ, लड़कों को ठीक काम पर लगवा दूँ।"

"कहीं शहर के पास चलकर रहिये न, यहाँ हमारा मन नहीं लगता," भोला ने कहा।

"हाँ, सलाह बुरी नहीं है।"

"तुम नहीं समझते। गंगा के किनारे ही यह काम ठीक हो सकता है। यात्री यहाँ ग्राते हैं। शहर में किसको फ़ुरसत है, फिर हमें तो लोगों की श्रद्धा से फायदा उठाना है। जो दूसरे को ग्रपनी तरफ खींच सकता है, ग्राज के ज़माने में वह उतना ही बड़ा बन सकता है। फिर यहाँ के लोगों को मूर्ख बनाकर उनसे फायदा भी उठाया जा सकता है।"

"ग्राप कहें तो मैं दो-चार दिन के लिए घर हो ग्राऊँ, बहुत दिन हो गए।"

"बीवी की याद ग्रा रही है क्या ?" स्वामी ने हँसकर पूछा। "ग्रच्छा, थोड़े दिन ठहर जा, हो ग्राना। ग्राजकल मौसम है।" स्वामी ने रुपये शिष्यों में बाँटने के बाद जैसे ही बाकी रुपये ग्रपने तख्त के बीच में बने एक सन्दूक में रखे, वैसे ही बाहर से हँसते हुए किसीकी ग्रावाज़ ग्राई। स्वामी ने चौंककर पीछे देखा।

शिष्यों ने कहा, "कौन है ?"

"फक्कड़ है।"

"देखो, किवाड़ खोलकर !"

देखा तो एक ग्रौघड़ दरवाजे की ग्रोर देखता कह रहा था, "शंकरानन्द रुपये गिन रहा है। गिन, ग्रच्छा है। हा-हा-हा-हा, रुपये गिन रहा है।"

"कौन औघड़ ?" स्वामी ने पूछा।

"मैं, हा-हा-हा-हा। मैं, मैं हूँ।" कहकर अँधेरे में चल दिया। उसके हँसने की आवाज़ आती रही। स्वामी देखता रहा।

शिष्यों ने पूछा, "कौन है यह ? पहले तो कभी नहीं देखा।"

"औघड़, फक्कड़ है। ऐसे ही घूमता रहता है।" स्वामी ने कहा।

"इसे कैसे मालूम हुआ ?"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ।"

शंकरानन्द को पद्मपुरी में आये तीन साल ही हुए थे। पहले वह इसी स्थान के स्वामी हरिहरानन्द का चेला था। स्वामी हरिहरानन्द वृद्ध संन्यासी थे। दोपहर को एक बार गाँव में जाकर दो-चार घरों से मधुकरी माँग लाते थे और गंगाजल में डुबोकर वहीं किनारे पर बैठकर खा लेते। न किसी से कुछ लेते न उन्हें आवश्यकता ही थी। वीतराग संन्यासी की तरह रहते थे। गंगा के किनारे मैदान में पेड़ के नीचे पत्थर की शिला पर वे दिन-भर रहते। सरदी, गरमी, बरसात वे उस पटिया पर रहते। एक बार निरन्तर बरसात में बाहर पड़े रहने पर उनकी तबियत खराब हो गई। आसपास के भक्तों ने मिलकर फूँस का झोंपड़ा बना दिया और स्वामीजी को ले जाकर एक चटाई पर लिटा दिया।

उन्हीं दिनों एक दिन अग्यारीराम साधारण वेश में वहाँ आ पहुँचा और स्वामीजी की सेवा करने लगा। वह असमर्थ स्वामीजी के लिए मधुकरी माँगने के साथ अपने लिए भी ले आता। उनके कपड़े-लंगोटी धोकर सुखा देता और परिश्रम से उसने झोंपड़ी का घास-फूँस साफ करके दो-चार फूलों के पौधे लगा दिए। देखते-ही-देखते भक्तों की सहायता से उसने स्वामीजी की झोंपड़ी से हटकर एक झोंपड़ी और बना ली। एक दिन लोगों ने देखा, अग्यारीराम शंकरानन्द बन गया है। स्वामीजी ने उसे संन्यास की दीक्षा लेने से पहले समझाया कि, "तेरा वैराग्य अस्वाभाविक है, तू अभी संन्यास के योग्य नहीं है। अग्यारीराम ने

उत्तर दिया, "नहीं स्वामीजी, अब मैं संसार में नहीं लौटना चाहता।"

वृद्ध संन्यासी ने समझाया, "पत्नी के मरने पर संन्यास फसली होता है, ऐसे वैरागी साधुता के कलंक होते हैं, तू अभी संन्यास मत ले।"

यह सत्य था, अग्यारीराम पत्नी के मरने पर वैरागी हुआ था। उसके दो बच्चे थे जिन्हें वह अपनी विधवा बहन के पास छोड़कर चला आया था। वृद्ध स्वामीजी के मरते ही उसने कपड़े रंग लिये और उनकी जगह सँभाल ली। कुछ अपने परिश्रम और कुछ भक्तों की सहायता से एक रसोईघर और कुआँ बनवा लिया। शंकरानन्द ने कुछ दिनों तक जटा बढ़ाई, फिर मुण्डित हो गया। जो नाई उसे मूड़ने आता, एक दिन उसको शिष्य बनाया। कुछ दिन रहकर वह स्वामी को छोड़ गया। इसी बीच प्राइमरी स्कूल के एक मास्टर से उसकी भेंट हो गई। भोलानाथ निरर्थ, निकम्मा, आलसी आदमी था। भोजनों के लालच में वह उसका चेला हो गया। शंकरानन्द घर के खर्च के लिए उसे कुछ दे देता। वह भोलानन्द बना। दूसरा एक क्लर्क था लालचन्द, उस पर गबन का एक केस चला, जिसमें उसे सजा हो गई। नौकरी तो छूट ही गई थी, वह स्वरूपानन्द हुआ। व्योमरूपानन्द उसका ही एक रिश्तेदार था, जो किसी सेठ के यहाँ रसोई बनाता था। सेठ के निकाल देने पर बहुत दिन तक इधर-उधर भटकता फिरा। उसे भी वैराग्य हुआ और एक दिन स्वामीजी की छत्रच्छाया में आ बैठा। इन तीन चेलों की सहायता से शंकरानन्द 'ब्रह्मलीन महात्मा' बन गया। एक दिन जब अग्यारीराम की विधवा बहन उसके बच्चों को लेकर आई तो उसने प्रतिमास घर-खर्च का वचन देकर उसे विदा किया।

तीनों शिष्य गिद्ध की तरह यात्रियों की ताक में रहते। कुछ गाँव के ब्राह्मण भी, जिन्हें स्वामीजी के भंडारे से स्वादिष्ट भोजन मिलते, यात्रियों को फंसाकर लाते। घाट पर बैठी चमेली यात्रियों में शंकरानन्द महाराज के दर्शनों की उत्सुकता बढ़ाती।

शिष्यों और औघड़ के चले जाने पर स्वामीजी अपने आसन पर

आ विराजे। रह-रहकर उनके दिमाग में औघड़ की हँसी छा जाती, 'यह कैसे जान गया कि मैं रुपये गिन रहा हूँ, क्या इसने देखा ?' थोड़ी देर सोचने के बाद उसने कहा, "हो सकता है, इसने किवाड़ों की संध से देखा हो, यह बना हुआ आदमी है, फक्कड़ बना फिरता है, कहीं ऐसा न हो कि रुपये की बात किसीसे कह दे।"

बहुत देर तक शंकरानन्द यही सोचता रहा। उसने सब रुपये निकालकर फिर गिने। कमरे का कोना खोदकर एक हांडी में रुपये भर दिए। ऊपर से मिट्टी डालकर कमंडल के पानी से लेप कर दिया। लालटेन की रोशनी में वह देखता रहा, कहीं कुछ ऊँचा-नीचा तो नहीं है। उसने पैर से दबाया, फिर लेप किया। अब ठीक था। वह तख्त पर पड़ा-पड़ा रुपयों का हिसाब लगाने लगा। प्रातःकाल होने से पहले सेठ ने आकर देखा कि स्वामीजी का दरवाजा बन्द है।

"तो क्या स्वामीजी अभी सोकर नहीं उठे हैं ?" सेठ ने पूछा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है, स्वामीजी तो चार बजे उठकर स्नान के बाद ध्यान में बैठ जाते हैं। समाधि में होंगे।"

"दरवाजा भीतर से बन्द है।"

"कभी-कभी बन्दर या कुत्ते आकर विघ्न डालते हैं, इसलिए।"

"मैं जाने से पहले दर्शन करना चाहता था।" सेठ ने उत्सुकतापूर्वक कहा।

"तब तक आप हमारी तरफ बैठिये, मैं देखता हूँ। प्राय: दस बजे तक वे समाधि में रहते हैं।" स्वरूपानन्द ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा ताकि स्वामीजी समझ जायें।

"अच्छा देखिये, आपमें से कोई हाथरस आकर कमरों के लिए रुपये ले आइये, गाड़ी का समय हो रहा है।" सेठ ने वहीं से दरवाजे की ओर झुककर प्रणाम किया और चला गया। एक चेला उसे दूर तक पहुँचाने गया। दिन में ग्यारह बजे के लगभग एक शिष्य ने दौड़कर खबर दी कि सेठ गया नहीं है, आ रहा है। स्वामीजी उस समय भोजन कर रहे थे।

थाली हटा दी गई। झटपट हाथ-मुँह पोंछकर शंकरानन्द समाधि में बैठ गया। सेठ ने झुककर साष्टांग प्रणाम किया और सामने चटाई पर बैठ गया। स्वामीजी ने मुस्कराते हुए आँखें खोलीं और धीरे से बोले—

"मैं जानता था तुम सवेरे नहीं जा सकते।"

सेठ ने विस्मय से हाथ जोड़कर कहा, "दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। सोचा दर्शन करके ही जाऊँ।"

"मैं जानता था। रात-भर समाधि में रहा, दस बजे समाधि टूटी, ओम् शिव, ओम् शिव, तुम सवेरे भी आये थे।"

"जी महाराज। मन में आया बिना दर्शन के जाना ठीक नहीं है।"

"वह हमारी प्रेरणा थी। शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ?"

सेठ चुप रह गया। उसने चेले से पक्का मकान बनाने के लिए हाथरस आकर रुपया ले जाने की बात दुहराई, "तुमने महाराज से निवेदन कर दिया ?"

"नहीं, आप ही कह दीजिए, महाराज तो अभी समाधि से उठे हैं न ?"

"कमरे बनवाने हैं न ?" स्वामीजी अन्तर्यामी की तरह बोले।

"हाँ, महाराज !"

"तो बनवा दे। बन जायगा। शरीर भी तो पक्का नहीं है। आश्रम है, साधु-संन्यासी आकर रहते हैं, भोजन करते हैं। शिवोऽहम् शिवोऽहम् !" स्वामीजी ने आँखें फिर बन्द कर लीं।

चेले ने इशारा किया। सेठ उठकर बाहर आ गया। स्वरूपानन्द ने कमरों की लम्बाई-चौड़ाई के साथ जमीन दिखा दी और अन्न-क्षेत्र के लिए जोर डाला। सेठ ने दस साधुओं के नित्य भोजन का खर्च अपने ऊपर लिया और चला गया।

तीसरे दिन से कमरे बनने लगे। कमरों में लगाने के लिए सेठ के नाम का पत्थर स्वरूपानन्द हाथरस जाकर ले आया। जब सेठ ने अपने लिए भी एक कमरा रिज़र्व करने की बात स्वामीजी से की तो वे बोले, "संन्यासियों में गृहस्थ का रहना ठीक नहीं है। सेठ, दोनों के कर्म भिन्न

हैं।" सेठ ने उत्तर दिया, "महाराज, हम यहाँ भजन करने ही आयेंगे, गृहस्थ के लिए नगर क्या कम है ? मुझे भी वैराग्य हो रहा है। चाहता हूँ एक दिन आपके चरणों में आ बसूँ।"

स्वामीजी चुप हो गए। वे किसी तरह भी इस धर्म-संकट को न टाल सके। सेठ के लिए कमरा रिज़र्व हो गया। नौकरों ने दो-तीन पलंग, कुरसी, मेज लाकर कमरे में रख दिए।

एक दिन स्वामीजी ने अपने कष्ट की बात जब चमेली से कही तो उसने तत्क्षण कहा, "इसमें क्या बात है, आप सेठ को एक पत्र लिख दीजिये कि खाली रहने पर वह कमरा साधु-संन्यासियों के काम आवेगा। आप सेठ के आने पर भी उसे खाली न करें, वह अपने-आप धर्मशाला में ठहर जायगा।"

"बात यह है कि सेठ का यहाँ रहना किसी तरह भी ठीक नहीं है।"

"मैं जानती हूँ।"

"मुझे लगता है, मैंने सेठ का नाम कमरों पर लगवाकर गलती की।"

"उसमें कोई हर्ज नहीं है। इससे उसे सन्देह नहीं होगा।" चमेली ने उत्तर दिया, "क्या आजकल यात्री नहीं आते ?"

"भुखमरे यात्री आते हैं। तुम्हारे ललिताप्रसाद का क्या हाल है ?"

"अब मैं उससे बात भी नहीं करती, वह मूर्ख है।"

"तो आजकल कौन है ?" स्वामी ने व्यंग से पूछा।

"ललिता ने भंग की मात्रा बढ़ा ली है, वह दिन-रात माता पर पड़ा रहता है, लड़के ने घर से निकाल दिया है।"

"उसके पास रुपया तो होगा ? तुम किसी चिन्ता में हो आज ?"

"कोई खास बात तो नहीं है।"

"यदि मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँ। तुम मुझे अपना ही समझना चमेली !" वह तीखी निगाह से चमेली को देखता रहा। चमेली नीची नज़र किये तिनके तोड़ती बैठी रही। स्वामी रुककर बोला, "देखो चमेली !"

चमेली उसका मुँह ताकने लगी। उस समय सूर्य अस्त हो रहा था। सामने सुदूर क्षितिज में लाली फैल रही थी। सब-कुछ उस लाली में और भी सुन्दर हो उठा था। काली धोती में चमेली का गोरा चेहरा चमक उठा। स्वामी को लगा जैसे यह स्त्री, जो उसके पास बैठी है, अपूर्व सुन्दरी है। ऐसा सौन्दर्य तो उसने आज से पहले इसमें कभी नहीं पाया था। उसमें धीरे-धीरे नये भाव जगने लगे। वह सूर्य के सामने बैठी रमणी की तरफ और भी सरक गया। चमेली पीछे हट गई और बोली—

"यह क्या है, स्वामीजी ?"

"मुझे तुम स्वामी कहो चमेली, स्वामीजी नहीं।" चमेली ने गालों में भरे हुए पान को जीभ और दाँतों के बीच में भरकर चबाते हुए कहा—

"आप तो ब्रह्मलीन स्वामी हैं न ?"

"नहीं चमेली, यह सब गलत है, मैं तुम्हें धोखा नहीं देता। मैं तुम्हारे सामने हृदय खोलकर रख देना चाहता हूँ।" वह उठकर खड़ा हो गया।

चमेली ने बैठे-बैठे कहा, "स्वामीजी, मेरा जीवन बड़ा पापी है। मैंने कोई कुकर्म नहीं छोड़ा, कोई भी पाप ऐसा नहीं है, जो न किया हो। कभी-कभी मैं उसी आग में जलने लगती हूँ। मुझे शान्ति चाहिए। पिछले दिनों दो-एक बार आपके पास आने पर मुझे ऐसा लगा कि सचमुच आप तपस्वी महात्मा हैं।"

शंकरानन्द को एक धक्का-सा लगा। उसे अपने ऊपर क्षण-भर के लिए ग्लानि हुई। वह चुप रहा, किन्तु आवेग के क्षणों के कारण उसकी चेतना दब गई। वह बोल उठा, "चमेली, मनुष्य क्या व्यर्थ है, उसका सौन्दर्य, उसका बल क्या हीन है ?"

"मैं बहुत पढ़ी नहीं हूँ स्वामीजी !"

"मुझे तुममें जो कुछ है, उसीसे काम है।"

"वह झूठा है, असत्य है।"

"जो दिखाई देता है, वह असत्य कभी नहीं होता चमेली, वही ब्रह्म है।"

चमेली 'ब्रह्म' का नाम सुनकर हँस दी। इसी समय उसने देखा, दो आदमी आश्रम की ओर आ रहे हैं। शंकरानन्द ने 'ब्रह्म' शब्द जोर से कहा। यात्रियों ने आकर स्वामीजी को प्रणाम किया और बैठ गए। स्वामीजी कह रहे थे—

"सिया राममय सब जग जानी,
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी।

इसमें तुलसीदास ने नारी और नर-मात्र को ब्रह्म ही कहा है। यह सब जगत् ब्रह्म है, यही भाव है, जिसका सब भक्तों को अभ्यास करना चाहिए।"

एक दर्शनार्थी ने पूछा, "महाराज, संसार में कष्ट क्यों हैं?"

"क्योंकि यह संसार है, संसार का अर्थ है, सुख-दुःख का साथ चलना; जैसे नदी के साथ उसके दोनों किनारे रहते हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि नदी का एक ही किनारा हो। पर होता यह है कि कभी तुम नदी के एक किनारे से सटकर चलते हो कभी दूसरे से, यही सुख-दुःख का क्रम है। इसीलिए कष्ट हैं।"

"तो महाराज, भगवान् ने ऐसा संसार क्यों बनाया जिसमें सुख-दुःख दोनों हैं?" दूसरा पूछ बैठा।

स्वामीजी चौंके। यह असाधारण प्रश्न था, बोले, "वत्स, ये गूढ़ बातें हैं, भगवान् के रहस्य भगवान् ही जानते हैं।"

"आप तो भगवान् के ही हैं। आप तो जानते होंगे।" स्वामीजी नहीं चाहते थे कि चमेली के सामने हार मानें। उन्होंने इधर-उधर की बातें करते हुए कहा, "यों समझो, जो बच्चा पैदा होता है, क्या माँ-बाप उसके लिए कोई कष्ट उत्पन्न करते हैं? वे तो उसके सुख का ही ध्यान रखते हैं। फिर भी बालक कभी-कभी चलते-चलते गिर जाता है, चोट

लग जाती है, रोता है। क्या दुःख उसके माता-पिता ने पैदा किया ?" इस स्फूर्ति के लिए स्वामीजी ने गर्व का अनुभव किया। भक्त कुछ और प्रश्न न कर बैठे, इसलिए सूर्यास्त में लीन होने का रूप स्वामीजी ने दिखाया। भक्त फिर भी कहने लगा—

"प्रश्न का यह उत्तर ठीक नहीं है। माता-पिता तो सर्वज्ञ नहीं हैं, इसलिए बालक के गिरने में उनकी असावधानी भी कारण हो सकती है जबकि ईश्वर सर्वज्ञ है। वह चाहता तो कष्ट होते ही नहीं।"

दूसरे ने कहा, "दुःख न होते तो सुख का आभास कैसे मिलता, इस-लिए दुःख का होना जरूरी है।"

पहला बोला, "यह आवश्यक नहीं है कि सुख के लिए दुःख हो ही। सुख स्वयं एक चेतना है, एक अनुभूति है, जो जीवन को उत्फुल्ल किये रहती है। क्या यह ज़रूरी है कि हम ज्ञान के लिए अज्ञान को भी अपने में लपेटे रहें ?"

दूसरा बोला, " 'अज्ञानेनावृतंज्ञानम्' अर्थात् ज्ञान अज्ञान से ढका हुआ है।"

पहला हँसकर बोला, "ज्ञान अज्ञान से आवृत हो ही नहीं सकता, यदि वह अपने में पूर्ण है। गीता का तात्पर्य यहाँ कुछ और है।" वे दोनों आपस में बातें करते रहे। चमेली ने कहा, "स्वामीजी इस समय ब्रह्मलीन हैं, फिर कभी आइये।"

ब्रह्मलीन शब्द सुनकर दोनों चौंके। एक बोला, "हाँ संन्यासी ही तो हैं, इस पवित्र गंगा-तट पर ऐसे ही महात्मा लोग निवास करते हैं।" थोड़ी देर बैठने के बाद वे दोनों इधर-उधर घूमकर चले गए। स्वामीजी ने आँखें खोलीं। चमेली बोली, "क्या स्वामीजी ब्रह्मलीन हो गये थे ? लोगों की बातों से बचने का आपके पास बड़ा अच्छा उपाय है। आज वे लोग आपका मुँह बन्द कर देते।" स्वामीजी ने जवाब दिया, "ऐसे रोज़ आते हैं, कुछ लाभ हो तो बोलें भी।"

"लाभ से आपका मतलब रुपये से है। संन्यासी होकर भी आप

ऐसा सोचते हैं।"

"क्यों न सोचूँ, क्या मैं संसार में नहीं रहता, मैंने यह इमारत नहीं बनवाई ?"

"तब आपमें और दूसरों में क्या अन्तर है ?" इसी समय दोनों चेले गाँव से सामान लेकर आ पहुँचे। फल, मिठाई के अलावा कुछ कपड़े भी थे। स्वामीजी कमरे में चले गए। चमेली जा रही थी तो उसे भीतर बुला लिया। चमेली को छोड़कर सबने मिठाई खाई। चमेली चलने लगी तो स्वामीजी उसे पहुँचाने चले, रास्ते में बोले, "मेरी एक इच्छा है चमेली बाई !"

"क्या ?"

"तुम संन्यास ले लो।"

"मैं पापिन हूँ, स्वामीजी !"

"पाप धुल जायेंगे चमेली !" स्वामीजी ने चमेली के कन्धे पर हाथ रख दिया। चमेली ने हाथ हटाते हुए व्यंग्य से कहा, "ब्रह्मलीन स्वामीजी, जाइये। बहुत दूर आ गए।" कहकर हँसती हुई आगे बढ़ गई। स्वामी खड़ा देखता रहा, बोला, "यही अवसर है चमेली बाई, अब बहुत दिन नहीं हैं, निहाल कर दूँगा।"

चमेली ने उत्तर दिया, "कीचड़ में पड़ा हुआ दूसरे को कीचड़ से नहीं निकाल सकता। आज मेरी आँखें खुल गईं।"

उस समय रात हो रही थी। वातावरण में शून्यता व्याप्त थी। अचानक आगे बढ़कर उसने देखा औघड़ बाबा सामने खड़े हैं। पहचानते ही वह पैर छूने झुकी। बाबा हँसकर दूर हट गए, बोले, "बेटी, आदमियों को पहचानती है, अपने को भी तो पहचान। पहचान बेटी !" 'बेटी' पर जोर देकर वे एक तरफ निकल गए। चमेली को एक धक्का-सा लगा। उसका अन्तर झनझना उठा। एक प्रकाश की लहर उसकी आँखों के सामने आ गई। वह चलते-चलते खड़ी हो गई। यह क्या कहा बाबा ने, क्या मतलब है इसका ? वह देर तक मूर्ति की तरह

खड़ी उस ओर देखती रही जिधर वे गये थे। चमेली की आँखों के सामने चित्रपट की तरह उसका सम्पूर्ण जीवन घूम गया। एक क्षण को उसे लगा जैसे उसका कंकाल रौरव की तरह भयंकर होकर उस पर हँस रहा है। उस एकान्त में उसके प्राण काँप उठे। इधर, उधर, जिधर भी वह देखती वही 'कंकाल' उसे दिखाई दे रहा था। भय से काँप कर उसने आँखें मूँद लीं। चिल्लाई पर चिल्ला न सकी। उसे लगा जैसे उसकी आवाज़ बन्द हो रही है, साँस घुट रही है। न जाने यह क्या हो रहा है? वह आँखें मूँदे हुए देर तक खड़ी रही। जब काफी देर के बाद उसने आँखें खोलीं तो उस अँधेरे में भी उसने देखा बाबा खड़े हँस रहे हैं जैसे उन्होंने उसके सिर पर हाथ रख दिया है। उसके हृदय में साहस का संचार हुआ, एक अपार बल जैसे उसके शरीर में व्याप गया।

संस्कारहीन चमेली उन स्त्रियों में थी जिनके मन का विकास उच्छृंखल विलास में होता है। बचपन में माँ-बाप की अशिक्षा और लापरवाही के कारण वह गाँव के जिस वातावरण में पली उसमें नियन्त्रण कुछ भी नहीं था। वह लहर की तरह बही, जिसमें रुकावट नहीं थी।

आसपास की असंयत कुचेष्टाओं, गालीगलौज-भरी हँसी की बातों और पशुओं-सी अदमित भाव-भंगियों से आठ-नौ साल की उम्र में ही उसने उकसाने वाला यौवन-ज्ञान पा लिया। उसके अर्धविकसित मन में सहवास के बीज फूट पड़े। तेरह-चौदह साल की होते-होते वह ललिता के साथ भागी पर स्टेशन पर ही पकड़ ली गई। सूरत-शक्ल की अच्छी तो थी ही। माँ-बाप ने पास के एक शहर में पैंतीस-चालीस के एक विधुर मुनीम के हाथों उसे बेच दिया। मुनीम हाथरस से अहमदाबाद, बम्बई, सूरत, बड़ौदा जहाँ-जहाँ गया उसे साथ ले गया। चमेली ने जिस विभाग में बचपन में मेट्रिक तक ज्ञान पाया था उसी यौन-विज्ञान

कक्षा में उसने एम० ए० कर लिया। पति जैसे-ही-जैसे निरिच्छ हुआ, पत्नी वैसे-ही-वैसे स्वेच्छ होती गई। विवेक का उपयोग उसने 'स्वैरविहार' में किया। आचार, अनाचार में माना। अपने आसपास मँडराने वाले प्रत्येक भौंरे को रस बाँटकर गुञ्जन में अभिनन्दन पाया। रुपये का लोभी पति जब काफी रात गये सेठ की दूकान से लौटता तो देखता कि अप्सरा बनी चमेली लोगों के साथ बैठी हँस रही है। बूढ़े ने उसे डाँट में रखना चाहा तो उसने छोड़कर भाग जाने की धमकी दी। कभी वह बाजार से खाकर आता और कभी आधी रात को खुद चूल्हा फूँकता। एक बार वह एक महीने तक बाहर रही—न जाने कहाँ, किसके साथ? पति ने समझा चली गई अब नहीं लौटेगी। वह एक तरह निश्चिन्त होकर मानने लगा कि रुपये के लिए उसने जो पाप किये हैं, उनसे भी बड़ा पाप इस नारी को खरीदकर पत्नी बनाना है। प्रारम्भ के दिनों में जो उसने दिन में रुपये और रात में नारी से खेलने के जीवनोद्देश्य बनाये थे, उनमें पहला तो निरन्तर उसके साथ चलता रहा, दूसरे ने कमर तोड़कर उसे विरक्त कर दिया। पहले वह पत्नी पर हावी था, अब पत्नी ने बेलन और झाड़ू से उसका षोडशोपचार पूजन करना शुरू कर दिया। अब बिना माँगे उसे शांत रस में आनन्द मिलने लगा। जहाँ पति गतिहीन हुआ, वहाँ पत्नी गतिमान।

एक दिन जब दूसरी ताली से चमेली ने उसका सन्दूक खोलकर रुपया निकाल लिया तो जैसे रुपयों में अटकी हरीराम की साँस भी प्राण तोड़ने लगी। उसने सन्दूक पर बिछे कपड़े से पत्नी को पीटना शुरू किया। क्रोधावेश में स्याही-भरी पीतल की दवात उसकी पीठ पर दे मारी। उसके मारने में जितनी उछल-कूद थी, वाणी उससे कम; और ताड़ना की मात्रा तो उतनी ही हो सकी जितने से कोई लड़ाई के समय दीवार तोड़कर ईंट से मारने की व्यवस्था कर सकता है। हरीराम के इस व्यवहार से बचपन में कुएँ की रस्सियों और डंडे से पिटने वाली चमेली और उद्दण्ड हो गई। जैसे बहती हुई नदी घास के गट्ठर और

कूड़े-कर्कट की परवाह नहीं करती, वैसे ही चमेली ने अपने यौवन की नदी में प्रारम्भ से ही पति की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया और वह लाज और मर्यादा के दोनों किनारे तोड़कर बह उठी। मकान में छत पर जाने के लिए जीना प्रायः एक ही होता है, किन्तु छत पर से कहीं भी नीचे गिरा जा सकता है। शराब और जूए के साथ उसने लोगों को फँसाना, चकमा देना सीखा। फिर चौर्य-शास्त्र-नैपुण्य प्राप्त किया। पति ऊपर कमरे में बन्द रहता तो नीचे मकान में ये काम होते। आखिर में हिस्सा-पत्ती के लोभ से पति ने बाहर पहरे तथा बाजार से पान-मिठाई लाने का काम सँभाल लिया। एक दिन पुलिस के डंडे ने इस सारी कार्रवाई की चाबी बनकर हरीराम के मुँह का रिकार्ड खुलवा दिया। उसमें जहाँ उसे थाने में पिटने की नई-नई पद्धतियों का ज्ञान हुआ, वहाँ चमेली तथा अन्य लोगों को भी जेलखाने का अनिवार्य निमन्त्रण भी स्वीकार करना पड़ा। छः महीने के बाद एक दिन चमेली लौटी तो उसने सुना पतिदेव पुलिस की पिटाई का पासपोर्ट पाकर वहाँ चले गये हैं जिसकी कामना वह पिछले बहुत दिनों से झाड़ू के साथ जब-तब करती आ रही थी।

ज्ञान-शास्त्रियों ने ज्ञान की प्राप्ति के कई विभाग किये हैं। उन्होंने माना है, कुछ बातें मनुष्य को सीखनी पड़ती हैं कुछ वह स्वयं सीख जाता है, बिना रुकावट के। दौड़ना जानने वाले को जैसे चलना आना स्वाभाविक है, वैसे ही चमेली ने भी यौन-परम्परा के सभी ज्ञान हासिल कर लिये। प्रत्येक विधि के निषेध, अपवाद उसने जान लिये। सारांश यह, जब शहतीर किनारा छोड़कर धार में आ जाता है तो जैसे उसका रुकना अनुमानहीन हो जाता है, उसी तरह चमेली की स्वच्छन्दता ने यौवन की धार में बहकर उसे अप्रतिहतगामी बना दिया। सौभाग्य की बात यह हुई कि बहाव में वह डूबी नहीं, तैरते हुए भी उसने होश नहीं खोये। चट्टानों से टकराते-टकराते वह स्वयं बची और इस सारी यात्रा में उसने जो ज्ञान प्राप्त किया उसने

जहाँ उसे चतुर बना दिया वहाँ उसे आत्मविश्वासी भी बनाया। वह कुछ दिनों तक एक जुआरी के पास रही, फिर उसकी घुमक्कड़ और एक जगह बँधकर न रहने वाली प्रकृति ने शहर के एक प्रसिद्ध गुंडे के साथ बाँध दिया। वहाँ से ऊबकर वह डाकुओं के सरदार के पास जा रही। ऊबड़-खाबड़ भूमि पर घोड़े की सवारी के साथ पैदल दौड़ना, पेड़ पर चढ़कर छिपना, बन्दूक चलाना आदि सब उसने सरलता से सीख लिया। जब एक दिन सरदार मारा गया और उसके साथी पकड़े गए, तब वह किसी तरह बचकर भाग निकली। इधर-उधर घूमने के बाद एक दिन वह पद्मपुरी लौट आई।

जैसे ही चमेली ने घर में पैर रखा तो देखा शिवचरन चूल्हा फूँक रहा है। चारों ओर धुआँ-ही-धुआँ फैल गया है, दीये की रोशनी धुएँ से नहाकर बेहोश हो गई है। सामने थाली में आटा मड़ा रखा है। ऊपर चूल्हे पर कुछ चढ़ा है। शिवचरन है कि बेतहाशा चूल्हा फूँके चला जा रहा है। चमेली देर तक आँगन में उसका तमाशा देखती रही। फिर बोली—

"अरे शिवचरन, चूल्हा नहीं जलता, ठहर, मैं फूस लाती हूँ।"

"कंडा गीले हैं चमेली, आँखिन ते पानिउ झरन लगो, फूँसउ तो ससुरो गीलो है।"

चमेली ढेर में से फूँस का मुट्ठा खींच लाई और चूल्हे में लगा दिया। भक-भक करके आग जल उठी। उसी रोशनी में उसने देखा खाट पर कोई लेटा है।

"यह कौन है शिवचरन?"

"रिपुदमनसिंह।"

रिपुदमन चमेली को आया जान जाग पड़ा। उठकर बैठ गया। चमेली सामने चटाई पर बैठ गई।

"क्या बात है ?"

"तेरा इन्तजार था, कहाँ गई थी ?"

"ऐसे ही, हाँ कह।"

आज दोपहर को खेरापत और हम अलीनगर गये थे बाजार करने। वहाँ खेरापत और मैंने पी। वह सुसरा वहीं नाचने, हुल्लड़ मचाने लगा। एक औरत के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"फिर ?"

"पुलिस ने पकड़ लिया।"

"और तू भाग आया ?" चमेली ने ताने के साथ कहा।

"क्या करता, डर है कहीं साला भेद न खोल दे। भीतर चल, वहीं कहूँगा।" दोनों भीतर जाकर खाट पर बैठ गए।

"अब क्या हो, मुझे डर है कहीं बक न पड़े सुसरा।"

"हूँ" कहकर चमेली सोचती रही, बोली, "इसी से कहती हूँ शराब मत पिया करो। शराब पीकर ही राधा मारा गया। उसे भी मैंने बहुत समझाया।"

"कौन राधा, वह मशहूर डाकू ?"

"नहीं, एक और आदमी था। चल, जाने दे रिपुदमन !"

"तो तू उस मशहूर डाकू को भी जानती है ?"

"कह तो रही हूँ, वह और आदमी था।" डपटकर चमेली ने जवाब दिया।

रिपुदमन चुप हो गया। उसे लगा चमेली बहका रही है। वह शृङ्खला जोड़ने लगा, अवश्य इसका उस डाकू से सम्बन्ध रहा होगा। इसी की बातों में आकर उसे इधर-उधर डाका डालने का प्रोत्साहन मिला, वरना एक औरत इतनी हिम्मत वाली नहीं हो सकती। इसी ने तरीके बताये हैं, शिक्षा दी, तभी तो सफलता मिली है। उस समय शराब का उतार था, देह टूट रही थी, चाहता था कहीं से एक चुक्कड़ मिल जाता। फिर एकदम खेरापत के पकड़े जाने के विचार ने उसे आ

घेरा। उधर चमेली ने जो सुना कि खेरापत पकड़ा गया है, तो वह भीतर-ही-भीतर डर गई। उसकी तीव्र बुद्धि ने तत्काल उपाय सोचा और बोली, "रिपुदमन, ले बीड़ी पी।" सामने रखे कट्टे में से एक बीड़ी निकालती हुई फिर बोली—

"मामला टेढ़ा है रिपुदमन, अगर कहीं उसने पुलिस के सामने बक दिया तो तुम सब पकड़े जाओगे। मुझे तो आज की रात भी अच्छी मालूम नहीं होती।"

"तो फिर ?" चिन्तातुर होकर रिपुदमन ने बीड़ी फेंकते हुए पूछा।

"भागने के सिवा कोई उपाय नहीं है। मँगनियाँ, होती कहाँ है ?"

"दो दिन से मिले नहीं हैं।"

"तू फौरन उठ, और उन दोनों को साथ लेकर कहीं भाग जा। न हो तुम सब साधु हो जाओ या कहीं मेहनत-मजदूरी करो। दुकान खोल-कर व्यापार कर लो। साल-दो साल इधर आने का नाम मत लेना। अपने नाम भी बदल लेना। पुलिस आती होगी, जा। सब अलग-अलग रहना, भला !"

रिपुदमन उठकर फिर बैठ गया। वह घबरा रहा था। बोला—

"कहाँ जाऊँ ?"

"जहाँ सींग समाएँ, घर कह देना नातेदारी में जा रहा हूँ। तुझे तो अब तक भाग जाना चाहिए था।" चमेली ने हाथ पकड़कर उठाया और बाहर आकर उसे समझाने लगी। भीतर से निकालकर उसने रुपये दिये। फिर भी रिपुदमन डर रहा था। स्वयं मंगनियाँ और होती के घर जाकर उन्हें तैयार किया।

बागों में होकर, गंगा पार करके स्टेशन से बैठने का आदेश देकर जिस समय चमेली आई तो रात के ग्यारह बजे से ऊपर का समय हो चुका था। शिवचरन रोटी चूल्हे पर रखकर चटाई पर पड़ा ऊँघ रहा था। दीया टिमटिमा रहा था। स्वयं चमेली का हृदय भी एक बार काँप गया। चमेली को आया जान शिवचरन ने आँखें खोलीं—

"रोटी धरी है।"

"तू ने खा ली ?"

"का करतो, तू खाय ले।"

"हाँ। ऐसा कर, आज रात अपने घर जाकर सो जा।"

"बारह बजे ?"

"हाँ, जा जल्दी।"

शिवचरन अनमना-सा उठा, चमेली ने उसे बाहर निकालकर दरवाजा बन्द कर दिया। उस रात चमेली नहीं सोई। उसने एक-एक करके सब गंगा में फेंक दिया। गंगा के किनारे खड़े उसे एकान्त में औघड़ बाबा की बातें याद आ रही थीं। तो क्या यह उसका काया-कल्प था ?

जिस दिन धनुआँ लोधे के ऊपर ललिता पंडित के पान की पीक गिरी थी, धनुआँ ने उसी रात अपनी जाति के लोगों को इकट्ठा करके दुहाई देते हुए पुकार-पुकारकर कहना शुरू किया—

"भाइयो, जाति-बिरादरी के पंचो, अब या गाम में रहिवे कौ धरम नइयें। भला मैंने का कई ! जिई तौ कही, पंडित देखि कें थूको करौ। तो साब तुम्हारे की, बीसों सुनाईं वा पंडित ने। गारी दई सो अलग। जैसे हम आदमी नायें। जैसे हम उनकौ दयौ खातें। अब तुम कहौ तो गामू छोड़ि जायँ।"

"कौन हो ?" एक ने पूछा।

"ललता पंडित। सारे के दांतऊ तौ नायें। 'पिच्च' करके पीक थूकी। मैं तौ तुम जानो साब, सूधौ जाय रह्यो हो सिब्बा के घर कूँ, कें इतने में का नामु है वा पनवारी कौ, बसि बा की दुकान के पास सूं जैसेइ गुजरौ 'पिच्च' करके थूकि दीनों वा ललता ने। मेरे टोकतई बर्र के छत्ता-से सब मोपै टूटि परे।"

"सारेन के दये न लट्ठ। मैं होतौ तौ देखतौ।" एक जवान लोधा दोनों हाथों मे चिलम पीता दूर से ही बोला।

दूसरे ने कहा, "रोटी लग गई हैं इन बामनन कूँ, मुफत कौ खातें। हमारोई खातें, हमेंइ दाँत दिखावतें।" उसने चिलम का कश खींचकर हवा में उड़ाते हुए पास के एक साथी को जैसे ही चिलम दी, वैसे ही जाना वह लोधा नहीं, चमार है। उसने हाथ खींच लिया और दूसरे आदमी को चिलम दे दी। नेता चमार सकपकाकर पीछे हट गया। चौपाल में खाट पर हुक्का पीता एक बूढ़ा लोधा धुआँ मुँह से निकालकर बोल पड़ा, "अरे काये कूँ गारी देतौ, आखिर तौ बामनई हैं। गिरि गयौ होइगौ थूक गलती सें। लड़ाई-भिड़ाई में का रखौ है?"

"बामन हैं तौ का काऊ के ऊपर थूकिंगे? हममें-उनमें फरकई का है? नायँ साब, जि नायँ होयगी। मारे लट्ठन के मूड़ न फोर दये तौ कइयौ।" वही जवान फिर चिलम हाथ में लेकर बोला।

"अब तुमइ देखौ साब, मेरौ तौ खून खौलि रयौ है। मोयतौ रोटिउ अच्छी नायँ लगै।" धनुआँ बंडी के बटन लगाता हाथ बढ़ा-बढ़ाकर कहने लगा। इसके साथ ही उसने बूढ़े का हुक्का पास बैठे एक दूसरे व्यक्ति को देते-देते स्वयं पीना शुरू कर दिया और दो-तीन कश लेकर फिर खड़ा हो गया। बोला, "दादा, तुम भये बूढ़े, तुमाई का है, आज मरे कल्लि दूसरौ दिन। तुमें का करनों है? रैनों तौ हमें है, ऐसे पिस कें रंगे तो है चुकौ। कल्लि कूँ हमारी बइयरबानिन कूँ पकरि के लै जांगे, तौऊ चुप्प रहें का, तुमइ कहौ पंचो?"

उकड़ूँ बैठे एक आदमी ने, जो हुक्के की तलाश में था, अपने मैले दाँत बाहर निकालते हुए धनुआँ से कहा, "धनीराम, बात तुमारिउ ठीक है और बात कक्काऊ गलत नायँ कैत। कोउ और होतौ तो सारे कूँ मैंई खोदि कें गाढ़ि देतौ, पर जे हैं माम्न, थूकि दीनों तो तुम्हीं गम खाओ।" इसके साथ ही उसने झपटकर हुक्का ले लिया और आँखें बन्द करके पीना शुरू कर दिया। हर कश के बाद वह धीरे से आँखें

खोलकर देखता कि उसकी बात का क्या प्रभाव पड़ा। उसने माना कि एक लाख रुपये की बात कह दी है। और लोग भी बैठे थे पर एक हुक्का, एक चिलम होने के कारण लोगों को बातों में रस नहीं आ रहा था। हर बात के बाद हुक्के के लिए झपटते जैसे कोई खिलाड़ी दौड़ के बाद पुरस्कार लेने की इच्छा रखता हो। धनुआँ फिर भी बढ़-चढ़कर बातें कर रहा था। इसी बीच धनुआँ की माँ एक और हुक्का भर लाई। चिलम दुबारा भरी गई। धनुआँ ने अपने आदमी से कहा—

"बरव्वर चिलम और हुक्का भरतौ चल रे!" बातचीत में ठंड फैल रही थी। लोग अपने घर-खेत की बातें करने लगे। इसी समय धनुआँ की माँ बोली—

"कक्का, तुमई कहौ न कछु, का कन्नो है? मेरी मानों तो जान देउ, गामई के तौ हैं।"

'जेई मैं कैतूँ धनुआँ की अम्मा! का रखो है लड़िबे-झगड़िबे में? हम तौ पुराने आदमी हैं, बामनन कूँ मानतें। मरिबे-जीबे में जेई काम आवतें। छोरा कूँ समझाइले न तनक।" बूढ़े ने जवाब दिया।

कोने में घूँघट निकाले सनकिया बोली, "मैं तौ कक्का, तबसूँ कैरई हूँ कै काये कूँ मूड़ फिरि गयो है तेरौ। अरे थूकौ तौ का भयौ। बामनई तो हैं। न जाने कौनसी जंग जीतिबे चलौ है! इन लरिकन में जोसु बड़ौ है कक्का।" फिर चिल्लाकर बोली, "बु लुगाई मानें तब न, बानेई लूगर लगाये हैं। सैर की है न! बुनायं मानें बामनन कूँ।"

"चलौ जान देउ धनीराम!" नेता चमार ने लट्ठ ताने दूर से कहा—

"तुम चमट्टन कौ काम नायें। लोधे छत्री हैं नेती।" एक ने उसी समय कड़ककर कहा।

"हम चमट्टायें और तुम छत्री हौ। मौं संभारिकें बातें करौ साब तुमारे की, ह्यां काउ सारे के दबैल नायें। होउगे लोधे तौ अपने घरकूँ। देखौ तौ हमें चमट्टा कहतुए, तुम नाओं लोधरा।"

इस पर काफी देर तक चेंचें-मैंमैं होती रही। फिर भी हुक्के पर निरन्तर भार पड़ रहा था। उसकी छीना-झपटी चल रही थी। इधर जवान लोधों ने चमारों को नीच कहा और चमारों ने लोधों का डटकर मुकाबला किया। थोड़ी देर झाँय-झाँय के बाद एक ने बीच में पड़कर समझौता कराया। ब्राह्मणों के सम्बन्ध में फैसला हुआ कि ब्राह्मणों से अब कोई सरोकार नहीं रखेंगे।

नेती ने अपनी विजय के समाचार जब मुहल्ले में जाकर सुनाये तो बिना पूरी बात सुने चमार लड़कों ने लोधों के बाप-दादों का तर्पण किया। इसके बाद बायकाट का प्रस्ताव आया। नेती ने इस पर समझाया कि अब लड़ाई की कोई बात नहीं है, तो भी चमार युवक पीछे नहीं हटे। उन्हें लगा, समझौता होने पर भी चमारों का अपमान हुआ है। एक ने बीच में पड़कर कहा, "बायकाट तुम का करौगे, तुमारे पास है का ? जमीनें तुमारे पास नायें, कछु मिस्त्री हैं, कछु खाल खींचतें, करौगे का ?"

यह ठीक था। प्रायः सभी चमार दूसरों के सहारे मेहनत-मजदूरी करके जीते हैं और कुछ खेतों में काम करते हैं। इन्हीं में एक लठैत चमार, जो जमींदारी के दिनों में किसी ठाकुर के यहाँ उगाही का काम करता था, बोल पड़ा, "नेती, तुम घंघरिया-उड़नियाँ पैरि कें घर जाइ बैठो, भलेमानसौ, तुमसूँ इतनोउ न भयौ कें द्वै-चारि के मूड़ फोरिकें आवते। फिरि हम देखि लेते। लोधनु में हिम्मत नायँ होति। छत्री तो दो ही हैं, कैतौ ठाकुर और कै जाटव।"

और लड़कों ने मिलकर नेती को बुरा-भला कहा। लठैत चमार बहुत दिनों से खाली बैठा था। नौकरी कोई थी नहीं और कोई काम वह कर नहीं सकता था। आज उसने देखा कि चमार युवक उसकी तरफ झुके हैं इससे फायदा उठाना चाहिये। उसने सब लोगों को लोधों के खिलाफ भड़काया। एक-एक करके लड़ने की हिम्मत रखने वाले लोधों के नाम गिना दिए और यह भी बताया कि जरूरत पड़ने पर

उसके ठाकुर दोस्त भी मदद को आ सकते हैं। थाने के कुछ सिपाहियों से भी उसकी दोस्ती है। जरूरत पड़ने पर वह लोधे के हथकड़ियाँ डलवा सकता है। लोगों ने नेती को निकम्मा और सोनी को नेता मान-कर सबक सिखाने का निश्चय किया। सोनी ने धीरे से सलाह दी कि रात को धनुआँ के घेर में आग लगा दी जाय। इससे एक तो मुफ्त में दो-एक मरे जानवर मिलेंगे, दूसरे लोधों को भी मालूम होगा कि जाटव कम नहीं हैं। उसी समय एक ने पूछा, "धनुआँ कूँ मालुम परि गई तौ?" दूसरा बोला, "सारेऔ, एक-एक करिकें पकरे जाउगे, जेल होइगी सो अलग।"

बूढ़े-प्रौढ़ सुनकर डर गए। सोनी ने चमड़े का काम करने वालों को उकसाया तो नेती ने बड़े-बूढ़े की तरह कहा, "लड़ाई में कछु नायँ रखौ सोनी, लोधे मालदार हैं। तुमारे पास मुकदमा कूँ पैसऊ तौ नायें। है कोऊ तुममें ऐसौ, जो बखत परे पै देगौ? पाँच हजार पैलें रखि लेउ, फिरि बातें करौ।"

"पाँच हजार की का जरूरतिए। मैं थाने के सिपाहिन सूँ कँ कें ऐसेई सबन कूँ भीतर कराय दंगो," सोनी ने मूँछों पर ताव देकर अपने साथियों की ओर देखा।

एक बूढ़ा चमार, जो बिरादरी का सरपंच था, उठकर बोला, "कल्लिकूँ उनन्ने तुमारे झोंपड़ा में आगि दैदई तौ का करौगे? तुमारौ तौ एकऊ पक्कौ मकान नायें। जा सोनी की का बात है, जि तौ मरिवे कूँ डोलै है। जाऔ काम करौ।"

चिलम के धुएँ के साथ लोगों के विचार ढीले पड़े। सोनी एक-दो साथियों के साथ वहाँ से हट गया। सरपंच चमार का लड़का जवान था, वह सोनी से मिल गया।

सबेरे लोगों ने सुना कि धनुआँ लोधे के घेर में आग लग गई। घेर फूँस का था। वहीं गाय, बैल, भैंसें थीं। जानवर बचा लिये गए। एक बछड़ा थोड़ा जल गया। कोने में रखे चरी के पूले भी जल गए। लगा-

नार मिट्टी डालते रहने के बाद जाकर कहीं आग शान्त हुई। हजूम में से कुछ आग बुझा रहे थे, कुछ तमाशबीन तमाशा देखते रहे। सोनी भी एक तरफ अपने साथियों के साथ था।

धनुआँ ब्राह्मणों को गालियाँ दे रहा था। कुछ लोग ब्राह्मणों का शाप बता रहे थे। धनुआँ के घर काम करने वाला नौकर एक ओर खड़ा कह रहा था कि रात को जब खटका हुआ तो उसने उठकर देखा कहीं भी कुछ नहीं था। वह फिर सो गया। उसके बाद उसे कुछ नहीं मालूम। धन (जानवरों) के रंभाने पर उसकी आँखें खुलीं। इसी समय चौकीदार ने पुकारकर कहा, "रपट लिखी जायगी चौधरी, चलौ थाने। काऊ पै सकु होय तो बाकौ नाम लिखवय्यौ।"

धनुआँ थाने का नाम सुनकर काँप गया। उसे मालूम था थाने जाने के क्या अर्थ होते हैं। रुपये के अलावा पिटाई तो होगी ही, बार-बार की हाजिरी में खेती का नुकसान होगा सो अलग। थोड़ी देर सोचने के बाद चौकीदार को एक तरफ ले जाकर दो रुपये देते हुए उसने कहा, "आग अपने-आप लगी है चौकीदार!"

चौकीदार तो इसीलिए आया था, बोला, "कोई बात नायें धनीराम, मैं नौ ऐसेई कैतो।" कहौ तौ काऊ सारेउ पकरवाइ दऊँ, बड़ौ अच्छौ मौकौ है।"

"नायं, रैन्देउ चौकीदार, वैसे तौ तुम जानौ मोय ललिता पंडित पै सक्रुए। सारे ने मोपै थूको और आगिउ लगवाई।"

"कहौ तो सारे कौ नाम लेदऊँ। तुमें कैनौ परैगौ।" चौकीदार ने प्रश्न किया। एक बार धनुआँ के मन में आया कि चौकीदार के साथ जाकर शिकायत कर आए पर उसी समय सरपंच बूढ़ा लोधा आ गया। उसने धनुआँ का हाथ दबाकर झटका और चौकीदार से कहा—

"गाम कौ मामलौ है भैया, तुमउ गाम के हो। जान देउ, का रखौ है सिकायत-फिकायत में? जाओ, लेउ जि एक कलदार।"

चौकीदार चला गया। उसे तीन रुपये मिल गए थे। उसने सोचा

थाने में रिपोर्ट लिखाने पर कुछ भी न मिलता, दरोगा डाँटता सो अलग। यह अनायास इतना मिल गया। उसका मन ललचा उठा। इधर वह ललिता की तलाश में घूमता फिरा ताकि उसमें भी कुछ झटक ले, लेकिन वह मिला ही नहीं। शाम होते-होते वह फिर धनुआँ की तरफ गया। धनुआँ खेत से लौटकर सानी कर रहा था। उसकी मां दूध के लिए कमोरी लेकर खड़ी थी। नौकर एक कोने में चरी काट रहा था। दिन-भर में आधा छप्पर बन पाया था, वही एक कोने में रखा था। बाकी जगह बिखरे हुए फूँस के पूले। बछड़े रंभा रहे थे। झुटपुटे में चौकीदार आवाज लगाता पहुँच गया—

"धनीराम हैं का ?"

"कोऐ ?"

"हम हैं चौकीदार।"

"आओ ठाकुर, का बात है ?" धनुआँ का भीतर काँप गया, जैसे जल्लाद आ गया हो। माँ भी डरी। उसका हाथ रुका। चरी काटते-काटते नौकर ठहर गया। चौकीदार लापरवाही से कहने लगा, "बात कछु नायँ और हैऊ। तुम दूध दुहि लेउ। नेंक चलनो है।"

"कहाँ ?" धनुआँ सानी से सने हाथों से काम करता खड़ा हो गया। चौकीदार बोला, "सुनो धनीराम, दरोगाजी कूँ मालुम है गई है। काऊ सारे ने कै दई दीखतिये, सो भैया, मेरी नौकरी पै आँच आई तौ तुम जानो विरचो मुसकिल परि जायगी। थाने तौ चलनोई परैगी।" चौकी-दार लट्ठ तानकर खड़ा हो गया।

"या बखत ?"

"अब जो समझौ, रपट तौ लिखानी ई परैगी।"

"काए कूँ लल्ला हलकान करतुए, जान दै बस।" धनुआँ की माँ ने आगे बढ़कर निहोरे के स्वर में कहा। "कह दीजो, कछु नायँ भयौ।"

"तौ धनीराम, थाने में दरोगाजी सूँ जिई जायके कह दीजो, मोय का है।" चौकीदार ने जवाब दिया। उसने देखा भैंस है पछाँव

की, कम-से-कम छः-सात सेर दूध देती होगी। पास ही गाय खड़ी थी। नौकर ने चरी काटते-काटते उठकर एक टोकरा सानी गाय के सामने डाली। सानी का बरतन ले आया, खली का पानी डालकर न्यार मिलाने लगा। गाय सानी खाने लगी, बछड़ा कूदने लगा। चौकीदार पिछले कई मास से बिना दूध के था। मरी-सी एक गाय थी, वह ब्याने के लिए पास के एक गाँव में दे आया था। कभी इधर-उधर से मठा मिल जाता। धनुआँ भीतर से बरतन लेकर लौटा और बोला, "कुँवर लेउ, आज खीर बनय्यौ, काए कूँ मोय परेसान करतौ ? तुमई कँ दय्यौ दरोगा सूँ के साब तुमारे की, कछु नायँ भयौ। काऊ ने वैसेई उड़ाय दई है। बैठौ, चिलम पियौ, अरे ओ सोती, ठाकुर कूँ चिलम तौ भरि दै।"

धनुआँ ने पास खड़ी खाट बिछा दी और बोलता हुआ माँ से बरतन लेकर भैंस के थन धोने लगा। थोड़ी देर मसलने के बाद उसने दुहना शुरू किया। बरतन में 'धर्र धर्र' की आवाज आने लगी। माँ ने बछड़ा खोल दिया तो बहू एक और बरतन ले आई। उसने बछड़े को पकड़ा, माँ दूध दुहने लगी। नौकर फिर चरी काटने बैठ गया। चौकीदार दूध का बरतन रखे चिलम पीता रहा। उसके चलने पर धनुआँ बोला, "लोटा पहुँचाय दय्यौ।"

"हाँ, मिल जायगौ।" दूध लेकर चौकीदार चला गया। धनुआँ ने दूसरे दिन छप्पर छा लिया। शाम तक आग का निशान भी नहीं रहा। जली लकड़ी के थून और बाँस की खपच्चियाँ जलाने के लिए भीतर डाल दीं। चौकीदार शाम को फिर आ धमका। उस समय धनुआँ के पास लोधों का सरपंच बैठा हुक्का पी रहा था। चौकीदार गीध गया था, वह अब फिर दमपट्टी देकर दूध की फ़िराक में आया था। दूर से ही भाँपकर धनुआँ ने सरपंच को सब बीती सुना दी। बूढ़ा खुर्राट था; चुपचाप सुनता रहा। चौकीदार के आने पर उसने खाट के सिरहाने बिठाया। हुक्के से चिलम उतारकर देते हुए उससे कहा, "लेउ, कहौ कैसे आमनौ भयौ ?"

"इन्हें वे दरोगाजी बुलावतें ।" चौकीदार ने झेंपते हुए पर हिम्मत बाँधकर जवाब दिया ।

"दरोगाजी दिन में क्यों नायँ बुलावत, सई-संझा परेसान करतें । तुम्हें तीन कलदार परसों दये । कल्लि तुम द्वै सेर दूध लै गये । आज फिर आये । का मन में है तुमारे, हमेंऊ तौ पतौ लगै । (वह चिल्लाकर कहने लगा) मैं आजई एक मुकदमा सूँ बगदौऊँ (लौटा हूँ) । दरोगाऊ वहाँ हते । भौत देर गाम की बातें होति रईं । उनन्ने तो मोसूँ कछु नायँ कई । तोई सूँ दरोगाजी कैतें । भली बात जाई में है कें सूधे लौटि जाउ । (चिल्लाकर) समझ में आई के नायँ ।" बूढ़े का स्वर कड़ा हो गया । जोर से बोलने के कारण उसे खाँसी आ गई । पीछे की तरफ थूककर उसने गला साफ किया और कहा, "जाओ, जाओगे के नायँ, सबरी चौकीदारी निकरि जायगी ।" चौकीदार ने पहले अकड़ दिखाई । फिर बकता-झकता बोला, "मैं चौकीदार हूँ गाम कौ, जानतौ कें नायँ ?"

"सुनि रे ठकुट्टा, सौ लोधेन के घर हैं । कल्लिई सबन के अँगूठन सौं एक दरखास्त दई जायगी कैं जि चौकीदार लोगन सूँ घूँस माँगे है, समझी । सारे, काए कूँ मरिवे डोलै है ? जा कारौ मों करि ।" सरपंच की प्रभावशाली आवाज और भारी व्यक्तित्व से गाँव में उसकी धाक थी । चार सौ बीघे का किसान था । बीसियों मुकदमे चलते रहते थे । बड़े-बड़े ठाकुरों को वह नाकों चने चबा चुका था । फिर दरोगा, तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर जब दौरे पर आते तो दूध, दही, घी, आटा उसी के यहाँ से जाता । सुबह से शाम तक उनके साथ रहता । वे भी इसे मानते । सरपंच नया भरा हुक्का पीकर उठने को हुआ तो उसने देखा एक आदमी सड़क पर जा रहा है । उसने धनुआँ से पूछा, "कौन होयगौ ?"

"चाल सूँ तौ ललिता पंडित दीखतु ऐ ।" धनुआँ ने गौर से देखकर जवाब दिया । बूढ़े ने गाँव आने-जाने वाले को अपनी स्वाभाविक परम्परा

से पुकारा, "कोऐ ?"

"हम हैं ललिता प्रसाद ।"

"पालागन पंडित ।"

"खुस रहौ जिजमान ।"

"चिलम पी जाग्रौ, इतै ग्राग्रौ न तनक ।"

पंडित कदम बढ़ाकर धनुग्राँ के घेर में ग्रा गया । सरपंच ने खाट का सिरहाना खाली कर दिया । "कहौ धनीराम, कैसे हाल-चाल हैं, सुनी, काऊ ने ग्रागि दै दई घेर में । बड़े सारे बदमास हैं ।"

"तुमई जानौ ।" धनुग्रा ने छूटते ही कहा ।

"हम का जानें भैया ?"

"लोग कैतें तुमन्ने ग्रागि लगवाई ।" धनुग्राँ ने ताने के साथ उत्तर दिया । ललिता पंडित चौंक पड़ा । उसे याद भी नहीं रहा कि उस दिन धनुग्राँ के ऊपर उसका थूक गिर पड़ा था या उससे कोई बात भी हुई थी । भंग के नशे में उस बात को वह भूल गया था । अचानक उसे ध्यान ग्राया तो पूछा, "कैसें रे कैसें, मैं काए कूँ ग्रागि लगवावतौ । मोय का परी ।"

सरपंच ने हुक्के पर से चिलम उठाकर दी ग्रौर बोला, "वा दिन तुमन्ने थूकौ ग्रो न या धनुग्राँ पै । गारी-गरौज भई । हमारौ ऊ जेई बिचार हो, मैंने याते कई पंडित ऐसे नायँ ।"

ललिता ने दस-बारह फौश गालियाँ देते हुए ग्राश्वासन दिया कि वह ऐसा कमीना नहीं है, न उसे उसका ध्यान है कि धनुग्राँ का इस बात के लिए कोई ग्रहित करता । उसने ग्रनेक तर्कों, प्रवचनों ग्रौर ईमानदारी से अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुए गाँव के लोगों की बदमाशी, शरारत तथा कूट षड्यंत्रों की निन्दा की । उसने कहा, "गाँव के लोग बहुत खराब हैं, एक-दूसरे के जानी दुश्मन । भला, मुझे क्या पड़ी थी कि मैं धनुग्राँ के घेर में ग्राग लगवाता । मैं तो गरीब ब्राह्मण तुम्हीं लोगों का दिया खाता हूँ । मैं ऐसा काम क्यों करता ? फिर परसों का गया बाहर

से आज आया हूँ।" इसके साथ ही जिन्ने के मुकदमे की चर्चा करते हुए देवी के मंदिर के चढ़ावे पर हिस्सेदार ठाकुरों की मनोवृत्ति का जिक्र किया। बताया, "ठाकुर ठसक के मारे मरे जाते हैं और चढ़ावे के लिए ऐसे टूटते हैं जैसे गिद्ध मांस के टुकड़ों पर। भला इन्हें क्या हक है कि ब्राह्मणों का चढ़ावा लें। दान खाने के कारण ही तो आज इनकी यह दशा हुई है। दान का पैसा लेने का अधिकार भगवान् ने केवल ब्राह्मणों को दिया है क्योंकि ये भगवान् के मुख से बने हैं।" और भी बहुत सी बातें वह करता रहा। सरपंच ने टोककर पूछा, "आज छनी नायें का पंडित ?"

"छानिकैई चलौ हो। तहसील करिकें लौटौ तौ बाबाजी के मंदिर पै छानिकें दिसा-फरागत गयौ। फिरि बजार में चाय पी। बस, चलौ ई आय रह्यौ हूँ। गाम के हाल दिन-पै-दिन खराब है रहे है। लोधेन कूँ छोड़ि कें बाकी सबके हाल खस्ता हैं। बामनन पै पैसा नायें। ठाकुरन कूँ जिमींदारी ने मारि डारौ। बनिये बाहर चले गये। है का अब गाम में ? माँगौ और खाऔ।"

"ऐसें चों कैतौ पंडित, तुम तौ हौ ?" सरपंच ने मजाक में मूँछों पर ताव देते हुए कह दिया, "चमेली सुनी, डाके में सामिल है गई है। कछु ठाकुरन केऊ लौंडा हैं वाके साथ।"

"होयगी, मोय नायँ मालुम।" पंडित ने कहकर जान छुड़ाई। कुछ दिनों से चमेली का रुख उसे अच्छा नहीं लग रहा था। एक बार उसके मन में आया कह दे, लेकिन रुक गया। वह सोचने लगा, वह एक दिन जरूर पकड़ी जायगी। ऐसे कहाँ तक छिपी रह सकती है! न जाने किसके लिए वह इतना इकट्ठा कर रही है। न कोई आगे है न पीछे। मुझे तीर्थों पर ले जाने के लिए कह रही थी, पर अब तो वह बात भी नहीं करती। उसे बीते दिन याद आ गए। उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। बूढ़े, जीर्ण शरीर में रोमांच हो आया। उसका मुरझाया मन खिल उठा। उसे लगा, वह अभी जाकर उससे मिले। वह उड़ा-उड़ा उठने को हुआ, पर फिर बैठ गया, जैसे पिछले दिनों के व्यवहार ने

उसे रोक दिया। उसकी हिम्मत टूटने लगी। नशे में उसका उत्साह ठंडा पड़ने लगा। उसने चिलम उठाकर एक बार फिर पी और कश से चमकती आग को देखने लगा। ज़ोर से एक कश और खींचकर चिलम हुक्के पर रख दी और मुँह से धीरे-धीरे निकलता धुआँ देखता रहा।

"का सोचतौ पंडित ?"

"कछु नायँ, का सोचतौ," ललिता ने मरे मन से जवाब दिया।

"तुम्हें तौ मौज ई मौज है। न कछु करनौ न धरनौ।" धनुआँ कहने लगा।

"अरे धनीराम भैया, आजकल तौ मांगिबेऊ में टोटौ है। कौन देतुए सारौ !" पंडित झोंक में कह गया। 'सारौ' उसे अखरा। सरपंच बोला, "सारौ कोऊ नायँ देत, बहनोई बनिकें देतें लोग।"

पंडित चुप हो गया। जवाब देने की मन में होते हुए भी मौन ही रहा। "अब वे बखत नायँ धनुआँ, जब एक करतौ और दस खाते। अब तौ दस करौ और आठ खाऔ यारौ हिसाबुए।" सरपंच कहकर पुराने समय को याद करने लगा। इसी समय उसके मुँह से कफ का एक टुकड़ा निकलकर मूँछों के किनारे चिपक गया। सरपंच ने हाथ फेरकर उसे साफ किया और खाट की पाटी से पोंछते हुए बोला, "अब राति कूँ दिखातऊ तौ नायें।"

"उमरि का थोरी है ? होउगे अस्सी के।" पंडित ने प्रश्न करके उत्तर दिया।

"मोय नायँ मालुम, मैं का पढ़ौ हूँ ?"

"जनमपत्री तौ होइगी ?"

"होइगी जनमपत्री-फनमपत्री। कौन अब ब्याउ करनौ है ?" बूढ़े ने मुस्कराते हुए जवाब दिया।

"काठी तो काफी कड़ी है। कोउ मिलि जाय तो पीछे नायँ हटौगे चौधरी !" ललिता ने नशे की झोंक में कह डाला। वैसे वह मजाक के

मूड में भी था। बूढ़े की बाछें खिल उठीं। उसका चेहरा चमक गया। मुस्कराकर बोला, "मसखरी मति करौ पंडित ! जे सोलह छोरा-छोरी हैं, राजी रहें," कहकर उसने अपने पराक्रम-जन्य गर्व का अनुभव किया। ललिता देख रहा था, बूढ़े में अब भी उससे ज्यादा दमखम है।

हल्के जाड़े के दिन थे। रात आने पर सरदी बढ़ रही थी। सरपंच ने दुसूती चादर सिर तक ओढ़ ली। धनुआँ ने देह अकड़ाकर सरदी को भगाया। ललिता सिमटता-सा पोटली दबाए सरदी से जरा और सिकुड़ गया। वह उठा तो सरपंच ने धोती से घुटनों तक ढके पैर खाट के नीचे लटकाकर जूते ढूँढ़े और खखारकर चलने लगा। धनुआँ की माँ दूसरे घर से आकर पूछने लगी, "पंडित पूरनमासी के कितेक दिना हैं, कथा करामनी है ?"

"आज एकादसी है, आज सौं चौथे दिन कराइ लय्यो।"

"पालागन।" बुढ़िया बोली।

ललिता 'खुश रहो' कहकर सरपंच के साथ चल दिया। जब सरपंच खखारता अपने घर में घुसा तो ललिता चमेली के घर की ओर चला। उसे लगा जैसे चमेली प्रतीक्षा में दरवाजे पर खड़ी है। बाजार में पान की एक-दो दुकानें खुली थीं। उसके मन में आया पान खा ले, लेकिन धनुआँ का कड़ुआ तमाखू पीकर उसका सिर भन्ना उठा था। वह नजर बचाकर गली में घुस गया। चमेली वहाँ नहीं थी। बाहर ताला लगा था। बहुत देर तक खड़ा सोचता रहा। उसके मन में आया लड़के के घर जाय, पर लड़के से उसका मन खट्टा हो गया था। वह सीधा मंदिर की ओर चला गया।

•

तीसरे दिन खेरापत आ गया कुट-पिटकर। दरोगा ने रात-भर हिरासत में रखकर छोड़ दिया। जो कुछ था वह छीन लिया। चौड़ा मुख, फटी-फटी लाल आँखें, कनपटी की हड्डी उभरी, गालों की हड्डियों से कोने झड़

रहे थे। सुती देह, काला रंग, रात को देखे तो डर लगे। बौना कद, पिंडलियाँ गोल, अंडे की तरह ढली टाँगें, चौड़े पंजे, घुटनों तक कसी धोती और अधमैला कुरता। भुटपुटे से पहले बोतल में मिट्टी का तेल लेने आया तो सीता परचूनिये ने तेल कनस्तर से खींचते हुए पूछा—

"आय गये खेरापत ?"

"हाँ भैया !"

"तुमारी तौ पकरिबे की खबर सुनी गई ही। गाम में हल्ला हो।"

"अरे पकरिबे की का बात है, सारेन ने वैसेई पकरि लयो।"

"कछु तौ होइगी ?"

"होती का, तुम जानो बजार तौ होई। ठर्रा कौ भोलुआ पी लयौ हो। मोय नायँ मालुम परी फिरि। थाने में लै गये पुलिस वारे। सारेन ने मारि-मारि डंडन देह सुजाइ दई। अमियाँ-सी गाँठें परि गई हैं सबरी देह में।"

"सुनी, काऊ जनानी की ठोड़ी पै हाथ लगायौ हो ?"

"को कैतो ? जि गाम है कें डाकखानों। कोई बात छिपे नायँ ह्याँ ससुरी।" चाहता था कोई न जानता। जब वह एक ठाकुर के यहाँ था तब भी चोरी में कई बार पिट चुका था। मजदूरी करते-करते चुराना उसके लिए मामूली बात थी। रात को ईंटें उठाकर ले जाता, खेत में से पूरे काट लाता और दूसरे गाँव में बेच आता। जब तक घर में अनाज रहता तब तक काम उसकी दृष्टि में हराम था।

"ऊजरी सूरति देखिकें तुम जानौ काकौ मन नायँ करै। है गई गल्ती। लाऔ तेल दै देउ।"

पास ही दुकान पर चिहुरकर बैठे श्रीराम ने कहा—

"अब तौ गाँठिन में प्रेम उभरौ है खेरापत, वा ने सिकायत कर दई होइगी, तबई पुलिस बारे पकरि लै गये, क्यों ?"

"हाँ, चलौ नायँ जाय ठीक तरें। है जांगो ठीक द्वै-एक दिन में।"

"मौजऊ तौ तुमन्ने मारी !" श्रीराम ने हँसकर ताने से कहा।

खेरापत ही-ही करके हँसा तो काले और मैले दाँतों से अँधेरा झाँकने लगा, जैसे क्रूरता किसी गुफा से निकल पड़ी हो। वह तेल की बोतल लेकर चला तो रास्ते में शिवचरन मिल गया। खेरापत ने इधर-उधर देखकर पूछा—

"कहाँ चले पंडित ?"

"कऊँ नायँ, घर कूँ जातूँ।"

"चमेलीउ की कछु खैर-खबरि है ?"

"कल्लि सूँ दिखाई नायँ दई, घाट पैउ नायँ आई।" कहकर आगे गली में बढ़ने लगा तो खेरापत बोला—

"सुनौ पंडित, मोय चमेली सूँ मिलनौ है।"

"तौ मिलौ न जाय कें, मैं का जानूँ।" शिवचरन ने रूखेपन से जवाब दिया। वह चमेली से नाराज था। उसे लगा चमेली ने बड़ा धोखा दिया है। मुझे नौकर समझकर काम करवाती रही है, जैसे मैं उसका गुलाम हूँ। ये सब बातें उसके दिमाग में पहले नहीं थीं। उस दिन घाट पर बैठे एक आदमी को जब उसने यह कथा सुनाई तो उसने कहा—

"तेरे जैसा कोई मूर्ख नहीं। क्या तू उसका गुलाम है ? औरत से दबकर नहीं रहना चाहिए। और भी इसी तरह की बातें करता रहा। शिवचरन की आँखें खुलीं। उसने बलात् अपने मन में चमेली के प्रति दुर्भाव उत्पन्न किया। फिर भी वह उन विचारों को देर तक अपनाये न रह सका। दूसरे-तीसरे दिन तुलसी ने जब वही फिर दुहराया तो उसका हृदय अपनी मूर्खता पर कठोर हो उठा। शिवचरन उन लोगों में है जिनमें अपने कोई विचार नहीं होते। वह देसी अनार की तरह था, जो न खट्टा होता है न मीठा, न जिसमें रस होता है न स्वाद, केवल 'फोक-ही-फोक' होता है। जिसे शिवचरन की जड़ता भी कहा जा सकता है। एक तरह से उसने चमेली से नाराज होना सीखा, जिसमें उसका अपनापन बहुत कम था। अब चमेली का दूसरों से हँसकर बात करना और उसे नीरस आज्ञा देना बुरा लगने लगा। जब रात के बारह बजे

उसे घर से निकाल दिया गया तब की उस बात का ध्यान करके आज उसे बुरा लगा। यहाँ तक कि एक रात जब सोते-सोते किसी कीड़े ने काट खाया, दूसरे दिन वह जगह सूज गई, दो रोज तक दर्द के मारे कराहता रहा, काटी हुई जगह गूमड़ा पड़ गया तब भी उसके मन ने विद्रोह नहीं किया।

इस समय वह शाम के आये यात्रियों से कुछ मिल जाने की आशा में घाट पर गया था। वहीं से तीन नये पैसे और तीन आने लेकर लौट रहा था। अचानक खेरापत को देखकर उसका मन भभक उठा, एक प्रतिक्रिया हुई। वह बोला—

"अबई थाने की मार भूली नायँ का खेरापत ?"

"अरे जि बात नायें सिबचरन, वैसेइँ कछु काम हो।"

शिवचरन ने जवाब दिया, "मैं सब जानूँ हूँ। तू बाके फेर में मारौ फिरै है खेरापत, बु चिड़िया तेरी टैनी पै नायँ बैठेगी।"

खेरापत अपने मन की बात न कह सका। शिवचरन चला गया। वह सोच रहा था रिपुदमन गाँव में नहीं है; मंगनियाँ, होती का भी कुछ पता नहीं। न जाने क्या हुए ? उसकी मोटी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। यह ठीक है, उसे ज्यादा मारकर कोई पूछता तो वह नशे में सब-कुछ बक देता। उसकी यह समझ में नहीं आ रहा था कि लोग कोई बात कैसे छिपाकर रखते हैं। उस रात को बाहर से लौटकर जब उसने चूल्हे के नीचे रुपये और गहने गाड़े तो उसकी औरत ने पूछा—

"कहाँ सूँ लायौ ?" तो एक-आध बार 'तूँ न' करने पर उसने सब उगल दिया। औरत गहना और रुपया देखकर लुभा गई। दोनों ने मिलकर ठीक तरह गाड़ दिया। अब वे सांप की तरह पहरा देते। चोरी की आदत छमिया में भी कम न थी। घाघरे के भीतर एक जेब अब भी रहती। नजर बचते ही उड़ा लेना उसके बायें हाथ का खेल था। मजे की बात यह है कि रुपया गाढ़ने के बाद दोनों एक-दूसरे पर अविश्वास

करते थे और एक-दूसरे के अभाव में गढ़ा खोदकर देखते रहते। खेरापत ने बोतल ले जाकर रखी तो अंधेरे में रोटी बनाती छमिया बोली—

"बिल्लात देर लगाई रे, कहाँ डटि गयौ हो ?"

"ऐसेंई बातन में देर है गई। लै, कुप्पी बारि कें तनक उजेरौ तौ करि दै। मेरी तौ देह पिराइ रई है ससुरी।" कहकर वह खाट पर लेट गया। औरत रोटी सेककर उठी तो आले में रखी कुप्पी में चूल्हे की रोशनी से तेल डाला। काफी तेल जमीन पर आ रहा। कोठरी में बदबू भर गई। छमियाँ ने हाथ घाघरे से पोंछ लिये और पति के पास जाकर बोली—

"बतावत नायँ कौन ने मारौ है, जाने काँ-काँ झक मारतु फिरै है। मोय मालुम परि जाय तौ मूडफजारे कौ खून न पी लऊँ।" वह खेरापत की खाट के पास आकर खड़ी हो गई और लंहगे के ऊपर दोनों हाथों से जाँघें खुजाने लगी। इसी बीच सिर में जो हाथ लगा तो ओढ़नी फेंककर दोनों हाथों से सिर के बालों से जूझ पड़ी। खुजाते-खुजाते बाल बिखर गए। खेरापत आँखें मीचे पड़ा कराह रहा था। उधर छमियाँ पूरे यौवन से खुजा-खुजाकर पेट, पीठ, छाती और सिर से युद्ध कर रही थी। बढ़े हुए नाखूनों से कई जगह खरोंचें भी लगीं। कुप्पी के उजाले में उसका रूप भयंकर हो उठा था। ओढ़नी दूर पड़ी थी। अंगिया ढीली हो गई। घाघरा अपनी जगह न रह पाया। पेट अब भी थलथला रहा था। स्तन हल्की हवा से भरे रबड़ के थैले-से हिल रहे थे। काली, फटी और मैली बांहों से खुजाते-खुजाते 'मसल' फूल उठे थे। पर मुँह के कई तरह के 'ऐंगल' बनाती हुए खुजाए जा रही थी। खेरापत ने आँखें खोलीं तो पूछा, "का कर रई है, मेरे मूड़ पै ठाड़ी भई ?"

"खुजाइ रई हूँ, लै तनक पीठि पै तौ हाथ फेरि ?"

"मो पै नायँ होतु जि काम।"

खुजली से परेशान छमियाँ उससे सट गई और बेचैनी से बोली—

"लै तनक खुजाइ दै मेरे भैया राजा, लै।"

खेरापत ने झल्लाकर कहा, "खसम कूँ भैया कैतिये राँड।" वह उसके ऊपर गिर पड़ी। मजबूर खेरापत ने खिन्न मन से उसकी पीठ खुजाई। छमियाँ के गले में सोने की जंजीर झूल रही थी। बोली, "जंजीर न टूटि जाय।"

"जंजीर तौ मैं लायौ हूँ। का परवा है, जंजीरन के घाटे नायें।"

"अब तू जातु नायें ?"

"जांगे, समरि कें जंजीर पहरियो, कोऊ देखि न लेइ, नायँ तौ पूछैगो काँ ते आई ?"

"मैंने कै दई, मेरी अम्मा ने भेजी है," छमिया ने समझदारी दिखलाते हुए जवाब दिया। खेरापत ने खुजाना बन्द करके एक थप्पड़ छमियाँ की पीठ पर मारा और बोला—

"ससुरी वा तेरी अम्मा की इतनी हैसियत है, तैंने दिखाई ही चौं, राँड पकरवावेगी का मोकूँ ? उतारि, मैं जाय कें बेचि दंगो।" कहकर उसने छमियाँ के गले में हाथ डाला। छमियाँ ने रोका। इसी हाथापाई में जंजीर टूट गई। अब क्या था, छमियाँ बाघिन का रूप धरकर खेरापत पर टूट पड़ी। साथ-साथ पुरखों का तर्पण करती जाती। खेरापत ने भी दो-चार हाथ जमाए और लेट गया। उसे खयाल था, सोना बेचकर पैसे खड़े कर लेगा। निराधार छमियाँ रो-रोकर गालियाँ दे रही थी। उसने खाट के पाये से अपना सर फोड़ लिया। खेरापत बीच-बीच में कहता, "चिल्लावै मति, कोई सुन लेगौ।' पर वह तो जंजीर टूटने से पागल-सी हो गई थी। जंजीर न केवल उसके गले का हार थी, जिसे पहनने का उसे जीवन में पहली बार सौभाग्य मिला था, वह उसे पहनकर मोहल्ले में इतराती भी फिरती थी। दो-एक औरतों ने समझा, यह पीतल की जंजीर होगी, खेरापत बाजार से ले आया होगा। तब कहने वाली को डाँटकर उसने असली सिद्ध करने का प्रयत्न किया। जब एक

ने दाम और वजन पूछा तो कुछ भी न बता सकी। उसे यह भी मालूम नहीं था कि सोने का भाव क्या है, कितने में बनती है? इसलिए 'माँ ने भेजी है' कहकर अपना पिंड छुड़ाया और असली सोने की है, बताने की कोशिश की।

जमीन में गिरी हुई जंजीर को खेरापत ने उठाकर अंटी में खोंस लिया और लेट गया। छमियाँ जब गाली देकर भी अपने को शान्त न कर सकी तो उसने रोटियाँ फेंक दीं। तवा एक तरफ दे मारा। परात खेरापत की खाट से टकराई और झन्न करके टूट गई। कलछी, चीमटा, संडासी और बाँस की फूँकनी सब फेंक दिए और चौके में वैसे ही लेट रही। खेरापत भूखा था, उसने रोटियाँ बीनकर नमक से खाईं और बरतन में घड़े से ओजकर पानी पिया। छमियाँ गीली जमीन पर आटे और मिट्टी के तेल से सनी, बाल खोले राक्षसी की तरह पड़ी रो रही थी। खेरापत रात हो जाने पर भीतर से कपड़े ले आया और दरवाजे के पास आँगन में खाट बिछाकर सो गया। छमियाँ अब भी जाग रही थी। उसका गुस्सा शान्त नहीं हुआ था। उसे खेरापत से कोई मोह न था। वह उसे रखैल करके लाया था। इसलिए खेरापत को चाहे मिले या न मिले, उसका पेट भरकर खाना जरूरी था। जब वह कमाता तब शान्त रहती, निकम्मे रहने पर लड़ती। खुद काम के नाम पर पत्ता भी नहीं तोड़ती थी। तेज जबान और लड़ाकी होने के कारण कहीं काम भी नहीं मिलता था। जब खेरापत थोड़ी देर में खुर्राटे लेने लगा तो वह उठी और खोदकर सारा माल निकाल लिया। दीवार फाँदकर बाहर निकल गई।

सबेरे खेरापत देर से उठा तो कपड़े वहीं छोड़कर जंगल चला गया। लौटकर भीतर घुसते ही जो सामने नजर गई तो चूल्हा खुदा देखकर सन्न रह गया। वह समझ गया छमियाँ सब निकालकर भाग गई है। उसी समय किवाड़ बन्द करके वह भी उसकी तलाश में निकल गया।

सवेरा होने पर जब चमेली पोटली सिर पर रखे, बगल में दो चटाइयाँ दबाये, घाट पर पहुँची तो देखा औघड़ बाबा तख्त पर गंगा की ओर देखते अपने-आप बोल रहे हैं, कभी हँसते हैं, कभी चुप हो जाते हैं। शरीर पर एक लँगोटी है, ऊपर अँगोछा पहने हैं। वह सामान लिये तख्त के पास आकर खड़ी हो गई। पोटली एक कोने में रख दी और चटाई जमीन पर डाल दी। बाबा अपनी धुन में बोल रहे थे। हृष्ट-पुष्ट शरीर और आत्मरत दृष्टि, हाथ-पैरों के नाखून बढ़े हुए। आँखें चमक से जलती, लाल। भव्य आकृति, दूर से देखने पर लगता जैसे तेजपुञ्ज व्यक्ति बैठा हो। चमेली ने देखकर मन-ही-मन प्रणाम किया और बोली, "बाबा, चटाई बिछा दूँ, फिर बैठना। लो, जरा उठो।" चटाई हाथ में लेकर उठने का इन्तजार करने लगी। बाबा ने उसकी ओर देखा तक नहीं। वह वैसे ही ध्यान-मग्न बैठे रहे। थोड़ी देर बाद चमेली की ओर देखकर मुस्कराये, "तेरा तख्त है?"

"आप ही का है महाराज!" बाबा फिर बुड़बुड़ाने लगे। चमेली देखती रही। उनकी आँखों से लग रहा था, जैसे वे इस लोक में नहीं हैं, न जाने क्या सोच रहे हैं, क्या देख रहे हैं। चमेली ने सुना, वे कह रहे हैं, "नहीं, तुम बुला रही हो तो मैं आ रहा हूँ, बहुत दिन हो गए।" कहकर बाबा हँसे और फिर चारों तरफ देखा।

उस समय कई स्नानार्थी सीढ़ियों पर आ बैठे। कुछ कपड़े रखकर ठिठुरते नहा रहे थे। कुछ सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे। एक-दो सन्ध्या कर रहे थे। एक गंगा में गोता लगाकर निकला तो आधी धोती निचोड़ता हुआ बोला, "चमेली, तेरे बड़े भाग हैं, जो महात्मा तेरे तख्त पर बैठा है।" पास ही से एक मन्दिर के पुजारी ने कहा, "बाबा रात-भर यहीं रहे हैं।" लोग आकर उन्हें प्रणाम करने लगे। किन्तु बाबा की पारदर्शी आँखें अपने अन्तर को भेदन करके प्रकाश की किरणें बिखेर रही थीं। उनका शरीर फूल की तरह हल्का और स्फटिक की तरह चमक रहा था। थोड़ी देर के लिए वे ध्यान-मग्न हो गए। चमेली ने चटाई रख दी,

गंगाजल लेकर आचमन किया और वहीं एक सीढ़ी पर बैठकर बाबा को देखने लगी। वह इस समय चुप थे। आँखें खोलीं और फिर मुस्कराये। उनकी मुस्कराहट देखकर चमेली को लगा जैसे इसमें कोई छल, कोई कपट, कोई ईर्ष्या-द्वेष नहीं है। उनकी इस मुस्कराहट में छोटे बच्चे की तरह एक आनन्द है। चमेली देखती ही रही। उसने हाथ जोड़ दिए। लोग चारों तरफ से उन्हें घेरकर खड़े हो गए। कोई प्रणाम कर रहा था, कोई उनके पैरों की रज माथे में लगा रहा था। एक वेदपाठी ब्राह्मण बोला, "बड़े सिद्ध-महात्मा हैं।" इसी समय लोगों ने सुना, वे कह रहे थे, "आऊँ, अच्छा ले आया।" सरदी अब भी काफी पड़ रही थी। पास ही गाँव के लोग अलाव जलाये ताप रहे थे। लेकिन बाबा को न सरदी लग रही थी और न उनके शरीर से वैसा आभास ही दिखाई दे रहा था। वे एकदम निःसंग और निस्पृह थे। लोगों ने देखा वे तख्त से उठकर पास के एक टीले पर जा खड़े हुए, जहाँ की बहुत-सी जमीन गंगा की धार ने काट डाली थी। पहले वहाँ से तैरनेवाले गंगा में कूदते थे। अब वह भाग नीचे से इतना कट गया था कि खड़े होने पर डर लगता था। पास से देखने पर लगता था कि इस जमीन में एक गहरी दरार पड़ गई है। औघड़ बाबा उसी स्थान पर पद्मासन लगाकर बैठ गए। लोग चिल्ला पड़े। किसी में इतना साहस नहीं था कि जाकर बाबा को उठा लाता। नीचे सौ फुट की गहराई में गंगा बह रही थी। लोग पूजा-पाठ, नहाना-धोना छोड़कर सकपके की हालत में उन्हें देखने लगे। प्रायः सभी को बाबा के प्रति भक्ति थी। कभी किसीने उन्हें माँगते नहीं देखा। बात करते, बैठते नहीं पाया। बहुत दिनों से इसी प्रकार कभी एक जगह कभी दूसरी जगह घूमते-फिरते थे। लोगों ने दया करके कपड़े दे दिये तो वे भी उन्होंने वहीं छोड़ दिए या किसीको दे दिये। जिस किसीको वह देखते हँस देते। उस हँसी में एक प्रकार की आत्मीयता, एक आकर्षण देखने वालों को मिलता। लोग आग्रह करके खाना खिलाते तो खाना खाते-खाते उठकर चल देते। कभी-कभी लोग देखते,

कुत्ते उनके पीछे फिर रहे हैं। वह उन्हें प्यार करते, उनके ऊपर हाथ फेरते। एक दिन न जाने कहाँ से एक गाय उनके पीछे हो ली। जहाँ वह जाते, वह उनके पीछे-पीछे चलती। एक दिन एक स्त्री ने अपने बच्चों को ले जाकर उनके पैरों पर डाल दिया। बच्चा बहुत बीमार था, सूखकर काँटा हो गया था। बाबा ने हँसकर उसकी ओर देखा और आगे चल दिए। प्रसिद्ध है कि वह बच्चा अच्छा हो गया। एक मोहक मुस्कराहट सदा उनके चेहरे पर नाचती। वर्षा, गरमी, सरदी, सभी मौसम में वह निःसंग होकर घूमते। कई अनुभवी वृद्ध लोगों का कहना था कि उन्होंने कभी इतनी सुन्दर मुस्कराहट नहीं देखी। यह कोई नहीं जानता था कि वह कौन हैं, कब और कहाँ से आये। कभी-कभी वह महीनों दिखाई न देते। कभी दिन में कई बार गंगा के किनारे किसी जगह बैठे दीख पड़ते। न उनके रहने का कोई स्थान था और न उन्हें पाने का।

चमेली भी उन लोगों में सकपकाहट के साथ बाबा को उस स्थान पर बैठे देख रही थी। वह खड़ी न रह सकी। सबके देखते-देखते दौड़कर वह बाबा की ओर जैसे ही चली कि लोग चिल्लाये। उसके वहाँ पहुँ-चते ही ढाय की जमीन सरकी और उसके साथ ही चमेली गंगा में गिर पड़ी। सबको यही विश्वास था कि चमेली बाबा के साथ ही गंगा में गिरी है। यह बड़ी दुर्घटना थी। लोग चिल्लाये। सरदी के साथ हवा चल रही थी। लोग दुलाई और चादर ओढ़े भी काँप रहे थे। स्नान करके पूजा करने वालों के रोंगटे खड़े हो रहे थे। हवा अपने पूरे यौवन पर थी। ऐसे में कौन साहस करके कूदता ! नहाने वालों के पास पानी के छपाके से उठी लहरें आईं, वे डर से किनारे पर आ गए। लोगों ने साँस रोककर देखा, बाबा पानी से ऊपर नहीं उठे। कगार के साथ गिरी चमेली ऊपर उठी तो फिर गोता खा गई। शिवचरन से न रहा गया। वह फेंट बाँधकर गंगा में कूद पड़ा और उसके साथ दो-एक आदमी और भी जा कूदे। तैराकों ने गोते लगाये। किनारे पर लोग चिल्ला

रहे थे। भीड़ जमा हो रही थी कि इतने में शिवचरन ने चमेली को पानी से ऊपर खींचा, साथियों ने सहायता की और किनारे पर धकेल लाये। शिवचरन ने फिर गोता लगाया कि बाबा को ढूँढ़े। साथियों ने भी ढूँढ़ा पर उनका पता न चला। चमेली किनारे पर आ गई तो लोगों ने पकड़कर बाहर निकाला। वह इस समय बेहोश थी। धीरे-धीरे होश में आई, उठी तो फिर बैठ गई। दो-तीन स्त्रियों ने दया करके उसे उठाया, और पास ही अलाव से सटी फूँस की झोंपड़ी में चटाई पर लिटा दिया। आग जलाकर झोंपड़ी गरम कर दी गई। कपड़े पहनाये। उसे जैसे कुछ भी मालूम नहीं रहा कि यह एकदम क्या हो गया। वह जड़ की तरह मूक बनी बैठी रही। किनारे पर खड़े लोग अब भी चिल्ला रहे थे, "औघड़ बाबा डूब गए, उनका कुछ पता नहीं है।" चमेली चौंक-चौंककर स्मृति पर जोर दे-देकर याद कर रही थी। कुछ मल्लाह गोते लगाकर बाबा को ढूँढ़ रहे थे। शिवचरन दाँत कट-कटाते हुए कह रहा था, "बाबा कौ पतौ नायें, ढाय में दबि गए लगतें।" कुछ बोले, "बाबा सशरीर स्वर्ग गये हैं।" दूसरे कह रहे थे "हमने चमेली को ही गिरते देखा, बाबा को नहीं।"

निश्चय कुछ भी न हो सका कि औघड़ बाबा का क्या हुआ। फिर भी इतना निश्चित था कि वे गंगा में गिरे जरूर हैं।

अब धूप निकल आई थी। सरदी कम हो रही थी। लोग अब भी बाबा के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे। सारे गाँव में बाबा के डूबने और चमेली के बच जाने की चर्चा हो रही थी।

चमेली वैसे ठीक थी। पर उस घटना के बाद से वह गुम-सी हो गई। स्त्रियों ने घर ले जाकर खाट पर लिटा दिया। शिवचरन ने दूध गरम करके पिलाया। पड़ौस की औरतें आईं और देखकर चली गईं। लोग बाबा को बचाने की उसकी हिम्मत की सराहना कर रहे थे, "जो काम उस समय कोई न कर सका वह इसने किया, बड़ी हिम्मत वाली औरत है।"

बाज़ार में लोग जबानी जमा-खर्च करते बाबा के गुण गाने लगे। एक-दो आदमियों ने बाबा के साथ चमेली के सम्बन्ध में शंका की तो बाज़ार के दूसरे लोगों ने फटकारा। फिर भी चमेली के साथ किसी को बहुत सहानुभूति नहीं थी। औरतें उसे मर्दाने काम करने वाली समझकर नफरत करतीं। वे उसे अपने दल का, अपने वर्ग का समझने में जैसे गुरेज करती हों। बात भी ठीक है, औरतों की अपेक्षा उसकी बातचीत मर्दों से ही ज्यादा होती थी।

वह अपने मकान में निढाल लेटी हुई थी। उसकी सारी देह में दर्द हो रहा था। शिवचरन चला गया। अब वह अकेली थी। आज उसे लग रहा था जैसे वह बिलकुल अकेली है, इस संसार में उसका कोई नहीं है। कोई सहारा नहीं है जो इस घटना में उसे ढारस बँधाये। वह सोच रही थी, "मैंने ही किसीके साथ क्या किया है, जो कोई मेरी मदद करेगा! गाँव की औरतें मुझसे डरती या नफरत करती हैं। लोग मुझे अपना शिकार समझते हैं। हर आदमी की निगाह किसी भूखे की तरह मेरे ऊपर पड़ती है। हर आदमी मेरे चाहने पर मुझे भोगने को तैयार है। यदि उन्हें मेरी हिम्मत, मेरी ताकत, मेरी मार, मेरी फटकार का पता न हो तो रात को मकान से मुझे उठाकर ले जायँ, मुझे चीथ डालें। लोग मांस के टुकड़े पर शिकारी कुत्ते की तरह मुझे ललचाई आँखों से देखते हैं।' उसे ललिता पंडित का खयाल आया, 'यदि वह होता तो···पर वह आया क्यों नहीं, क्यों नहीं आया?' उसे याद आया, उसने ही एक बार ललिता की हरकतों के लिए डाँट दिया था। 'वह लुञ्ज-पुञ्ज, बुड्ढा, निस्तेज चाहता है कि वह भी मुझे कुत्ते की तरह चाटे। कुत्ते हैं सब शिकारी कुत्ते। जैसे औरत एक मांस का लोथड़ा है और आदमी शिकारी कुत्ते हैं।' थोड़ी देर सोचने के बाद कहने लगी, 'फिर भी ललिता को आना चाहिए। वह मेरा पुराना साथी है। तो क्या उसे मालूम नहीं हुआ? उसे जरूर मालूम हुआ होगा।' वह पड़ी-पड़ी ललिता तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में सोचती रही। उसके सामने

जीवन के पिछले पृष्ठ खुल गए और चित्र-पट पर आती तस्वीरों की तरह पति, मित्र, सखी-सहेली सब उसके सामने आ गए। एक-एक करके पिछला सारा जीवन उसकी आँखों में घूम गया। शंकरानन्द साधु भी अछूता न रहा। उसका ढोंग, उसकी ललचाई आँखें; उसकी बातों पर कुछ देर के लिए अटक गई। उसका जी घृणा से भर गया। धीरे-धीरे प्रातःकाल के दृश्य, औघड़ बाबा के चित्र ने उसमें एक कौतूहल जाग्रत किया। उसने सोचा, इस सारे गाँव में, सारे सम्पर्कों में वही एक महात्मा थे जिनकी कृपा से उसे शान्ति मिल सकती थी। वह निस्पृह, निर्विकार साधु थे। कितने निर्लिप्त, कितने विरक्त! पर अब क्या हो? इतना अच्छा आदमी आज सवेरे गंगा में डूब गया। वह हिम्मत करके उन्हें बचाने गई तो बचा भी न सकी। खुद डूबते-डूबते बची। उसे उस दिन की बाबा की बातें याद आ गईं जब उन्होंने कहा था, "बेटी, अपने को पहचान।" पर वह इतनी कलुषित, इतनी पापिन है कि उनकी बातों से कोई लाभ न उठा सकी। उसे सारे संसार से विरक्ति हो गई। उसका मन ऊब गया। उसे लगा जैसे सचमुच इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। कोई सुख नहीं है और जहाँ उसने सुख माना वह असल में सुख नहीं था। वह नालायक है; निकम्मी, बदमाश, आवारा औरत है। उसने ज़िन्दगी में कुछ भी नहीं किया। कोई भी अच्छा काम उससे नहीं हो पाया है। वह डाकू है, पतित है। वह वेश्या है। उसके मन के सारे स्वर इकट्ठे होकर जैसे उसे धिक्कारने लगे। उसे घोर ग्लानि हो उठी। उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह उठकर बैठ गई। सोचने लगी, यदि वह डूब गई थी तो निकली ही क्यों? डूब जाती, मर जाती। एक अच्छे काम के लिए डूबी थी। इस पाप की ज़िन्दगी से वह बच जाती, भयंकर क्लेश से उसका उद्धार हो जाता। आँसू उस समय भी बह रहे थे। वे वैसे ही बहते रहे। वह सोच रही थी, क्या करे? वह अकेली है, बिलकुल अकेली। कोई उसके दुख-दर्द का सहारा नहीं है। वह निढाल होकर खाट पर लेट गई।

देह में अब भी दर्द हो रहा था। उसकी इच्छा हुई कोई उसे दबा देता। उसे उस समय भी सरदी लग रही थी, फुरफुरी उठ रही थी। उसने रजाई ओढ़ ली। सरदी जैसे उसके अंगों में व्याप गई थी। वह कराहती, मन में ग्लानि, विरक्ति, दुखभरे, खाट घसीटकर धूप में लेट गई। आज उसे लगा जैसे सारे संसार में एक भी आदमी नहीं है। हर ओर श्मशान है। कभी वह पड़ी-पड़ी बेचैनी से करवट बदलती। धूप उसे अच्छी लग रही थी। उसने पैर फैलाये, हाथ मसले, मुँह पर हाथ फेरा और पड़ी-पड़ी लटें सुलझाने लगी। उसका एकाकीपन कम हुआ। उसे लगा जैसे धूप उसकी सच्ची सहेली है। उसने रजाई पैरों की तरफ सरका दी और सीधी होकर छाती पर हाथ रखे लेट गई। सूर्य की अलसाई और मीठी किरणें उसके मुँह पर पड़ रही थीं। उसने आनन्द में आँखें बन्द कर लीं और न जाने कब तक पड़ी रही। इसी समय आहट पाकर जागी तो सामने शंकरानन्द स्वामी को खड़े पाया। शिष्य उसके साथ था।

"कैसा जी है चमेली बाई, मैंने तो अभी सुना?"

इस समय तक धूप उसके ऊपर से चली गई थी। उसने रजाई ऊपर डाल ली, और स्वामी की तरफ देखती रही। जवाब उसने कोई नहीं दिया। स्वामी ने खड़े-खड़े फिर पूछा। चमेली ने सामने पड़ी चटाई पर बैठने का संकेत किया, लेकिन शंकरानन्द खड़ा ही रहा। शिष्य भी साथ था। शंकरानन्द को इस प्रकार किसी स्त्री के सामने नीचे बैठना बुरा लगा, और शिष्य के सामने एक स्त्री के इशारे पर नीचे बैठना तो और भी। अपने मन के अहंकार को दबाये वह खड़ा ही रहा। उस समय चमेली के चमकते मुख पर लटें लहरा रही थीं। मुँह पर हल्की-सूखी पसीने की बूँदों से चेहरे पर सलोनी चिकनाई उभर रही थी। गले और कपोलों की चमड़ी अपेक्षाकृत अधिक मुलायम दिखाई दे रही थी। सुरमई आँखें अधनींदी खुमारी से हल्की लाल हो गई थीं। स्वामी ने शिष्य को बाज़ार से दूध लाने का आदेश दिया।

शिष्य के जाने पर वह चमेली की ओर झुककर पूछने के ढंग से जैसे ही हाथ बढ़ाकर झुका वैसे ही चमेली उठकर बैठ गई। "कैसी हो चमेली बाई ?"

बालों को धोती के पल्ले से ढकते हुए उत्तर दिया, "ठीक हूँ।" उसने पैर सिकोड़ लिए। स्वामी जैसे ही उसकी खाट की पाटी पर बैठने लगा, तो चमेली ने कहा, "चटाई पर बैठिए स्वामीजी !" स्वामी खड़ा रह गया। डंडा उसने एक तरफ रख दिया। दोनों हाथ चमेली के ऊपर जा पड़ने के लिए गतिमान हुए, उसी समय चमेली एकदम खाट से उठकर खड़ी हो गई। रजाई भीतर रख आई और चटाई के कोने पर बैठकर बोली, "आपने क्यों कष्ट किया ?"

"सुना तो रहा न गया, देखने चला आया। इधर तुम्हें कई दिनों से देखा भी नहीं था। मन बड़ा···"

"रहने दीजिए ऐसी बातें। मेरा आपसे मिलना क्या जरूरी था ?" चमेली ने मुँह पर तीखापन लाकर उत्तर दिया।

"क्यों ? क्या तुम मुझे गैर समझती हो ?"

"अपना समझने का आपके पास क्या कारण है ?"

"मेरे मन से पूछो, चमेली !"

चमेली की भौंहों में तनाव आ गया। उसे लगा जैसे यह आदमी नहीं पशु है। उसकी वाणी कठोर होकर प्रहार करने को बेचैन हो उठी। फिर भी उसने अपने को रोक लिया और पूछने लगी, "चेला कहाँ गया ?" स्वामी उसे देखकर हतप्रभ हो गया, उसे विश्वास था चमेली उसके जाने से अपने को कृतार्थ मानेगी। वैसे भी बाहरी दिखावे और निरन्तर उसी अहम् में अपने को ढालते रहने के कारण वह सबको छोटा समझने लगा था। भीतर से न सही, बाहर से अपने को बड़ा मानने के कारण एक व्यर्थ का दम्भ उसमें जागता रहता था। इस समय उसके लिबास के 'अहम्' ने हार खाई। वह चमेली को देखकर मुस्कराने लगा। गालों के गुट्ठड़ फूल उठे और नरमी से उसने कहा—

"मैं नगर जा रहा हूँ। तुम्हारी तबियत ठीक न हो तो मेरे साथ चलो। एक डॉक्टर भी मेरा भक्त है, ठीक रहेगा। क्या सलाह है ?"

"ऐसी कोई बात नहीं।"

"तुम चुप हो ?"

"तो क्या करूँ ? बेचारे औघड़ बाबा; उनकी मूर्ति मेरे सामने से नहीं हट रही है। सबेरे जब मैं पहुँची तो वे गंगा की ओर देखकर मुस्करा रहे थे। वह मुस्कराहट मुझे अभी तक याद है। कितना बच्चे जैसा भोला चेहरा था उनका ! आँखों में ऐसा तेज मैंने नहीं देखा। साक्षात् भगवान् थे वह तो, परम हंस अवधूत।" वह बोलती रही, जैसे अपने से कह रही हो, "एक तुम हो, जो मुझे ऐसे देख रहे हो जैसे लील जाओगे।"''तुम्हें 'स्वामी' कहना गलत है। गेरुए कपड़े रंगाने से कुछ नहीं होता।" चमेली ने तीखी निगाह से उसे देखा। स्वामी मुँह फाड़कर हँसा, फिर गम्भीर होकर बोला, "घर आये का खूब स्वागत हो रहा है चमेली, देख रहा हूँ उस औघड़ के पीछे पागल हो गई हो। मेरा चमत्कार हर जगह नहीं दीखता। फिर मेरा-उसका मुकाबला भी क्या ? वह तो पागल था। उसे साधु कहना शर्म की बात है। जब लोग पत्थर को भगवान् मानते हैं, तो तुम्हारे जैसी औरतों के लिए उसका भगवान् बन जाना कोई बड़ी बात नहीं है। अस्तु, मैं तो तुम्हें मनुष्य के नाते देखने आया था।" वह जैसे ही उठने को हुआ, उसी समय चेला दूध लेकर आ गया। स्वामीजी ने कहा, "दूध पी लो, शरीर में बल आयेगा।" चमेली भरी हुई बैठी थी, बोली, "दूध आपने क्यों मँगाया ? मैं नहीं पीऊँगी, ले जाओ इसे। औघड़ बाबा ने तुम्हारी तरह कभी आडम्बर नहीं किया, ढोंग नहीं रचा, लोगों को फँसाया नहीं। मैं ही नहीं, सभी उनको महात्मा मानते थे। तुम्हारे जैसे धूर्त से उनका क्या मुकाबला ?"

स्वामी की भौंहों में बल पड़ गए। एक बार उसके जी में आया, डंडा उठाकर उसके सिर पर दे मारे, किन्तु वह खड़ा ही रहा। विचारों का

मंथन उसमें चल रहा था। उसने चमेली की ओर देखा। उसके चेहरे से सौन्दर्य की लहरें उठ रही थीं। उसकी कठोर भृकुटियों में भी छवि का बाँकपन था। बड़ी-बड़ी गोल आँखों में जैसे रस की सरिता लहरा रही थी। वह परास्त हो गया। नम्र होकर बोला, "नारायण का प्रसाद है देवी, पी लो।" चेले की तरफ देखकर कहा, "तुम बाजार से सामान लेकर चलो, मैं आता हूँ।" चेले ने जाते-जाते चमेली से कहा, "स्वामीजी महाराज आज्ञा दे रहे हैं तो पी लो, चमेली बाई!" उसने दूध चमेली की तरफ बढ़ाया। चमेली ने चेले की तरफ घूरकर देखा, बोली कुछ भी नहीं।

स्वामीजी ने एक बार फिर अपने को हल्का करते हुए मज़ाक किया—

"चमेली बाई का मन उस पागल औघड़ में रमा है। स्वरूपानन्द, तुम चलो, मैं आज समाधि लगाकर देखूँगा इसकी नाराजी का क्या कारण है?" चमेली को समाधि के नाम पर हँसी आ गई। वह कहने लगी, "यह कोई नई बात नहीं है। आप स्त्रियों के लिए न जाने कब से समाधि लगाते आये हैं।" चेला चला गया था। चमेली के होठों पर मुस्कराहट देखकर उसका मन नाचने लगा।

"तुम्हारे लिए ही मेरी समाधि है चमेली बाई, क्रोध न करो। आज मेरी आत्मा को तुमने बहुत दुखाया है। शंकरानन्द के चरण-स्पर्श भी दुर्लभ हैं। वाणी तो कुछ ही सुन पाते हैं, धन की जरूरत हो तो मैं तैयार हूँ।" पास आकर उसने कहा, "बहुत दिनों से एक भक्त सेठ मुझे बुला रहा है। यदि तुम इलाज कराने चलो तो मुझे प्रसन्नता होगी।"

"कैसा इलाज, क्या मैं कोई बीमार हूँ? अच्छा हो आप अपना इलाज कराइये। अच्छा।" कहकर चमेली ने हाथ जोड़ दिए। स्वामी थोड़ी देर चुप रहा और चमेली की तरफ देखकर लौटता हुआ दरवाजे से जा टकराया। सिर भन्ना उठा। स्वामी ने सिर पकड़ लिया और सहलाने लगा। अब चमेली अपनी हँसी न रोक सकी और बोल उठी—

"मेरी तरफ देखने का यही फल है स्वामीजी !"

"यह फल भी बुरा नहीं है, यदि तुम प्रतिपल देखने को मिलो।" नहले पर दहला मारकर मुस्कराता स्वामी मकान से बाहर हो गया। चमेली ने मन में कहा, 'गुण्डा, बदमाश, साधु बना फिरता है।' उसका मन घृणा से भर गया। एकदम उसके मन में औघड़ बाबा का चित्र जाग उठा। वह सोचने लगी, जिस गंगा के किनारे लोग दर्शन करके, नहाकर अखंड पुण्य लूटने आते हैं उसीके किनारे मैं पापिन चोरी कराती हूँ, डाका डलवाती हूँ, लोगों का मन मोहकर खुश होती हूँ और इसे अपनी जीत मानती हूँ। भीख माँगती हुई भी मैं पाप करती हूँ। एक-एक, दो-दो पैसे के लिए मैं यात्रियों के सामने हाथ फैलाती हूँ और जवान यात्री को देखकर मुस्कराती हुई उसकी जेब से पैसा निकलवाती हूँ ! क्या रूप है यह मेरा ? क्या मैं वेश्या नहीं हूँ ? वेश्या और कैसी होती है ? मेरा सारा जीवन वेश्या बने रहने में बीता है। वह उठी और घर का ताला बन्द करके गंगा के किनारे घाट से हटकर मंदिर के पूर्व की ओर सामने के छोटे मैदान में, जिससे सटी हुई गंगा बहती थी, जा बैठी।

गंगा की धारा गम्भीर गति से बह रही थी। सामने पार झाऊ की झाड़ियाँ रेत में ऐसी चमक रही थीं जैसे स्फटिक की चादर पर किसीने पन्ने की गोटें लगा दी हों। एक तरफ किनारे से नाव बांधे मल्लाह आग जलाकर चिलम पी रहे थे। धीरे-धीरे यात्री लोग इस पार आने के लिए नाव में बैठ रहे थे। उस स्थान से कुछ दूर एक चिता जल रही थी, अकेली, निर्धूम, जिसकी आग की लपटें गंगाजल में प्रतिबिम्बित हो रही थीं। बाकी सब शान्त था, एकान्त, निश्चल, निस्पंद। पश्चिम की तरफ सूर्य अस्ताचल को जा रहा था। मजबूरी की दशा में विदाई से मानों उसके क्रोध की लाली आसमान में छा गई हो। बादलों के टुकड़े नये-नये रंग के कपड़े पहनकर नई सृष्टि का सृजन कर रहे थे। गंगा यह सब देखती हुई अपनी उसी रफ्तार से बह रही थी—

शान्त, गम्भीर, अलक्षित भाव से। मानों संसार का दुख देखकर लोगों की पीड़ा और करुणा से उसकी गति मन्द पड़ गई हो। और ऊपर नीम, जामुन, बबूल के पेड़ों पर कौए चिल्लाकर आने वाली शाम की सूचना दे रहे थे। पूर्व की ओर से अंधेरे की काली परत आकाश में बिछ रही थी।

विरक्त मन से चमेली किनारे पर बैठी रही। दस-बारह फुट नीचे गंगा बह रही थी। उसकी आँखों से आँसू टप-टप करके गिर रहे थे। वह ध्यानमग्न बहुत देर तक अपनी दुरावस्था, दयनीय दशा पर रोती रही। पश्चात्ताप, प्रायश्चित के आँसुओं से उसके मन का कलुष धुल रहा था। प्रार्थना के प्रवाह से उसने तन, मन से शुद्ध रहने की प्रतिज्ञा की। उसे बार-बार दुहराया और गंगा से प्रतिज्ञा को दृढ़ रखने की दुहाई माँगी। न जाने कब तक वह बैठी रही, कब तक जगत्तारिणी से भक्ति का वरदान माँगती रही। उसी समय पास के मकान में रहने वाले की आवाज आई—

"अरी चमेली, ओ चमेली, क्या बात है बहन ?"

चमेली कुछ न बोली।

वह आदमी पास आकर खड़ा हो गया। उसे चुपचाप देखकर वहीं पास एक चटाई पर बैठकर बीड़ी पीने लगा। चमेली को हाथ जोड़ने के बाद मुँह फेरते देखकर कहने लगा—

'गंगा मैया की किरपा है जो तू बच गई चमेली ! मैंने तो बाजार में अभी सुनी। आज ही तो मैं आगरे से आया हूँ।"

"हाँ मनीराम।"

"औघड़ बाबा का कुछ पता लगा ?"

एक लम्बी साँस छोड़ते हुए चमेली ने जवाब दिया—

"औघड़ बाबा तो मुक्त हो गए। माता ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया। पद्मपुरी का एक सिद्ध महात्मा उठ गया, मनीराम !"

"सो तो है ही चमेली, पूरे सिद्ध थे।"

"तुम आगरे क्यों गये थे, कुछ काम था क्या ?"

"हाँ, तू तो जाने ही है। इस बार सेठ से अपना रुपया लेने जाना पड़ा। वैसे तो वह मनीआर्डर से ही भेज देता है। उसके हिसाब में गड़बड़ी थी सो साफ करने गया था।" फिर अपने-आप बीड़ी पीकर फेंकता हुआ कहने लगा, "सारी दुनिया बेईमान है सुसरी ! मैंने घर-बार छोड़ते बखत आठ हजार सेठ के यहाँ जमा करवाया था। वही मेरी पूँजी थी। मैंने सेठ से कई, 'लाला, इसका सूद हर महीने भेज दिया करो। बस मैं और कुछ नहीं चाहूँ हूँ।' अब तू जाने गंगा मैया के चरनों में पड़ा हूँ, सो उन्ने कई, ढाई रुपया सैंकड़ा देना मुश्किल है मनी-राम, दो ले लो। उन्ने पिछलेऊ दो रुपैया सैंकड़ा के हिसाब से काट दिए। और बोलौ, 'असल में कट गए। अब साढ़े सात हजार हैं मनीराम !' तू जाने मनीराम कच्ची गोलियाँ नहीं खेला। मैंने जाकर कही, 'लाला, बात पर अड़े रहो। ढाई कही सो ढाई दो। आदमी की ज़बान एक होवे है। और न पुजे तो साफ जवाब देकर मेरा रुपया मुझे दे दो। मैं चाहे जो करूँ।' सो साब, बहुत हीले-हुज्जत के बाद सवा दो रुपये माना है। इस महीने से अब खरचा कम करना पड़ेगा। तूने आज खाना खाया या नहीं ? साफ बोल, तेरा चेहरा उतर रिया है। कहे तो बजार से कुछ ले आऊँ ? संकोच मत करियो भला ! खाना तो बनाके खा चुका।"

"नहीं, अब जाकर बना लूँगी।"

"तो ले," मनीराम भीतर जाकर चार लड्डू ले आया, "ले ये खा।"

"नहीं, नहीं।"

"अरे नहीं, क्या तू मुझे पराया माने है ? मनीराम की नजर में सारा संसार एक है।"

"सुनि चैवा सुपाकेचा पंडिता सम मानता।" (शुनि चैव श्वपाकेच पंडिताः सम दर्शिनः) संस्कृत के इस टुकड़े में हिन्दी की लकड़ी की टांग जोड़कर वह गर्व से चमेली की ओर देखने लगा। उसकी आँखों में विजय की चमक जगी।

"तू मुझे जाने नईए चमेली, वेदांत दर्सन, पांच दासी-महात्माओं की संगत में सब धोखे हैं। बस, कपड़े ही नहीं रंगाये।" फिर थोड़ी देर चुप रहकर गुनगुनाने लगा, "मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा।" अपने-आप गाकर चुटकियाँ बजाता रहा। थोड़ी देर बाद खड़ाऊँ बजाता आकर बोला—

"बस अब तो जेई इच्छा है, गंगा मैया के चरनों में बना रहूँ।" कहकर गंगा की तरफ हाथ जोड़ दिए। बहुत आग्रह करने पर चमेली ने एक लड्डू लेकर पल्ले में बाँधा तो मनीराम बोला—

"चमेली, जे बात नहीं होगी, तू बिरामनी है और मैं बनियौ। बनियों का दान बिरामन सदा से लेते रहे हैं, जेतो खानेई पड़ेंगे तुझे, तेरे निमित्त हैं।" भूखी तो थी ही, चमेली ने चारों लड्डू खा लिए। मनीराम बोला—

"और देख, तू मुझे अपना ही समझियो, जब किसी बात की जरूरत हौ तो मुझसे कइयो। मैं तो तेरा सेवक हूँ, समझी।" चमेली चलने लगी तो दूर तक पहुँचाकर मनीराम लौट गया।

अब चमेली सवेरे जाकर घाट पर बैठती, न किसीसे बोलती न हँसती। जो कुछ मिल जाता ले लेती और दोपहर को खाना बनाकर खाती और रामायण पढ़ती रहती। शाम को गंगा के किनारे उसी स्थान पर आ बैठती। मनीराम उसके उठते-उठते आता और कोई-न-कोई मिठाई खाने का आग्रह करता। एक दिन बहुत आग्रह करने पर चमेली कड़ककर बोली—

"मनीराम, मैं यहाँ भजन करने आती हूँ, तुम्हारे पास तो नहीं आती, जो तुम रोज खाने की बात कहते हो। तुम्हें बुरा लगे तो मैं न आया करूँ।"

मनीराम थोड़ी देर चुप रहकर बोला, "नहीं चमेली, यह मेरा सौभाग है कि तू यहाँ मैया का भजन करे है। सो मेरा भी तो कुछ कर्तब है। एक बिरामनी आवै है तो खाली क्यों जाय? तू ही अकेली

पुन्न लूटैंगी। इसीसे चमेली, इसीसे……।" कहकर वह रुक गया। चमेली ने उसी स्वर में जवाब दिया, "नहीं, यह नहीं होगा। मैं कल से और जगह बैठ जाया करूँगी। जगह के टोटे नहीं हैं।" खड़े होकर उसने एक बार गंगा को हाथ जोड़े और चल दी। मनीराम साथ चलते-चलते बोला, "जे बात है तो ऐसेई सही, कल से कुछ भी कह जाऊँ तो मनीराम बनिये का बेटा नहीं। तू क्यों आना छोड़े। भगवती मैया के भगत को देखकर तो मेरी आतमा तृपत होवै है चमेली! कौन है तेरे जैसा इस गाम में!"……रुककर बोला, "मनियाँ ऐसा-वैसा नहीं है। बात के लिए जान देना उसके बाएँ हाथ का खेल है।"

चमेली पूछ बैठी, "कितनी बार जान दे चुके हो मनीराम?" मनीराम सकपकाया, कहीं एक स्त्री के सामने नीचा न देखना पड़े, यह सोचकर कहने लगा, "तू मज़ाक समझै है, यहाँ बात के पीछे साली औरत छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, घर-बार छोड़कर गंगा मैया की सरन में पड़ा हूँ।"

"क्या बात हुई?" चमेली ने उत्सुकता से चाँदनी में घर की ओर मुड़ते हुए पूछा।

"बहुत लम्बा किस्सा है चमेली, जिन्दगी साली बरबाद हो गई। बड़ी दुनिया देखी है मैंने साली। कौन-कौनसी कहूँ। दिल आग होरिया है आग। बस, गंगा मैया बुझायेगी किसी दिन तभी बुझेगी। लोग कहैं हैंगे साले कि हथेली पर सरसों नहीं जमै है। यहाँ हथेली पर चौचंद सरसों जमाई है। हाथी घूमें थे किसी दिन। आज झोंपड़ी के आगे सियार रोवें हैं साले। जोग बसिस्ठ में दसरज्जी ने बसिस्ठजी से जो सवाल किया है, वैसा ही मेरा सवाल है। बड़े-बड़े महात्मा मेरा सवाल सुनके दंग रह गए। बोले, 'मनीराम, मान गए।' मैंने कई, "महाराज न सई दसरज्जी, बंस में तो उन्हीं के हूँ। ऐसे सवाल करूँगा कि आप भी मान जाओ।' तभी से मनीराम को लोग महात्मा माने हैं, पर मैं तो साला कुछ भी नहीं हूँ। गंगा मैया के चरनों की धूल भी नहीं हूँ

साली ।"

चमेली ने दूर से कभी मनीराम को देखा था, घाट पर आते-जाते। वह यह भी जानती थी कि यह बनिया गंगा के किनारे कुटिया बनाकर रहता है। कभी-कभी उसने जंगल से लकड़ियों का गट्ठर कुटी की तरफ ले जाते भी देखा था, लेकिन उसे यह नहीं मालूम था कि यह इतने बे-सिर-पैर का, बातूनी आदमी है। जब उसने अपने को दशरथ के वंश का बताया, तब कौतूहल से वह पूछने लगी—

"तुम तो बनिये हो मनीराम, दशरथ तो छत्री थे सूरजवंशी ?"

"तू यही तो नहीं जाने है चमेली ! अहा हा, गियान की बातें हैं जे। गियानियों का काम है जे चमेली ! मैं बताऊँ, मैं उनके वंश में कैसे हूँ। सुनेगी तू ? पर रहने दे, ये ऊँची बातें हैं। खैर, फिर कही दूँ हूँ। तो ले सुन। बात जे है, सास्तरों में आतमा को वैस बताया गिया है। क्योंके वो गियान इकट्ठा करती है, इकट्ठा करने का काम बनिये का है, तब बोल दसरथ्जी बनिये हुए कि नई, फिर मैं उनके वंस में हुआ कि नई ? बोल, कैसी कई ? ये सब योगसास्तर की बातें हैं। जब मैंने एक महात्मा से जे बात कही तो बोले, 'मनीराम, तुम बड़े गियानी हो।' "

मनीराम चमेली को चाँदनी रात में अपनी बात कहकर ऐसे देखने लगा जैसे उसने उस पर प्रभाव के स्तर बिछा दिए हों। चमेली के चेहरे पर भोलेपन के साथ शान्ति थी। वह गम्भीर थी। सफेद धोती में उसका सुन्दर मुख चमक रहा था। वह देखता रहा। जब चमेली घर की ओर चली गई तब भी वह बहुत देर तक खड़ा रहा। कुटिया में जाने के बजाय एक हलवाई की दुकान पर जा बैठा। रात बहुत नहीं गई थी, तो भी गाँव होने के कारण जहाँ-तहाँ कुत्ते भौंकने लगे थे। दुकानों के पास खड़े कुछ लोग दूध पी रहे थे। मनीराम ने पाव भर दूध का ऑर्डर दिया और बोला—

"मीठा अच्छा डालना सेठ, तुम्हारे दूध में चीनी कम होवे है।" हलवाई बिना जवाब दिये दूध ठंडा करता रहा। एक ग्राहक रामानन्दी

तिलक लगाये, गले में तुलसी की माला पहने दूध पीता हुआ बोला—

"मनीराम, समरिकें रयौ तनक, बीमों चूहे खायें भई है चमेली।" मनीराम सकपकाया, फिर बोला, "मनीराम चिकना घड़ा है रामसरन पंडा, मैया की किरपा चइये। चमेली भजन करे है तो करे।"

रामसरन ने दूध से लिपटे होंठ चाटते हुए कहा, "मेरौ मतलब गी। न ब्याइ जाय मनीराम!" उसने कुल्हड़ फेंका तो इन्तजार में खड़े कुत्ते कुल्हड़ के टुकड़ों पर टूट पड़े। वह लकड़ी उठाकर सामने पान वाले की दुकान पर जा खड़ा हुआ। वहीं से बोला—

"जि मनियाँ गंगा-सेवन करिवे कूँ आयौ है और औरतन कूँ सूँघत फिरै है। अरे बनिये का भजन करिंगे ? वे तो रुपैया के भगत हैं।"

मनीराम ने व्यंग्य समझा और कुल्हड़ हाथ में लेकर जवाब दिया—

"बिरामनों में अब वे सत्त नहीं रहे। तभी तो साले खे खाते फिरें हैं। 'वैस' न होते तो वे भूखे मर गए होते साले। आने दो आगरे वाले को, कहूँगा, 'लाला, ये जिसमें खावें हैं उसी में छेद करें हैं।' "

"सौ वेर मनीराम, सौ वेर। एक वेर काये कूँ ? हम काऊ सारे के पास नायँ जायें। वे ई आमें हैं। रानी रूठेगी अपनौ सुहाग लेगी। वे नायँ आमिंगे, नायँ दिंगे तो और कोऊ देगौ। बो नायँ देगौ तो और देगौ सारौ। ह्यां तो गंगा मैया की किरपा चइए। जानें दाँत दये हैं सो अन्नऊ देगौ।" फिर, सचमुच आगरे वाला नाराज हो गया तो जिजमानी बिगड़ जायगी, यह सोचकर वह थोड़ी देर के लिए चकराया। फिर पान की पीक थूककर कहने लगा, "आगरे वारौ तेरौऊ तो पेट भरे है मनीराम, हमारौ पेट काये कूँ काटैगौ ? बु सेठ है, धर्मात्मा है। बु नायँ आवैगौ तेरी बातन में।" और यथार्थ बनकर कहने लगा, "क्यों जी, तुमई कैयो, मैंने कछु कई आगरे बारे सें ?" मनीराम दूध पीकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "अपनी हैसियत में रहौ पंडित, इसीमें भला है।" "हैसियत में ही हूँ लाला, हैसियत तो तू देखि, जो हट्टौ-कट्टौ गंगाजी पै परौ रोटी तोरै है। न काऊ काम कौ न धाम

कौ।" रामसरन ने लट्ठ जोर से फटकारा तो मनीराम बिना कुछ कहे चल दिया। रामसरन उसे जाते देख सुनाकर कहने लगा—

"ब्याज खा सारे ब्याज, चलौ है रामसरन सूँ बातें करिबे। कुटिया जरवाइ दंगो।"

"चलौ जान देउ पंडित, बाल-बच्चे, औरत भीख माँगें हैं। जि गंगा-सेवन कूँ आयौ है। याकी औरत एक बेर आई, वाने चिल्लाइ कें कई, बच्चन कूँ भैर दे दे, मैंऊँ तेरे साथ भजन करूँगी। उन्हें काये कूँ मेरी छाती पै मूँग दरिबे छोड़ि आयौ है।" दूध वाले ने अपनी दुकान से बैठे-बैठे कहा।

"नामर्द है सारौ, कमाई नायँ होति होइगी," कहकर रामसरन गली में घुस गया।

मनीराम दूर जाते-जाते भी सुनता जा रहा था। उसने अपने मन को यह कहकर संतोष दिया, 'यहाँ के लोग बड़े नीच हैं, बकने दो, मेरा क्या जाता है!' उसे पंडों से घृणा हो रही थी। वह चमेली की बात सोचने लगा।

जब दो-तीन दिन तक चमेली उसकी तरफ न गई तो मनीराम का शैतान मन बेचैन हो उठा। वह इधर-उधर चक्कर लगाकर देखता रहा, चमेली क्यों नहीं आई? उस पर जादू डालने के लिए उसने कई मनसूबे बना रखे थे। एक दिन सवेरे घाट पर पहुँचा तो वहाँ चमेली नहीं थी। मालूम हुआ वह दो-तीन दिन से नहीं आई है। मनीराम उसके घर गया तो बाहर से दरवाजा भिड़ा था। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद धीरे से दरवाजा खोलकर भीतर झाँका तो देखा, चमेली चटाई पर बैठी कुछ पढ़ रही है। वह इतनी तल्लीन थी कि मनीराम का आना भी उसे मालूम न हुआ। मनीराम दूर खड़ा देखता रहा। उस समय चमेली के चेहरे पर एक प्रकार की गम्भीरता थी। उसका मुख सौम्य-भाव से चमक रहा था। अपेक्षाकृत वह आज और भी सुन्दर लग रही थी। माथे पर लाल चन्दन का टीका, चमकते मस्तक के दोनों ओर

बाल बिखर रहे थे। झुकी हुई मादक आँखों से आँसू की बूँदें गिर रही थीं। पढ़ते-पढ़ते चमेली थोड़ी देर आँखें बन्द करके बैठी रही। फिर आँसू पोंछकर पढ़ने लगी। मनीराम खड़ा देखता रहा। गोरी उँगलियों से पुस्तक का पन्ना पकड़े वह तन्मय होकर पढ़ रही थी। मनीराम को लगा, सचमुच ऐसी सुन्दरी तो उसने आज तक नहीं देखी।

अचानक पृष्ठ उलटने पर चमेली ने जो निगाह उठाई तो दूर कोने में मनीराम को खड़े पाया। "क्या है मनीराम ?" उसने विरक्त भाव से पूछा। मनीराम को कुछ भी नहीं सूझा, क्या कहे, जैसे वह उसके सामने हत-प्रभ हो गया। उसकी गिधियाई आँखें ललच उठीं। वह चुप रहा तो चमेली ने फिर पूछा, "कैसे आये मनीराम ?"

"ऐसे ही, तू इतने दिन से आई क्यों नहीं ?"

"मैंने रामायण शुरू करी है भैया, आज खतम होगी।" कहकर वह फिर पढ़ने लगी। मनीराम वहीं पास बैठकर अनवरत प्यासी आँखों से ताकता रहा। चमेली अटक-अटककर चौपाइयाँ पढ़ रही थी। चौपाई के बाद अर्थ पढ़ती. यही उसके पढ़ने का क्रम था। मनीराम देर तक बैठा रहा। उसे खयाल था, रामायण पढ़ने के बाद वह कुछ बात करेगी; पर वह तो लगातार पढ़ती जा रही थी, पढ़ती ही रही। मनीराम हारकर चलने लगा तो भी उसने ध्यान न दिया। आध घंटे बाद मनीराम मिठाई लिये आ पहुँचा। तब भी वह पढ़ रही थी। उसने मिठाई का दौना सामने रख दिया। चमेली ने देखा तो पढ़ते-पढ़ते रुककर पूछा—

"यह क्या है ?"

"आज मेरी तरफ से भोजन, तू बिरामनी है न ?"

"मैं तो एक बार खाती हूँ, मुझे नहीं चाहिए, ले जाओ।"

"नहीं !" विनय, लालसा और वासना-भरी नजर से देखते हुए उसने अनुरोध किया, "आज मेरी तरफ से चमेली !" चमेली ने मना किया और पढ़ने लगी। मनीराम फिर भी बैठा रहा, फिर हारकर चला

गया। चमेली उस समय भी पढ़ रही थी। मनीराम का मन काम-विह्वल हो उठा। उसकी आँखों में चमेली नाचने लगी। वह भूल गया। उस दिन उसने न कुटिया में बुहारी लगाई, न नहाया, खाना भी नहीं खाया। वह पड़ा सोचता रहा। उसे लगा चमेली उसके जीवन में समा गई है। उसका रूप, उसकी आकृति, उसकी चेष्टाएं जैसे उसकी नस-नस में व्याप्त हो गई हैं। वह चंचल हो उठा। दोपहर को वह फिर चमेली के घर गया तो देखा मिठाई का दौना आले में जैसा-का-तैसा रखा है। वह दाल के साथ सूखी रोटी खा रही है। चमेली दूर से देखकर बोली—

"क्या बात है मनीराम, क्यों बार-बार आते हो ?" मनीराम घबरा गया। कुछ न सूझा तो बोला, "अरे, जे मिठाई नई खाई ! खा ले न !" दौना उसकी तरफ सरका दिया। चमेली ने रोटी खतम की और हाथ धोकर बरतन माँजने बैठ गई। मनीराम देखता रहा। बरतन माँजकर चौका लगाने के बाद चमेली निश्चित हुई तो मनीराम ललचाई नज़र से देखता हुआ बोला, "चमेली···!" इससे आगे वह कुछ न कह सका। चमेली ने उसकी ओर देखकर नीरव भाव से प्रश्न किया। वह दोनों हाथ मसलता खड़ा हो गया। "चमेली····!"

"मैं बड़ी पापिन हूँ, मनीराम !"

चौड़े जबड़े तक मुँह फाड़कर और आँखें छोटी करके वह मुस्कराया। उसके मैले दांत बाहर निकल आए, सिर के बाल खड़े हो गए। वह कुछ न कह सका, जैसे उसका विषयी मन आँखों और कुचेष्टाओं से बाहर निकल पड़ा रहा हो। उसकी आकृति पहले की अपेक्षा और भी बीभत्स हो उठी। चमेली ने उसकी ओर देखा तो कठोरता से कहा, "क्या है, ऐसा क्यों हो रहा है ?"

"चमेली··· !" मनीराम जैसे होश खो बैठा।

"कह भी कुछ, मुझे अभी रामायण पढ़नी है।"

"न जाने तूने क्या कर दिया चमेली ?"

चमेली की त्यौरी चढ़ गई। जी में आया धक्का देकर बाहर निकाल दे और कह दे अब इधर कभी मत आना। अब वह पहले-सी चमेली नहीं है, जा। लेकिन मनीराम की चेष्टा से उसे स्वयं दुख हुआ। अपने ऊपर उसे ग्लानि हुई। वह मानने लगी, इसमें मनीराम इतना दोषी नहीं है जितनी वह स्वयं। अपेक्षाकृत नरमी से वह बोली, "तू तो गंगा-सेवन करने, पाप धोने आया है न मनीराम ?"

"मेरी तो तू ही गंगा है चमेली !" कहकर वह गिड़गिड़ाया।

"ऐसा ही पापी मन है तो घर लौट जा।"

मनीराम आगे बढ़ा तो चमेली हट गई, "दूर रह !" मनीराम पीछे हटा।

"यही भक्ति है तेरी, यही वैराग्य है तेरा ! नीच, निकल मेरे घर से, नहीं तो सिर फोड़ दूँगी। तू मुझे जाने नहीं है।" कहकर उसने कोने में रखी लकड़ी उठाई। मनीराम दूर खड़ा हो गया। उसके जी में आया चमेली को बाहुपाश में कस ले। उस समय चमेली का रूप उसे और भी अच्छा लग रहा था। चमेली कह रही थी, "यही तेरा रूप है, तू तो बड़ा ज्ञानी बनता था। गंगा के किनारे भजन करने आया है तो भजन कर। मुझे नहीं मालूम था तू मनुष्य के रूप में इतना बड़ा पशु है, शैतान है। मन में इतनी नीचता है तो यहाँ आया ही क्यों ? जा, चला जा यहाँ से, नीच, पापी, कुत्ते।" चमेली ने मिठाई का दौना उसके मुँह पर दे मारा। मनीराम डरपोक था ही, घबरा गया। पीछे हटकर खड़ा हो गया। जाता-जाता बोला, "लोग ठीक कहें हैं, नौ सौ चूहे खाय बिलैया हज चली।" वह बड़बड़ाता चला गया। चमेली लकड़ी हाथ में लिये खड़ी थी, वह उसके हाथ से गिर पड़ी। यह उसे पहला अनुभव हुआ। वह खाट पर बैठ गई। उसके मन में आया, दौड़ कर मनीराम के सिर पर दो डंडे जमा दे। उसे ऐसा कहने का साहस कैसे हुआ ? क्या वह इतनी कमजोर है कि एक मामूली-सा आदमी उसे इस तरह अपमानित कर जाय ? इतनी बुजदिल है क्या सचमुच वह ?

उसने तो आज तक कभी हार नहीं मानी, कभी किसीसे दबी नहीं। कौन ऐसा है जिसे उसने हराया न हो! रूप से, बल से, छल-छिद्र से, कौशल से वह आज तक दूसरों पर हकूमत करती आ रही है। वह क्रोध में भरी टहलने लगी। एक दूसरा विचार उसके मन में आया—जब वह ऐसी है तभी लोग उसके साथ खेलना चाहते हैं। इसमें लोगों का क्या दोष है? पानी तो गड्ढे में ही गिरता है। मुझे ऐसा देखकर लोग लाभ उठाना चाहते हैं। और किसी स्त्री को कोई क्यों नहीं कहता? तब क्या मैं पूजा-पाठ करके, नेक रहकर, आत्मसंयम से भी ठीक नहीं हो सकती? तो क्या एक पापी का कभी उद्धार नहीं हो सकता? क्या मेरा कलंक कभी धुलेगा ही नहीं? बड़ी देर तक सोचते रहने के बाद भी वह कोई निर्णय नहीं कर सकी। इसी उधेड़-बुन में बहुत देर पड़ी रहने के बाद उसने रामायण उठाई और पढ़ने लगी। उस समय जो प्रसंग वह पढ़ रही थी उसमें भक्ति पर जोर दिया गया था—भगवान् की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है, यही मनुष्य को कष्टों से तारने वाली है। जब दुख के क्षण आवें, कोई मार्ग न सूझे, तब भक्त को चाहिए कि सर्वात्मना, सर्वरूपेण भक्त निज को भगवान् के अर्पण कर दे।

इसी प्रकार का प्रसंग था। चमेली ने पढ़ा तो सन्तोष हुआ। उसने बार-बार दुहराया और उन्हीं का ध्यान करने लगी। वह दूने उत्साह से रामायण-पाठ में जुट गई। उसने निश्चय किया, समाप्त हो जाने पर दूसरी बार, तीसरी बार वह रामायण पढ़ेगी। उसे मालूम था कि लोग ज़िन्दगी-भर नियमित रूप से रामायण-पाठ करते हैं। रामायण पढ़ने से पुण्य होता है। ज्ञान तो होता ही है। उसने समझा, यह ज्ञान ही सबसे बड़ा पुण्य है, भक्ति ही सबसे सुन्दर फल है। वह तन्मय होकर पढ़ती रही। उन दिनों पास ही मन्दिर में भागवत की कथा हो रही थी। चमेली वहाँ भी गई। उसी दिन रात को लौटने पर उसने देखा शिवचरन दरवाजे से लौट रहा है। आकार से पहचानकर उसने पूछा,

"शिवचरन है क्या ?"

शिवचरन रुका, बोला, "तोइ देखिवे आयौ हो।"

"क्या बात है ?"

"कुछ नई, बहुत दिना है गए सो। भगत है गई है।" कहकर वह हँसा और चमेली के पीछे चलने लगा। चमेली ने दरवाजा खोलकर आले में रखी लालटेन जलाई और शिवचरन की ओर देखा। वह इस समय भंग पिये, आँखें चढ़ी, मैला लाल अंगोछा ओढ़े था। चमेली को देखकर हँस दिया।

"बहुत दिना है गए सो मैंने कई देखूँ तो सही, का बात भई। घाट पैउ नायँ बैठति। कोई हारी-बीमारी तौ नायँ है गई ? सो पूछिवे चलौ आयो। रोटी नायँ खाई ?"

"मैं एक बार खाती हूँ।"

"भगत है गई है," कहकर हँसा। उसके छोटे-छोटे दांत ओठों में छिप गए। चमेली सामने पड़ी चटाई पर बैठ गई। धोती के किनारे की बत्ती बनाकर कान खुजाने लगी।

"क्या भक्ति करूँगी शिवचरन, अब भजन के सिवा कोई सहारा भी तो नहीं है। सोचती हूँ, लोग गंगा पर आकर अपना जनम सुधारते हैं, मैं पापिन ही बनी रहूँ क्या ? यह तीर्थ है, अपने पिछले पाप धो रही हूँ।"

"अरी, हम तीर्थवासिन कूं पाप नायँ लगत। गंगा में गोता लगावत जाओ, सिगरे पाप छूट जांगे। मैं तो कछु पाप-आप नायँ मानूं।"

"तेरी बहू नहीं आई ?" बात का प्रसंग बदलकर उसने पूछा।

"आ जाइगी बहू-फहू, अब वा में का रक्खौ है। जहाँ चारि बच्चा भए कें औरत जात गई।"

"क्या मतलब, तू तो ऐसे कह रहा है जैसे संन्यासी हो गया हो ?"

उसने उचटते मन से उत्तर दिया, "सन्नासी-सेई हैं।" छत की तरफ देखते हुए वह हँसा। उसके मुँह की झुर्रियाँ चमक गईं। कई दिनों

से दाढ़ी बढ़ने के कारण हँसने पर उसका मुँह और भी भौंडा लगने लगा। एक तो काला रंग, उस पर बेतरतीब सिर के बाल, रज लपेटे हुए मुँह और लाल आँखों से मालूम होता था जैसे श्मशान की रखवाली करने वाला हो। अंटी से बीड़ी निकालकर चमेली की ओर बढ़ाई तो वह बोली, "मैंने छोड़ दी।" "क्यों ?" आश्चर्य से उसका मुँह फटा रह गया। थोड़ी देर बाद फिर बीड़ी देता हुआ बोला, "लै पी न, या में काऐ।" वह दियासलाई ढूँढ़ने लगा।

"लालटेन के पास रखी है, ले ले।"

शिवचरन बीड़ी सुलगाकर पीने लगा। खाट की पाटी पर बैठे-बैठे पीछे सरक गया और कंधे के अंगोछे को उसने फिर ओढ़ लिया। चमेली देखती रही। शिवचरन वहाँ बैठने का कोई अर्थ नहीं समझ पा रहा था। बात समाप्त हो गई थी। अब क्या कहे ? अपने-आप न जाने क्या सोचकर हँस पड़ा। चमेली ने कहा—

"क्या बात है, शिवचरन ?"

"तू तो सच्ची-मुच्ची भगत है गई है, चमेली ! ढकोसला है, सब ढकोसला। काये कूँ मरिबे डोलै ? इतनी मलूक औरति हैकें सन्नास लै लयौ है। तू माने, चाहें मति माने, तेरी बात तौ मेरी कछु समझ में परति नायँ। कै तौ मैं रोटी बनाय दऊँ ?"

"नहीं।"

"अरे तौ हमऊँ खाय लिगे।"

"अब मैं सोऊँगी।"

उसने बीड़ी पीकर आँगन में फेंक दी। उठता हुआ बोला—

"घाट पैऊ नायँ बैठैगी का ?"

"नहीं," कहकर वह उठ खड़ी हुई। शिवचरन जाते-जाते बोला—

"कोई काम होइ तौ बतैयो।"

"होगा तो कह दूँगी, जा।" दरवाजा बन्द करके चमेली लौटी तो भीतर बिस्तर बिछाकर बैठ गई। लालटेन जल रही थी। वह बहुत

देर तक बैठी रही। आज उसने ध्यान से कथा सुनी। अपने को कृष्ण की गोपी समझकर उसी चिन्तन में लीन हो गई।

चमेली में भक्ति का स्रोत उमड़ने लगा। वह अब 'सुखसागर' पढ़ने लगी। रामायण में जो बात उसे नहीं मिली थी वह 'सुखसागर' में मिली। उसका प्यासा मन 'सुखसागर' के रस में डूब गया। वह अँधेरे में गंगा नहाने जाती और आकर 'सुखसागर' पढ़ने लगती। शाम को आगरे वाले सेठ के मकान से सटे गंगा के किनारे एकान्त में बैठकर भजन करती। उसने सबसे मिलना-जुलना, बातचीत करना छोड़ दिया।

एक दिन शाम को गंगा से लौट रही थी तो सेठानी ने देखकर कहा—

"सीधा रखा है, लेती जइयो।"

"मैं सीधा नहीं लेती।"

"क्यों, तू तो बामनी है न ?"

"हूँ तो, पर अब दान नहीं लेती।" सेठानी को बड़ा अजीब लगा, बोली—

"अरी क्या इस तीरथ पै ऐसा भी कोई बामन है जो दान न लेता हो ? मैं तो इससे कहूँ हूँ कि तू मेरे घाट पै आके पूजा करे है, भजन करे है, भली आदमिन लगे है। यहाँ तो मरे सब संड-मुसंडे भाँग पीवें हैं और जात्रियों को लूटें हैं। हम न होंय तो भूखे मर जायँ मरे सब।"

वह बहुत देर तक बोलती रही। खंगड़-सी देह, पिचके गाल और मुँह पर केवल आँखें ही चमक रही थीं, जैसे हड्डियों पर मांस की एक पतली परत चढ़ी हो। तेलिया रंग, छोटा कद, तेज जबान; गले में सोने की जंजीर, हाथों में सोने की ढीली चूड़ियाँ, जो ऊपर चढ़ा ले तो बाजू-बन्द का काम दें। उम्र होगी लगभग पचपन-छप्पन।

सेठानी के लड़कों ने उसकी इच्छा से रहने के लिए मकान बनवा दिया है। वह प्रायः एक नौकरानी के साथ यहाँ रहती है। वैसे भी यह स्थान प्रायः एकान्त रहता है। इधर-उधर से कोई आता भी

नहीं। चमेली ने अपने लिए यही स्थान उपयुक्त समझा। उसने सेठानी को कोई जवाब नहीं दिया और घाट पर चली गई। सेठानी गंगा-किनारे के कमरे में पलंग पर बैठती। वहीं से गंगा के दर्शन होते थे। मकान के बीचों-बीच एक कमरे में ठाकुरजी विराजमान थे। सुबह-शाम एक पुजारी आकर पूजा कर जाता। पिछले दिनों से सेठानी उस पुजारी से नाराज थी, क्योंकि पुजारी की स्त्री अनाज तथा अन्य कामों के लिए बुलाने पर भी नहीं आई थी। पंडा रोज हाजिरी लगा जाता और बाजार से जरूरत की चीजें ला देता। यहाँ आम, कटहल, खरबूजे सस्ते थे। आगरा के लिए अचार और मुरब्बे यहीं से तैयार होकर जाते थे। फसल के दिनों में सस्ते दामों पर तेल के लिए सरसों और तिल इकट्ठे खरीद लेती। उसीसे तेल निकलता। अचार के दिनों में पंडे-पुजारियों की औरतों के अलावा वे भी आ जातीं, जिन्हें सेठानी कभी-कभी सीधा दिया करती। सेठानी पलंग पर बैठी सबकी निगरानी रखती। एकादशी, पूर्णमासी के दिनों में सीधे बाँटती—डेढ़ पाव आटा, छटाँक दाल, नमक, आधा तोला घी और एक पैसा। इसको वह सीधा कहती थी। इतने ही के लिए वह ब्राह्मणियों से कहती, "ठीक से काम करो, इस बार तुम्हें भी सीधा दूँगी।" जाड़े के दिनों में एक बार कम्बल बाँटने का यश भी वह लूट चुकी थी। उसका भी एक कारण बन गया, वह यह, कि चौथा लड़का बीमार पड़ गया। डॉक्टरों ने तपेदिक घोषित कर दी। महीनों पहाड़ पर रहा, बड़े इलाज हुए। उन दिनों सेठानी काफी परेशान रही।

एक दिन आगरा से लौटकर गंगास्नान करते हुए उसने पल्ला पसारकर भीख माँगी, "देवी मैया, यदि मेरा लड़का ठीक हो जाय तो मैं सौ कम्बल बाँटूँगी।" जब लड़का चार मास बाद पहाड़ से ठीक होकर लौटा तो सेठानी लड़के के स्वास्थ्य के साथ-साथ कम्बलों की संख्या कम करती गई। उसने लोईनुमा पच्चीस रुई की चादरें मँगा लीं। अब सेठानी ने घोषित किया, "मैं इस साल बामनों को कम्बल बाँट रही

हूँ, जो अच्छा होगा उसे ही दूँगी। सवेरे से आकर शाम तक मेरे मकान पर भजन करो। कम्बल मिलेंगे।" जिस शुभ मुहूर्त में यह काम करने का निश्चय किया गया उस दिन बस्ती के बहुत से ब्राह्मण कुशासन बगल में दबाये, माला लिये, सेठानी के घर आ गए। सबसे कहा गया, "एक हजार गायत्री का जप करो। हमारी कुशल मनाओ। जिसे गायत्री-मन्त्र ठीक आता होगा उसे कम्बल दिये जायँगे।" जप करने से पहले एक पंडित को आगरा से ब्राह्मणों की परीक्षा लेने बुलाया गया। वही कम्बल लेकर आया था। उसने एक-एक की परीक्षा ली। सेठानी की आज्ञा के अनुसार वे ही ब्राह्मण निर्वाचित हुए जो उसके घर कभी-कभी काम करते थे। बाकी निकाल दिये गए। एक-एक सीधा और एक चादर उनको दिन-भर जप करने के बाद दी गई। ब्राह्मणियों को कम्बल के बजाय एक सीधा और चार आने बाँटे गए।

जब चमेली गंगा-किनारे से लौटी तो सेठानी ने उसे अपने पास बुलाया। वह उस समय खाट पर लेटी थी। नौकरानी पैर दबा रही थी। खाट के नीचे थूकने का एक पीकदान रखा था। चमेली सामने आकर चटाई पर बैठ गई।

"क्या नाम है तेरा ?"

"चमेली, सेठानीजी !"

"यहीं की रहने वाली है ?"

"हाँ।"

"देख मेरी बिरामनी घर जा रही है, कुछ दिनों के लिए तू उसकी जगह काम कर दीजो भला ! काम मरा कुछ भी नहीं है, सिरफ सुबह-सांझ की रोटी है बस, इत्ता-सा काम है। तू जाने, मैं और के हाथ की रोटी तो खाऊँ नहीं हूँ।"

चमेली चुप रही।

"क्या कवै है ? परसों से करियो।" इसके साथ ही उसे खाँसी आई तो बैठकर खाँसती और वहीं चिलमची में थूकती रही। नौकरानी

पीठ पर हाथ फेरने लगी। जब चमेली बिना जवाब दिये चली तो उसने हाथ के इशारे से रोका। खांसी रुकने के बाद लेटते हुए बोली, "परसों से आवेगी न? सवेरे आ जइयो, नहा-धोकर भजन करियो और ग्यारह बजे रोटी बनेगी। तू भी खा लीजियो।" नौकरानी से उसने कहा, "सीधा दे दे।" चमेली सेठानी से परिचित थी। वह जानती थी, यह महाकंजूस औरत है। एक बार जी में आया, मना कर दे। लेकिन फिर वह घाट पर भजन भी नहीं करने देगी। सोचा जैसे मैं अपने लिए खाना बनाती हूँ, इसके लिए भी बना दूँगी। बाकी समय घर के बजाय यहाँ गंगा के किनारे 'सुखसागर' पूरा कर लूँगी। एकान्त तो है ही। चमेली बोली, "सेठानी, मैं तो एक बखत खाना खाऊँ हूँ।"

सेठानी लेटे-लेटे साँस साधती हुई बोली, "अरी तो मैं ही कौन दो बखत खाऊँ हूँ!" साँझ को कभी-कभार खिचड़ी खालू हूँ, उसमें लगे ही क्या है? पन्द्रह मिनट का तो काम है मरा। फिर तू दिन-भर भजन कर। मैं तो चाहूँ कोई ऐसा हो तो भगवान् का भजन करने वाला, जो कुछ मुझे भी सुनावे।"

"मैं आजकल 'सुखसागर' पढ़ रही हूँ।"

"ले, ये तो और भी अच्छा है।" नौकरानी पैरों पर हाथ फेरती रही। सेठानी ने करवट बदली और उसकी तरफ मुँह करके पूछने लगी, "और कौन है तेरे?"

"और तो कोई भी नहीं है।"

"बाल-बच्चे?"

"नहीं।"

"मालिक?"

"उन्हें मरे बहुत साल हो गए।"

"विधवा है?" चमेली ने कोई जवाब नहीं दिया। सेठानी चुप-चाप चमेली की तरफ तीखी नजर से देखती रही। उस समय चमेली के मुँह पर शान्ति थी। उसका चेहरा लालटेन की रोशनी में बड़ी-

बड़ी आँखों से और भी भर रहा था। सफेद धोती से घिरा हुआ गेहुँआ मुख अपने तीखे नक्शों से सुन्दर लग रहा था। सेठानी उसे देखती रही।

"कब हुई थी विधवा ?"

"बहुत दिन हो गए।"

"हूँ" कहकर अपने लड़कों की बहुओं के चेहरों से उसका मिलान करने लगी। उसकी लड़कियों और बहुओं में एक भी इतनी सुन्दर नहीं थी। वह सोच रही थी, न जाने हम बनियों में ही इतने सुन्दर क्यों नहीं होते ? सभी काले। हाँ, पर इससे क्या, मालदार तो हैं। आज कौन है हमारे मुकाबले में, चाहे जो-कुछ कर सकें हैं हम। चाहे जो खरीदें, चाहे जो बेचें। उसके चार लड़के थे—दो आगरा में व्यापार करते थे, एक दिल्ली में रहता था, एक अभी बाहर से पढ़कर आया है। बहुत पढ़ा है, न जाने कित्ता पढ़ा है।

"तू कुछ पढ़ी भी है ?"

"किताब बांचलू हूँ।"

"रमैन पढ़ ले है ?"

"हाँ।"

चमेली ने घर जाकर जैसे ही दरवाजा खोलकर लालटेन जलाई, वैसे ही सामने दिखाई पड़ा ललिता पंडित। उसके हाथ में दूध का कुल्हड़ था। कंधे पर अँगोछा और कुरता पहने। दाढ़ी के बाल बढ़े हुए, सिर पर गजी की दुपल्लू टोपी। चमेली को सामने रोशनी में वह साफ नहीं दिखाई दे रहा था।

"कौन ?"

"मैं हूँ ललिता प्रसाद।" कहकर वह और आगे आ गया। सामने बिछी चटाई पर एक तरफ कुल्हड़ रखकर बैठ गया। चमेली इधर-उधर का काम समाप्त करके खाट पर बैठ गई। ललिता चुपचाप चमेली की ओर देखने लगा, कहा उसने कुछ भी नहीं। चमेली ने भी कोई बात

नहीं की।

"कहाँ सूँ आइ रही है ?"

"गंगाजी से।"

"या बखत गंगा पै का होगी ?"

"कुछ नहीं, ऐसे ही।"

"भजन करिबे गई होइगी ?"

चमेली चुप रही। ललिता को और कोई बात नहीं सूझी। फिर बोला, "कछु नाराजी है का ?"

"नाराजी कैसी ?"

"नायँ हमसूँ कोई कसूर है गयौ होय तो माफी मांगतें।" उसने दोनों हाथ मिलाए, पर जोड़े नहीं। आँखें उठाए चमेली की ओर देखता रहा। चमेली लालटेन की ओर देख रही थी।

"मैं आय नायँ सकौ वा बखत।"

"तो किसीने तुझे बुलाया था।"

"नायँ, सचमुच गलती भई।" कहकर जरा फैला तो चटाई के नीचे किनारे पर रखा दूध झटके से लुढ़क गया। उसने सिटपिटाकर गिरते दूध को बचाया और कुल्हड़ ठीक किया। आधा दूध गिर गया था। उसके जी में आया कि मुँह लगाकर गिरे हुए दूध को चाट ले। यह साधारणतया गाँव वालों के स्वभाव के विरुद्ध है कि दूध जैसी चीज वैसे ही पड़ी रहे। उसने कहा—

"कोई बरतन होय तौ भर दऊं।" चमेली उठी और बरतन में दूध हाथ से समेटकर भर दिया। ललिता बौड़म-सा देखता रहा। वह हाथ धोकर आ बैठी और बिना किसी विकार के लालटेन की तरफ देखती रही। ललिता ने माफी मांगी पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उसे नहीं सूझा कि वह आगे क्या कहे, कैसे चमेली को खुश करे।

"खानौ नायँ खायगी ?"

"नहीं।"

"एक बखत खातिहै ?"

"हाँ।"

वह मुस्कराकर बोला, "गाम के लोग कैहें हैं चमेली बिरकुल्ल बदलि गई है। अब तौ घाट पैऊ नायँ बैठति। जब देखौ तब भजन करै है।"

"कुछ बुरा है क्या ?" चमेली ने वैसे ही रूखेपन से जवाब दिया। वह ललिता के मन के भाव पढ़ रही थी। उसे लगा कि यह कितना सीधा है, कितना मूर्ख। झुकना चाहता है पर झुक नहीं सकता। एक आंतरिक स्नेह की झलक उसे ललिता में मिल रही थी। अब से काफी दिनों पहले तक वह उसे अपना समझती रही है, उस पर शासन करती रही है। जब उस दिन गंगा में गिरी तो आशा ही नहीं, विश्वास था कि सुनते ही ललिता आयेगा पर वह नहीं आया। शिवचरन से जब उसने इसकी तरफ से उपेक्षा की बात सुनी तो उसे बहुत दुख हुआ। आज चमेली बिलकुल अकेली है, निराधार। स्त्री हमेशा एक सहायक चाहती है। जो हितू बनने का ढोंग रचते हैं, उसे मालूम हुआ, वे उसके नहीं, शरीर के गाहक हैं। इसीके साथ उसे शिवचरन का ध्यान आया। शिवचरन में उसने एक प्रकार की मूर्खता पाई। जब आदमी स्वस्थ होता है तब किसीकी परवा नहीं करता। लेकिन हारी-बीमारी में एक सहारा ढूंढ़ता है। ऐसा आदमी ढूंढ़ता है जिसके साथ उसके स्नेह का सूत्र बँधा हो, जिसके सामने अपनी व्यथा को प्रकट कर सके और उससे अटूट सांत्वना पा सके।

उस दिन वह इस ललिता का इन्तजार करती रही, जैसे पलकों के पट खोलकर एक-एक क्षण इसे ढूँढ़ती रही हो। पर यह नहीं आया। चमेली का मन विरक्ति और सूनेपन से भर गया। उसे लगा इस संसार में कोई ऐसा नहीं है जिससे वह अपना सुख-दुख कह सके, जिसके सामने जी भरकर रो सके, जहाँ उसका निश्छल मन जाकर अटक जाय। चमेली की समझ में आज आया कि वासना और प्रेम में

कितना अन्तर है। अब तक उसके जीवन में जो लोग आये वे वासना से भरे थे, प्रेम से पूरित नहीं। उसे लगा यह सब धोखा है। आज इसके आने पर भी वह धोखा नहीं खा सकती। वह ललिता के सामने जड़ बनी बैठी रही।

जब ललिता ने चुपचाप बैठे रहने के अलावा कुछ न कहा तो उखड़े मन से चमेली ने यह भाव दिखाया कि वह सोना चाहती है। उसने खाट पर चादर डाल दी, तकिया रख लिया। पानी का एक बरतन सिरहाने रख दिया। ललिता अब भी बैठा था।

"मैं सोऊँगी, जा।" ललिता ने दूध का कुल्हड़ उठाया तो बीच में ही बोला—

"दूधुई पी लै।"

"नहीं।" यह शब्द जैसे ललिता की छाती से जाकर टकराया। वह खड़ा हो गया। चलते-चलते रुककर बोला—

"अब माफ करि दै चमेली!"

"कैसी माफी, तूने मेरा क्या बिगाड़ा है?"

"नायँ, गलती भई।" कुल्हड़ उठाये हुए उसने दोनों हाथ जोड़ दिए और झपाटे से दरवाजे के बाहर निकल गया। जब वह दरवाजा बन्द करने गई तो उसने देखा वह बाहर खड़ा है। एक बार उसकी इच्छा हुई वह उसे माफ कर दे पर ऐसा न कर सकी। उसने खट से दरवाजा बन्द कर दिया, जैसे ललिता के लिए उसके द्वार सदा के लिए बन्द हो गए हों। थोड़ी देर बाद उसे दूध का कुल्हड़ फूटता सुनाई दिया। वह यह न जान सकी कि कुल्हड़ उसने दूध पीकर फोड़ा है या क्रोध और निराशा में।

बूढ़ा महेन्द्रसिंह घर के बाहर दालान में आरामकुरसी पर लेटा हुक्का पी रहा था। वह पुराने जमाने की आरामकुरसी थी जिसके हत्थों

के साथ पैर फैलाकर लेटने की जगह थी। इस समय एक पैर का हत्था टूटा हुआ था। बेंत की जगह लकड़ी के तख्ते लगे थे। सामने कुछ मूढ़े, दूर हटकर एक बड़ा तख्त बिछा था। तख्त पर जगह-जगह कई छेदों वाला एक पुराना कालीन बिछा था। ऊपर दो बड़े गाव-तकिये बेतरतीब लोट लगा रहे थे। चीकट तकियों और मैले कालीन वाले तख्त से हटकर कोने में कंडे की आग की बरोसी जल रही थी, जिसमें सुतली की गुलझट की तरह धुआँ उठ रहा था। सामने चबूतरे पर नीम के पेड़ के नीचे एक किसान जमीन पर बैठा था। महेन्द्रसिंह साठ के आसपास, छरहरे बदन और सांवले रंग का व्यक्ति था। आँखें बड़ी-बड़ी, नीरस, क्रूरता और शरारत से भरी। खिचड़ी घनी मूँछें, दोनों कोनों पर मोम लगाकर छल्ले की तरह तनी हुई। नाक लम्बी, नथुने चौड़े, दाढ़ी साफ, मलमल का हल्का सफेद कुरता, लट्ठे का तहमद। कुरसी के हत्थे पर दोनों पैर एक-दूसरे पर जुड़े थे, जिनसे मोटी-मोटी शिराएँ उभर रही थीं। उँगलियों में सात धात की एक अँगूठी थी और पुरानी ठकुरई की ठसक से गर्वीला मुख। दालान काफी लम्बा-चौड़ा और पीली मिट्टी से पुता हुआ था। महेन्द्रसिंह 'ठाकुर' के बजाय कुंवर कहलाना पसन्द करता था। कट्टर काठी की तरह कठोर और अभिमान में वंश-गौरव का पुजारी। जमींदारी जाने से पहले उसने बहुत हाथ-पैर मारे। वह उत्तर प्रदेश जमींदारी ऐसोसिएशन का मैम्बर बना। इसके लिए वह कई बार लखनऊ, इलाहाबाद का चक्कर लगा आया था। वह मानता था कि यदि जमींदारी की रक्षा के लिए सरकार से कानून की लड़ाई में हार जाय तो हथियारों से मुकाबला किया जाय। बल्कि पहले उसका यही रुख था। अँग्रेजों के जाते-जाते छोटे-छोटे जागीरदारों को उसने समझाया कि सब मिलकर उत्तर प्रदेश को बाँट लें और बाकायदा फौजें रखकर अपने-अपने राज कायम कर लें। काबुल के बच्चा-सक्का की तरह वह भी लोगों को दिखा देना चाहता था कि मौका मिलने पर सारे देश पर न सही कुछ हिस्से पर

हुकूमत कर सकता है। उसे गर्व था कि उसके पुरखे राजा थे। कहाँ के राजा थे, वह जगह उसे ठीक-ठीक याद नहीं थी, लेकिन थे कहीं के बड़े राजा। यह सब उसने अपने बाप कुंवर नरेन्द्रसिंह से सुन रखा था।

नरेन्द्रसिंह फितना आदमी था। मुकदमा करने और कानूनी दाव-पेंच समझने में वह बड़े-बड़े वकीलों के कान काटता था। एक बार बीमार होने पर मसूरी के नीचे राजपुर के एक मकान में रहा तो उसी पर कब्जा कर लिया और मुकदमा करके जीत भी लिया। वह अक्सर दूसरों के मुकदमे लेकर लड़ता और मुकदमा जीत जाता। दीवानी और फौजदारी दोनों ही के आइन उसे हिफ्ज़ याद थे। एक बार एक ठाकुर की शादीशुदा औरत को भगा लाया और कानून से उसे अपना बना लिया। लड़ाई-झगड़े, मार-पीट के लिए चालीस-पचास जवान हर समय तैयार रहते। हर पन्द्रहवें दिन कुश्तियाँ होतीं। गदका, फरी, पटेबाजी, मलखंब और लड़ने के नये-नये दाव-पेंच ईजाद किये जाते। शिकार खेला जाता। हाकिम-हुक्कामों को दावतें दी जातीं। किसीकी खूब-सूरत बहू-बेटी को उड़वा लेना उसके बाएं हाथ का खेल था। सबके जानते हुए भी शराब उसके घर बनती। नाचने-गाने के लिए दूर-दूर से रंडियाँ आतीं।

महेन्द्रसिंह उसी नरेन्द्रसिंह का बेटा था। आन-अकड़ का धनी। बाप ने मुकदमों में बहुत-कुछ फूँक दिया था। जो-कुछ बचा उसे बेटे ने उड़ाया। जवानी में ऐयाशी की, चोरियाँ कराईं, लोगों को पिट-वाया। वह मानता था, जमींदारी के लिए रौब रखना जरूरी है। 'रौब' ईश्वर की दी हुई वस्तु है, जो हकूमत करने वालों को ही मिलती है। प्रजा मादा (स्त्री) है और हकूमत करने वाला 'नर'। जैसे औरत आदमी को हर तरह खुश रखने के लिए बनाई गई है, वैसे ही शासक को खुश रखना प्रजा का काम है। यह फारमूला वह अपने काश्तकारों पर लागू करता था। महेन्द्रसिंह ने जवानी में बाप की तरह दूर-दूर से औरतों को भगाकर अपना हरम नहीं भरा। इसे वह पैसे की

बरबादी मानता था। किन्तु कोई यह न समझ ले कि वह बाप की लकीर पर नहीं चल रहा है, इसलिए कोरिन, काछिनें, भंगिनें उसकी ऐयाशी की सीमा में आ गई थीं। हिन्दी मिडिल तक पहुँचते-पहुँचते उसने मास्टरों को कम्बल डलवाकर पिटवाया। उनके घरों से जानवर निकलवाकर बिकवा दिए और मित्रों सहित गुलछर्रे उड़ाए। और भी ऐसे बहादुरी के काम जवानी में प्रवेश करते-करते महेन्द्रसिंह ने कर डाले। जब एक दिन एक औरत के झमेले में घोड़ी पर चढ़कर शहर जाते हुए उसके पिता को दुश्मनों ने मार डाला तो पिता की गद्दी बेटे को मिली। उसने निश्चय किया कि ऐयाशी वह सहजसाध्य ही करेगा। शराब उसके यहाँ अभी पिछले दिनों तक बनती आई है। महेन्द्रसिंह ने नियम बनाया कि बाप की तरह बहुत से आदमियों को पालने की जरूरत नहीं है। फिर भी कुछ लोगों को अपनी ओर बनाए रखना जरूरी है। इसलिए पिता की शराब बनाने की परम्परा को कायम रखते हुए जब-तब शराब के घड़े लोगों के घर भिजवाना शुरू कर दिया। तीज-त्यौहार पर सूअर, हिरन, तीतर, बटेर और बकरे का मांस बाँटा जाता। इस तरह गढ़ी के सभी ठाकुर उसका दबदबा मानने लगे। काश्तकारों को हिदायत थी कि बारी-बारी से उसके दरवाजे पर बिना काम के भी आकर बैठा करें। फसल के साथ-साथ शादी, गौने और त्यौहारों पर नजराना पेश किया करें। गाय-भैंस के ब्याने पर पाँच दिन के बाद से दस दिन तक आधा दूध कुंवर साहब के घर भेजा जाया करे। इसके बदले में कुंवर साहब की तरफ से साल में एक बार होली के मौके पर सारे काश्तकारों और दीगर रिआया को दावत दी जाती, शराब बँटती, नाच-गाने और मुजरे का इन्तजाम होता, जिसमें उनकी स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल होते। यह राग-रंग तीन दिन तक चलता और कुंवर साहब तख्त पर मसनद लगाए अकड़ के साथ हुक्का पीते और लोगों को होली खेलते, रंग मलते, गाते-बजाते देखते। रिआया के लोग उनके हाथ पर गुलाल मल सकते थे। फिर झुक-

कर सलाम करते, जुहार करते, लौट जाते। साथ ही उस समय कोई नजराना पेश करना जरूरी था। अच्छे काश्तकार एक रुपया, मामूली आठ आना नजराना देते। इस तरह दो-ढाई हजार रुपया होली के मौके पर इकट्ठा हो जाता। सबके खाने, नाच-रंग में डेढ़ हजार के करीब खर्च होता। दावत में दो तरह की पूड़ियाँ बनतीं। मामूली जाति के लोगों को तेल की पूरी, घिया या काशीफल का साग, मठे का रायता और तेल का बना सस्ता गोश्त; दूसरे लोगों को यही सामान घी का मिलता। शराब और भंग सबको एकसी। गुलाल-अबीर लोग अपना लाते। बड़ी-बड़ी नादों में टेसू के फूल भिगो दिए जाते। हवेली में औरतों से कुंवरानी नजराना लेती।

इधर हवा के साथ जमींदारी जाने पर रिआया के जो आदमी सुबह-शाम आकर बैठा करते थे, उन्होंने धीरे-धीरे आना कम कर दिया। बुलाने पर बहाना कर देते। कुछ ने कारिंदों के सामने ही मुँह खोलकर जमींदारों की खिल्ली उड़ाना शुरू कर दिया। दस गुना लगान सरकार में जमा करने के बाद वे लोग इस इन्तजार में थे कि कब उनका सीधा सम्बन्ध सरकार से हो। इसलिए पिछली होली पर कुँवर साहब के यहाँ नाच-गाने का रंग फीका रहा। कुछ लोगों को छोड़कर रिआया में से कोई नहीं आया। नजराना तो चढ़ा ही नहीं। बुलाने पर भी लोग खाना खाने नहीं आये। हाँ, ठाकुरों का आना-जाना रहा। वे भी खा-पीकर चले गये। उस दिन कुँवर साहब तख्त पर जो विराजे तो सामने कुछ ठाकुरों के अलावा और कोई नहीं था। रिआया की तरफ पैर करके लेटने की कुँवर साहब की आदत थी। अब सामने ठाकुरों को देखकर उन्हें रवैया बदलना पड़ा। विक्रमसिंह, लोटनसिंह, गजाधरसिंह आदि जो बाहर दालान में आये तो उनके सिरहाने कुरसियाँ और मूढ़े खींचकर बैठ गए। कुछ उनके मुकाबले में तख्त पर जा विराजे।

महेन्द्रसिंह पहले केवल मुस्कराकर, कभी किसीसे दो-एक बातें करके अपने गौरव की रक्षा करता था। इस बार वह भी न हुआ। गाने-

बजाने वाले किसानों की चौपइयाँ उधर आई ही नहीं। केवल गाँव के कुछ ब्राह्मण, ठाकुर, बनियों की मंडली भंग में मस्त गाती-बजाती आई तो कुँवर साहब को उठना पड़ा। विवशता में लोगों से गले मिले। उसे महसूस हुआ कि अब वह और कुछ न रहकर एक साधारण व्यक्ति बन गया है। जमींदार ऐसोसियेशन के बहुत हाथ-पैर मारने पर भी जब कुछ न बना तो वह और निराश हो गया। फिर भी वह झुकने को तैयार नहीं था। उसे लग रहा था जैसे सारी पृथ्वी पर भूकम्प आ गया है, सब उलट-पुलट हो रहा है। कोई भी चीज अपनी जगह पर स्थिर नहीं है। जान-बूझकर सरकार जमींदारों का अपमान करने पर तुली हुई है।

और दिन, ढलती दोपहर के समय जब कुँवर साहब सोकर बाहर दालान में आते तो दस-बारह काश्तकार दिखाई देते। उनके आने पर सब अदब से खड़े होकर झुक जाते, लोगों का बोलना बन्द हो जाता। अब वह हवेली में से सोकर उठते ही बाहर आता है तो शायद ही कोई बैठा दिखाई देता है। इस समय महेन्द्रसिंह वे सब पिछली बातें सोच रहा था। अब फैले हुए पैरों के तलुए देखने वाला कोई नहीं है। हुक्का पीते-पीते उसने पैर सिकोड़ लिए और बैठ गया। 'सड़क' (हुक्के की नली) हाथ में लिये बैठा सामने देखता रहा। गली में गांव की औरतें आ-जा रही थीं। पहले उस तरफ कोई डरते-सहमते निकलता था। सामने पशु चराने वाले लड़के एक टीले पर बैठे गा रहे थे। इसी समय एक आदमी बैलों को पानी पिलाने के लिए जैसे ही निकला तो बैलों की घंटियाँ बज उठीं, वह खुद जोर-जोर से गा रहा था। महेन्द्रसिंह को यह अपना अपमान लगा। उसके महल के सामने एक नाचीज किसान इस तरह गाता हुआ निकले। उसने पेड़ के नीचे बैठे आदमी को उसे बुला लाने का हुक्म दिया। आदमी ने लौटकर जवाब दिया—

"कुँवर साब, बो कहै है, मोय नायँ फुरसत।"

महेन्द्रसिंह ने सुना तो आग लग गई, "साले की इतनी हिम्मत!"

उसने खड़े होकर भीतर से लड़के किशनसिंह को पुकारा। एक पतला-सा लड़का हाजिर हुआ।

"देख किसना, बैलों को पानी पिलाने कौन गया है? ज़रा पकड़ तो ला साले को।"

"जी" कहकर वह लड़का चला गया।

थोड़ी देर बाद बेधड़क वह आदमी आया। बैल घर चले गए थे।

"कौन है बे तू?"

"आदमी हैं, और कौन होते?"

"कहाँ रहता है?"

"यहीं रैत हैं।"

"किसका नौकर है?"

"नौकर काऊ के नायें। अपनी बहन के घर आये हैं।"

"तू जानता है यह आम रास्ता नहीं है, यहाँ कुँवर महेन्द्रसिंह रहते हैं।"

"रैत हुंगे, हम का जानें?"

"लेकिन यह हमारी जमीन है।" आगन्तुक चुप था।

"क्या कहता है?" महेन्द्रसिंह ने कड़ककर कहा। किशनसिंह बोला, "माफी माँग ले। कह दे, माफ करो हजूर!" "माफी क्यों माँगि लें, हमने कोई चोरी करी है, डाकौ डारौ है, काये बात की माफी?" उस आदमी ने उजड्डपन से जवाब दिया।

"मार साले को, बकता ही जाता है।" महेन्द्रसिंह ने कड़ककर कहा।

वह भी तनकर खड़ा हो गया और बोला—

"गारी मति दीजौ ठाकुर, मैऊँ सौ बीघा कौ किसान हूँ।" इसी बीच नौकर ने दो झापड़ जमा दिए, किशनसिंह ने धक्का दे दिया। वह उलटा जा गिरा, फिर सँभलकर दोनों पर पल पड़ा। बैलों क संटी से उसने दोनों को पीट डाला। नौकर मार खाकर पीछे हट गया। किशनसिंह को चक्कर आ गया। वह दूर खड़ा होकर गाली देने

लगा। महेन्द्रसिंह ने पैर की एक खड़ाऊँ फेंककर मारी, फिर दूसरी, और नीचे उतरा। खड़ाऊँ वह बचा गया। हेकड़ जवान, सीधा-सादा आदमी, वह समझ नहीं सका कि उसने क्या अपराध किया है। उसे गुस्सा आ गया और महेन्द्रसिंह पर टूट पड़ा। महेन्द्रसिंह नीचे पड़ा-पड़ा पिट रहा था। चिल्लाहट सुनकर पास-पड़ोस के आदमी इकट्ठे हो गए, देखा ठाकुर गाली देते अपनी देह की धूल झाड़ रहे हैं। यह आज पहला मौका था कि महेन्द्रसिंह पर किसीने हाथ उठाया हो, इस तरह किसीने उसे पीटा हो। महेन्द्रसिंह चिल्लाकर गाली देता, ईंट, पत्थर जो सामने पड़ा मार रहा था। लोगों ने बीच-बचाव किया। एक ने उस नौजवान को वहां से हटा दिया, पर किसीने भी ऐसा न किया कि ठाकुर की ओर से उस पर टूट पड़ता। दो-एक पत्थर उसके लग गए थे। माथे से खून बह रहा था। वह चला गया। ठाकुर अब भी गाली दे रहा था। मोहल्ले वाले चुप थे। ये मोहल्ले के वे लोग थे जिनका, ठाकुर के रिश्तेदार, पड़ोसी होते हुए भी किसी-न-किसी बात पर झगड़ा हो चुका था। बाहर से सहानुभूति दिखाते हुए भी भीतर से खुश थे। महेन्द्रसिंह अब भी अपने कपड़ों की धूल झाड़ रहा था। सिर धूल से भर गया था। थोड़ी देर बाद लोग अपने-अपने घरों को लौट गये। सारे गाँव में आँधी की तरह यह बात फैल गई कि बाहर के एक आदमी ने महेन्द्रसिंह को उसके घर पर पीट दिया। किसानों ने सुना तो वे खुश हुए। ठाकुरों में रोष भरा। चमार-लोधों ने खुशी मनाई। उसके बाद बहुत दिन तक उस दालान में बैठे महेन्द्रसिंह को किसीने न देखा। दो-एक दिन के बाद उसके बड़े लड़के ने बाहर से आकर जो सुना तो बड़ा भन्नाया। पड़ोसियों को धिक्कारा, क्षत्रिय होने की अपील की, पर किसी ने इस मामले में साथ नहीं दिया। वह किसान, जिसने महेन्द्रसिंह को पीटा था, अहीर था। गांव में अहीर और लोधे सम्पन्न हो रहे थे। उनमें पहले की अपेक्षा खुशहाली आ रही थी। एका भी था। अहीर और लोधों ने उसे अपनी इज्जत का सवाल बना

दिया। वैसे वे लड़ने को भी तैयार थे, इसलिए बात दब गई। महेन्द्र-सिंह के मन पर सदमा बैठ गया। अपमान और लांछन से वह भीतर-ही-भीतर घुलकर बीमार पड़ गया।

जमींदारी जाने के बाद यह पहली दुर्घटना थी। लोगों के कान खड़े हो गए। (गरीबों के हौसले बढ़े, दबे हुए उठे। अत्याचार का प्रतिरोध करने की शक्ति का लोगों में अंकुर फूटा। महीनों इस बात की चर्चा गाँव में होती रही।)

एक दिन मंगनीराम बोहरे की औरत ने मेहतरानी को डाँटा और गालियाँ दीं तो कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोली—

"देखो जी, काम करतें, पैसा लेतें, तुमाओ ऐसान नायें। खुसी होय, सौ बेर गरज परै तौ काम कराऔ चाहे मति कराऔ। हम चले।"

"रोटी लग गई हैं इन नीचन कूँ।" बोहरे की औरत ने हाथ बढ़ा-बढ़ाकर गाली देते हुए कहा, तो बड़बड़ाती जमादारिन कूड़े का ढेर छोड़कर चली गई और कह गई, "नीच होंगे तुम, जो मुफत को ब्याज खातें, और भीख माँगतें, हम नायें अब नीच।"

यह पहला अवसर था कि एक भंगिन ने मुँह खोलकर किसीको जवाब दिया हो। उसका प्रभाव यह हुआ कि भंगिन सात-आठ दिन तक उधर झाँकी भी नहीं। जब खुद मंगनीराम बोहरे ने भंगियों के मोहल्ले में जाकर कहा तो वह बाहर एक पेड़ के नीचे बैठी सूअर चरा रही थी। उसने जवाब दिया, "जब तलक हमारी कमेटी नायें कहैगी, मैं नायें आऊँगी।"

"कैसी कमेटी ?"

"भंगी की कमेटी।"

उसी समय भीतर से उसका पति निकल आया। उसने मंगनीराम को देखकर कहा—

"लाला, जि अब नायें आवैगी, जाओ।"

"क्यों ?"

"अब हम गारी नायँ खांगे, हमारिऊ इज्जति है।"

'इज्जत' शब्द ने मंगनी को चौंका दिया। उसके घर के आगे कूड़े का ढेर पड़ा था, पाखाना सड़ रहा था। बदबू से मोहल्ले में निकलना मुश्किल हो रहा था। वैसे तो गाँव के लोग अक्सर बाहर ही शौच के लिए जाते थे, पर ऊँचे समझे जाने वाले लोगों की स्त्रियाँ और बच्चे घर में ही जाते थे। अब वह इतने दिनों में सफाई की उपयोगिता को समझ चुका था। नरम पड़कर बोला—

"पहले भी तो तुम काम करते थे, आज ही क्या हो गया ?"

"पहले की बात पहलें गई। अब जि नायँ होइगी साब तुमारे की, कैं हमारी बइयरबानिन कूँ कोऊ कछु बोलि जाय। अब हमेंऊ गांधी ने खड़ो करि दयौ है। हमारेऊ बोट हैं।"

मंगनीराम ने सुना तो थोड़ी देर के लिए सन्न रह गया। अब से पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था कि कोई आदमी भंगियों के मोहल्ले में झाँका भी हो। भंगी घरों से निकल आये। बच्चों के लिए यह एक तमाशा था। जवान गर्व का अनुभव कर रहे थे। औरतों ने यह अपनी जीत समझी। अन्त में एक बूढ़े भंगी के कहने पर जमादारिन ने आना मंजूर किया। गाँव के सभी भंगियों ने अपने काम का महीना बाँध देने पर जोर दिया। अब तक उन्हें एक रोटी, तीज-त्योहार पर पकवान, कभी-कभी कोई फटा-पुराना कपड़ा और फसल पर पाँच सेर अनाज या एक-दो रुपया मिलता था। एक औरत के अड़ जाने ने किनारे से आ टकराई लहर के छपाके की तरह गाँव के ऊँचे वर्ग के मन को झंझोड़ डाला। लोग सोचने को मजबूर हो गए। उसके दूसरे दिन बाजार में बहुत देर तक यही चर्चा चलती रही। कोई गांधीजी को गाली देता, कोई स्वराज को कोसता, कोई नेहरू की गलती बताता। कोई-कोई अपनी कमजोरियों का उलाहना ले बैठे। एक ने सलाह दी "बामन, ठाकुर, बनियों की सभा होनी चाहिए।" दूसरे ने कहा, "जहाँ भंगियों के सूअर चरते हैं वह जमीन ठाकुर-ब्राह्मणों की है। यदि

उनका चरना रोक दिया जाय तो दो दिन में होश ठिकाने आ सकते हैं।" तीसरे ने समर्थन करते हुए कहना शुरू किया, "अरे, दूर क्यों जाते हो ? जहाँ भंगी लोगों के झोंपड़े हैं, अगर उन्हें वहाँ से उठा दिया जाय तब देखो ज़रा-सी देर में गिड़गिड़ाने न लगें तो कहना !"

पंडित गंगाधर दोपहर को गंगास्नान से लौट रहे थे। बातें सुनकर खड़े हो गए। एक ने टोककर सलाह माँगी तो रुककर कहने लगे, "भाइयो, न इसमें गांधीजी का दोष है न नेहरू का। यह तो समय का प्रभाव है। अब तक हमने सचमुच इनके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया है कि इनको आदमी नहीं समझा, यह उसीकी प्रतिक्रिया है। स्वराज ने सबको बराबर बना दिया है, सबको नागरिकता के पूरे अधिकार दे दिए हैं, तो फिर यह कैसे हो सकता है कि दबे हुए लोग दबे ही रहें ? जरूरत इस बात की है कि हम लोग चेतें और उनको उनके अधिकार दे दें। वे भी तो मनुष्य हैं। अगर हमारी इज्जत है तो उनकी भी इज्जत है। हम उन्हें अधिकार खुशी से नहीं देंगे तो वे छीनकर ले लेंगे, उस समय कटुता बढ़ेगी। हारना उन्हें अवश्य पड़ेगा जो दूसरों का अधिकार दबा बैठे हैं।")

गंगाधर की बात उन लोगों की समझ में नहीं आई। लोगों ने टीका-टिप्पणी की। एक बोला, "पंडित सठियाइ गए हैं।"

दूसरे ने तमाखू की पीक थूककर कहा, "अपनौई दाम खाटौ है तो परखिवेवारे कौ का दोष है ? देखौ न, ब्राह्मण हैकेंऊ इनन्ने चमार-भंगिन कौ पक्ष लीन्हो। पूछो इन पंडित सूँ, तुम का भंगिन कौ खातौ, जो ऐसी बातें करौ हो ?"

एक ने मजाक में कह दिया, "तुम्हें का मालुम, खातई होंगे। इनके घर की भंगिन वा चोखा की मलूक औरत है। लड़ि गई होंगी आँखें, कौन जाने ?" कुछ लोगों ने पक्ष लेकर गंगाधर पंडित की निष्पक्षता सिद्ध की। बोले, "भजनानन्दी आदमी है, काए कूँ बदनाम करतौ ?"

"अंगरेजी पढ़ौ भयौ है।"

"जाई मारें भंगिन को पक्ष लेतुए पंडित।"

"सच्ची पूछौ तो धरम-करम के नासकर्ता जि अंगरेजी बारे हैं। न जे भंगी देखतें न चमार। होटल मेंउ तो भंगी-चमार खानों परसतें।" बात अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजों तक जा पहुंची। थोड़ी देर में हा-हा, हू-हू होने लगी। धार में पत्थर गिरा, डूब गया। पानी फिर एकाकार होकर बहने लगा।

ब्राह्मणों, ठाकुरों और वैश्यों के लड़के बाहर से पढ़कर आते और बातें करते तो लोग उन्हें धर्मभ्रष्ट, पतित समझते। लेकिन नौकरियों के लिए उन्हें पढ़ाना भीतर-ही-भीतर आवश्यक भी समझते। मन-ही-मन अकेले में पूछने पर मानते भी, पर संस्कारों के कारण बीच बाजार में सबके सामने कहने पर पुरानी बातें दुहराते। लोग अब भी उसी ढर्रे पर चल रहे थे। अब भी हर शाम दुकानों पर भांग छनती। ब्राह्मण, यात्रियों की फिक्र में रहते। भोजन, दान-दक्षिणा के लिए आपस में जूझते, एक-दूसरे की निन्दा करते। वे शिला के उस पत्थर की तरह थे, जिसमें भीतर-ही-भीतर असंख्य दरारें हों और बाहर से जुड़ा दिखाई देता हो। गंगास्नान के लिए यात्रियों का आते रहना उन्हें आगे कुछ भी सोचने नहीं देता था। ऐसा नहीं है कि वे सम्पन्न हों, उनके घर अच्छे हों, रहन-सहन अच्छा हो, खाना-पीना, कपड़ा सुविधा से मिलता हो। वे गरीब थे, फिर भी उन्हें अपने को बदलने की जरूरत महसूस नहीं होती थी।

महेन्द्रसिंह के ऊपर उस दुर्घटना की भयंकर प्रतिक्रिया हुई। वह बैठे-बैठे चौंक पड़ता और चिल्लाने लगता, "मारो साले को, मारो, भाग न जाय।" जैसे कोई सपना देख रहा हो। खाट पर पड़ा छत की ओर ताका करता। हुक्का पीते-पीते नली लेकर दौड़ पड़ता। इससे हुक्का खिंचकर टूट जाता। बैठक में उसके पिता का एक चित्र टँगा था। घंटों खड़े-खड़े उसे देखा करता, फिर कुछ बड़बड़ाने लगता। रात को सोते समय पुरानी तलवार रख लेता। कभी-कभी उसकी

धार पर हाथ फेरता। इससे एक बार चीरा लग गया। सारा हाथ खून से भर गया। उसके दर्द से एक सप्ताह तक होशहवाश ठीक रहे। ठीक ढंग से बोलने भी लगा। धीरे-धीरे फिर वही हालत होने लगी। लोग मिलने-देखने आते तो कहता, "अंग्रेज बादशाह ने मुझे बुलाकर कहा है—महेन्द्रसिंह, मैं तुम्हें हिन्दुस्तान का राज देता हूँ। मैं विलायत से फौजें भेज रहा हूँ। सो अब विलायत से फौजें आ रही हैं। दिल्ली के तख्त पर अब मैं बैठूँगा।" पास बैठे एक आदमी ने पूछ लिया, "कब तक आ रही है फौजें?"

तो कहा, "बस जहाज चल दिया है।"

एक दिन बारह बजे के लगभग महेन्द्रसिंह का लड़का बाहर चबूतरे पर बैठा कुछ लोगों से बातें कर रहा था। पास में गाँव के कुछ और लोग भी थे। कटाई के दिन थे। दुर्लभसिंह, कटाई के लिए काम करने वालों में किसको बुलाया जाय और किसको नहीं, यही सब पूछताछ कर रहा था कि अचानक महेन्द्रसिंह पुरानी अचकन, जरीदार चोगा, रेशमी साफा, चूड़ीदार पाजामा, जरी का जूता और कमर में तलवार लटकाये आ धमका। दुर्लभ ने इस वेश में बाप को देखा तो खड़ा हो गया। और लोग भी भौंचक्के-से देखने लगे। आते ही दुर्लभ से कहा, "मेरा घोड़ा तैयार नहीं हुआ, कहाँ है बदतमीज साईस? फाँसी दे दूँगा साले को, बुलाओ उसे।"

लड़के ने पूछा, "क्या बात है?"

"तुम्हें मालूम नहीं, मुझे अभी जाना है। तख्त खाली पड़ा है।"

"कैसा तख्त?"

"सिंहासन, सिंहासन, और क्या? न कुछ जानता है और न कुछ समझता है।"

इसके साथ महेन्द्रसिंह चहलकदमी करने लगा। "एक, दो, तीन, एक, दो, तीन" कहता घूमने लगा। दनादन ऑर्डर दिये जा रहे थे। चाल तेज हो रही थी। दुर्लभसिंह हैरान था। लोग तमाशा देख रहे थे।

गली-मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। दुर्लभसिंह जैसे ही उसे भीतर ले जाने की कोशिश करता, वैसे ही तलवार खींचकर उसको डाँट देता।

महेन्द्रसिंह का यह क्रम काफी देर तक चलता रहा। जिसकी तरफ निगाह पड़ जाती, उसी से कहता, "महेन्द्रसिंह दिल्ली का बादशाह होने जा रहा है, क्या देखते हो? जाओ, अपना काम करो, नहीं तो गोली मार दूँगा।" आध घंटे के भीतर सारा गाँव तमाशाई बनकर इकट्ठा हो गया। महेन्द्रसिंह की अब भी वही रफ्तार थी। कभी चाल तेज हो जाती, कभी धीमी। जो भी उसे रोकता उसी पर टूट पड़ता। अपने-आप हँसता, चिल्लाता और हुक्म देता। आखिर कुछ लोग महेन्द्रसिंह को जबर्दस्ती पकड़कर अन्दर ले गए, जाकर खाट पर लिटा दिया।

सारे गाँव में यह बात फैल गई कि महेन्द्रसिंह पागल हो गया है, ठाकुरों का सामन्ती दीया धीरे-धीरे बुझा जा रहा है।

विक्रमसिंह के बहुत हाय-हाय करने पर भी माता के मन्दिर की आमदनी के लिए ठाकुर इकट्ठे न हुए। बहुत पुरानी चली आई प्रथा के खिलाफ कौन बोलता! फिर अगर ठाकुर लोग पंडों को हटाकर खुद पुजारी बन जाते तो मानता मानने वालों पर उसका क्या असर होता, यह कोई नहीं कह सकता था। हो सकता है, एक भी यात्री उधर न झाँकता या आता भी तो उतना चढ़ावा न चढ़ाता। एक बार विक्रमसिंह को ठाकुरों को उकसाने में सफलता मिली, तो ठाकुरों ने ही इसका विरोध किया। एक बूढ़े ठाकुर बोले—

"विकरमा सारे कौ दिमाग खराब है गयौ है। भला कऊँ राज करन बारे ठाकुरऊ बामनन कौ काम कर सकें हैं! बामन, बामन ही रहेंगे, ठाकुर, ठाकुर। गधा घोड़ा नायँ है सकें हैं। घोड़ा गधा बनें जि नामुमकिन है। जाऔ, काम करौ, जो कछु जमीन है वाय जोतौ। सिकार करौ और नायँ होय तुमपै तौ डाकौ डारौ।"

विक्रम बोला, "पर बाबा, हमारौऊ तौ हक है, अपनौ हक हम क्यों छोड़ें ?" बूढ़े ने जोर से हुक्के का कश खींचा और थोड़ी देर तक खाँसने के बाद जवाब दिया, "हक्कु-हक्कु चिल्लावे हैं, है का तेरौ, लट्ठ के जोर सूँ पुरखान ने हक्कु लै लयौ तौ का तेरौ हक्कु है गयौ ? तू जायि कें भीख माँगि। हम पै नायँ होयगौ जि काम। सिंह मांस न मिलिवे पैऊ घास नायँ खात।"

और बैठे लोगों ने बूढ़े ठाकुर की बात का समर्थन किया। विक्रम-सिंह की बात आई-गई हो गई। एक और ठाकुर मूँछों पर ताव देता बोला, "बाबा की यह बात मैं मानता हूँ। ठाकुर साला चोरी नहीं करेगा, डाका भले ही डाल ले। चोरी का काम बुज़दिली का है और तुम जानो, डाके का काम बहादुरी का। यह जमींदारी भी तो हमारे पुरखों की कमाई है। जिस जमीन पर कब्जा कर लिया वह उनकी और उनके बाप की हो गई। जिस गाँव की ओर नजर फिर गई उसी के मालिक हो गए। चाहे कुछ हो जाय, चाहे सुराज हो या और कोई राज, ताकतवर का जमाना सदा रहेगा।" कहते हुए ठाकुर ने नीचे गिरी मूँछों पर ताव दिया और गर्व के साथ हुक्का दूसरे के हाथ से छीन लिया। तीसरा एक लड़का पान खाता हुआ कहने लगा, "फौज का काम भी बुरा नहीं। चहिए हिम्मत। दुकानदारी हमपै नायँ होयगी। यह थैली-बट्टों का काम छत्रियों ने कभी नहीं किया। बही कभी नहीं बाँची। उन्हें नायँ मालुम, रोकड़ क्या होती है। हाँ, हम खेती कर सकें हैं।"

दूसरे ने उसकी बात काटते हुए कहा, "खेती भी छत्री नहीं कर सकते। हल चलाते भी अच्छे नहीं लगते। जि काम नीच जाति कौ है।"

उस बैठक में काफी देर तक गुल-गपाड़ा मचता रहा। सभी अपनी-अपनी हाँकते रहे। विक्रम ने तमाखू पिलाने के बहाने ठाकुरों को जो इकट्ठा किया, उसका कोई फल न निकला। सब लोग जैसे आये वैसे ही चले गये। विक्रमसिंह दरी उठाकर तह करने लगा। वह गाली देता जा

रहा था, "सारेन ने अठन्नी की तमाखू फूँकि डारी, कछु बात न बनी।"

उसका मन ब्राह्मणों के प्रति और भी कठोर हो गया। वह मन्दिर के बाहर बैठकर खुले आम ब्राह्मणों को गाली देता। लड़-झगड़कर अपने हिस्से के अलावा चढ़ावे की मिठाई, नारियल भी लाने लगा। ब्राह्मण इतने कमजोर थे कि इकट्ठे रहते हुए भी ठाकुर की ज़बान न रोक सके, जैसे सब निर्जीव हों। विक्रमसिंह जब गाली देता तो पंडे हँसकर कहते, "ठाकुर, क्यों नाराज होते हो? यह लो अपना हिस्सा और जाओ।" इस तरह सबसे पहले ठाकुरों का हिस्सा बँट जाता, लेकिन उसमें कई ठाकुर थे। जब विक्रम उनका भी हिस्सा हड़प जाता तो ब्राह्मण लोग ठाकुरों से उसकी शिकायत करते। इस पर ठाकुर लोग विक्रम को गालियाँ देते हुए अपना हिस्सा ले जाते। साथ ही विक्रम के पुरखों को भी स्तुति-पाठ से तृप्त कर देते। इस तरह रुपये के चढ़ावे में किसीको दो पैसे, किसीको एक आना और किसीको दो आने बँट जाते। विक्रमसिंह सब ठाकुरों में कमजोर और निकम्मा था। खेत जोतना अपनी शान के खिलाफ समझता था। अन्त में एक रोज दूसरे ठाकुरों के कहने पर अपने लड़के दुर्गासिंह को खेती के लिए तैयार किया। पहले ही दिन जब वह खेत से लौटा तो विक्रमसिंह बैठा कुछ लोगों के साथ हँस-हँसकर बातें कर रहा था। चिलम के धुएँ में खमीरा तमाखू की लपटें उठ रही थीं। उसका छोटा भाई भीतर से लाकर गरमागरम पकौड़ियाँ बाँट रहा था और लोग फूँक-फूँककर पकौड़ियाँ खा रहे थे। दुर्गासिंह के देखते-देखते गिलासों में चाय आई। पसीने और धूल से पस्त दुर्गा को लोगों का 'हा-हा हू-हू' पहले ही अखर रहा था। उसने कुरते से मुँह पोंछा और वहीं बैठ गया। हुक्के की तरफ हाथ बढ़ाया तो एक ने कहा, "लल्ला, इसमें तमाखू नहीं है, और भर ले।" दुर्गा ने हुक्का छोड़ दिया। इसी समय विक्रम ने पकौड़ियाँ खाते-खाते पूछा, "खेत कितना कट गया?" दुर्गा ने गमगीन आवाज़ में नीची निगाह किये

जवाब दिया, "अभई बिल्लात है," और चुप हो रहा। सब पकौड़ियाँ खाकर चाय पीने लगे। विक्रम ने दूसरे लड़के से, जो चाय लाया था, कहा, "अरे छोरा, देखि पकौड़ी और होंय तो दुर्गऊ कूँ लेआ। चायऊ देजा।" लड़के ने जवाब दिया—

"पकौड़ी अब नायें।"

"चाय ?"

"वु तौ इतनी ही।"

विक्रम ने सुना तो चुप हो गया। लड़के ने हुक्का भरा और सब बारी से पीने लगे। हा-हा, हू-हू चलती रही। दुर्गा भन्नाया हुआ भीतर गया। थोड़ी देर में ही मार-पिटाई और जोर से चिल्लाने की आवाज़ बाहर बैठे लोगों ने सुनी। विक्रम का दूसरा लड़का रो रहा था। माँ गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही थी। दुर्गा गाली देता जाता था और भाई को मारता जाता था। विक्रम ने भीतर जाकर देखा तो वह भी चिल्लाया। दुर्गा की आँखों में जैसे खून उतर रहा था। बाप ने रुकावट डालनी चाही तो वह उस पर भी टूट पड़ा। अब बाप-बेटे लड़ रहे थे। गालियों से एक-दूसरे का सत्कार हो रहा था। दुर्गा कह रहा था, "मैं दिन-भर मरूँ और सारे तुम मौज उड़ाओ।" बाप जवाब दे रहा था, "आज ही जनम-करम में खेत पर गया और आज ही सिर पर भूत सवार हो गया। ऐसी कौनसी कमाई करी है! मैंने तुझे पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया, सो कुछ नहीं। दिन-भर कलाउड्डू-सा डोलता है। मुफ्त की रोटियाँ तोड़ता है।"

"तुमन्ने पालौ तौ कोई ऐसान करौ का! तुमैंऊ तौ तुमारे बाप ने पालौ ओ, खवायौ-प्याऔ ओ। और तुमन्ने का मोय पैदा करिबे की नीयत से पैदा करोओ?" माँ ने सुना तो वह भी गाली देने लगी। भाई एक कोने में खड़ा कोस रहा था। विक्रम बिना चूके जो मुँह में आता बक रहा था। दुर्गा उसी ताल, लय और स्वर में बिना झिझक के जवाब दे रहा था। चौपाल में बैठे लोग सुन रहे थे। एकाध रिश्तेदार

भीतर गये तो दुर्गा ने उन्हें भी खूब सुनाई। माँ परदे से गाली दे रही थी। काफी देर तक कुहराम मचने के बाद विक्रम जब बाहर आया तो बैठक खाली थी। दुर्गा जैसे आया वैसे ही बाहर चला गया। न उसे किसीने रोका और न वह रुका ही।

दूसरे दिन विक्रम खुद खेत पर गया तो उसे लग रहा था जैसे वह नीच काम करने जा रहा हो। इधर धनुओं का घेर जलने पर लोधों ने चमारों के झोंपड़े जला दिए। वे बेघर हो गए। अहीर और लोधे एक हो गए। गड़रिये और चमारों ने एका करके लोधे और अहीरों का बायकाट किया। भंगियों के सूअर चराने की भूमि पर ठाकुरों ने कब्ज़ा कर लिया। कुछ दिनों तक वे काफ़ी परेशान रहे। गाँव में हर जगह फूट थी। हर वर्ग एका करके दूसरे को नीचा दिखाना चाहता था और उसका प्रभाव यह हुआ कि पंचायत में लोग जायज और नाजायज तरीके से अपनी जाति के लोगों को फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश करते। अपने लोगों की बुराइयाँ ढकते और दूसरों का परदा फाश करते। पंचायत युद्ध का मैदान बन गई थी। गाँव में एकता के सूत्र टूट रहे थे। जब एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को हानि पहुँचाते तो वे खुश होते। ब्राह्मण उसी तरह निकम्मे और बुज़दिल हो रहे थे। यदि कोई ठाकुर किसी ब्राह्मण को पीट देता तो ब्राह्मण मिलकर उसे धीरज का उपदेश देते। उनकी दृष्टि में स्वराज्य सब बुराइयों की जड़ है। ब्राह्मण धर्म-कर्म के नाश होने के कारण गांधी और नेहरू को कोसते। ठाकुर लोग जमींदारी चले जाने पर सरकार को बुरा-भला कहते। व्यापार कम हो जाने और पूरा नफ़ा न मिलने के कारण बनिये अंग्रेज़ी राज्य की तारीफ़ करते और इसकी निन्दा। लोधे और अहीर जमीनें पाकर खुश थे। लेकिन उनकी शक्ति का अपव्यय दूसरों के सिर फोड़ने और मुकदमेबाज़ी में हो रहा था।

सब वर्गों में कोई चेतना थी तो केवल अपने को बड़ा मानने में। लोधे और अहीर अपने को 'क्षत्रिय' कहलाना पसन्द करते। बढ़ई

विश्वकर्मा ब्राह्मण बनकर जनेऊ पहनने लगे थे। चमार 'जाटव' कहलाकर गर्व का अनुभव करते। एक तरह से सारे गाँव में बुराई का विष फैल गया था।

गंगाधर पंडित सबको समझाते और एक होकर उन्नति करने का उपदेश देते। सरकार की तरफ से जो पाठशाला थी उसमें अध्यापक लोग अपनी ही जाति के लड़कों को भरती करते। गंगाधर पंडित ने यह सब देखा तो अपने घर के आँगन में नीम के पेड़ के नीचे गाँव के बच्चों को बुलाकर पढ़ाना शुरू कर दिया। उसमें चमार और भंगियों के भी बच्चे थे। ठाकुरों ने जोश में आकर एक दिन गंगाधर पंडित को भी पीट दिया तो ब्राह्मण बहुत खुश हुए। फिर भी कुछ लोग गंगाधर के प्रयत्न की सराहना करते।

ललिता चमेली के घर से चला तो मंदिर के आंगन में चटाई बिछाकर लेट गया। नशे से उसका मुँह सूख रहा था। दूध वह फेंक ही आया था। हर रोज भाँग छानकर रात को डेढ़ पाव दूध पीने का उसका नियम था। आज इस दुर्घटना से वह भी न मिला। रास्ते में चलते हुए एक बार मन में आया दूध और ले ले। लेकिन चमेली के व्यवहार ने उसे विरक्त कर दिया था। ललिता को लगा ही नहीं, निश्चय हो गया कि चमेली मालदार साधु शंकरानन्द से उलझ गई है। यह एक जलन थी और ईर्ष्या भी। आज यह विचार उसके मन में पूरी तरह भड़क उठा था। अपंग ललिता के मनुष्यत्व को भाँग ने ठण्डा कर दिया था। वह मन-ही-मन गाली देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता था। जिस-तिस आदमी के सामने वह मन की भड़ाँस निकालता और चमेली के प्रति उचित-अनुचित सभी कुछ बक देता।

वह पड़ा रहा। उसे नींद नहीं आ रही थी। मन्दिर का कुत्ता पास बैठा अपने पैर के घाव चाट रहा था। कभी-कभी वह कान खड़े

करके इधर-उधर देखता और गुर्राकर चुप हो जाता। चटाई पर चींटियों के बाजार लग रहे थे। बड़े-बड़े चींटे अनाज और मिठाई के टुकड़े ढोकर ले जा रहे थे। सामने लालटेन के प्रकाश में ललिता यह सब देखता रहा। उसका मन चमेली के साथ घटी बातों को दुहरा रहा था। उसे शंकरानन्द पर गुस्सा आया और उठकर बैठ गया—तो क्या चमेली रुपये के लिए उसके पास जाती है? माँगने पर वह भी तो उसे दे सकता था। फिर उसके पास भी कम नहीं है। उसने अपने रुपये का हिसाब लगाया। सौ नक़द और पाँच-सात रुपये की खेरीज उसके पास होगी। इससे पहले दो सौ रुपया वह ठेके का, जमींदार को दे चुका है। उसे खयाल आया, इधर पिछले दिनों से उसका कुरता फट गया है। धोती में जगह-जगह छेद हो गए हैं, जूते की कई बार मरम्मत कराने पर भी वह जमीन झाँकता रहता है। न जाने क्यों, ये सब चीजें वह नई खरीदना चाहता है, लेकिन शहर की दुकानों पर पहुँचकर देखता है और टालकर चला आता है। वह समझता है, अभी उसे नये कपड़ों का क्या करना है। कुछ दिन ठहर जाय तो और बच जायगा या फिर मेला आने पर वह नये कपड़े बनवाएगा। एकदम ललिता को खयाल आया, 'मैं कितना मूर्ख हूँ! चमेली निश्चय ही मुझे फटेहाल देखकर मेरा तिरस्कार कर देती है।' उसने अपने मुँह पर हाथ फेरा तो दाढ़ी बढ़ी हुई थी। मसले तो हाथ खरखुराने लगे। उसने निश्चय किया, 'मैं सचमुच मूर्ख हूँ। क्यों मैं ठीक तरह से नहीं रहता?' उसने कुरते पर निगाह डाली तो वह मैला और फटा था। बटन टूट चुके थे। हाथ से फटी जगह के दोनों छोर मिलाए जैसे सीने जा रहा हो। वह दोनों छोरों को पकड़े बैठा रहा। फिर टूटे बटनों की जगह उन्हें उँगली से छूकर काज में पिरोता रहा।

आसमान में चाँद निकल रहा था। तारे झाँक उठे थे। सामने गंगा-प्रवाह का कलकल शब्द एक विचित्र ध्वनि पैदा कर रहा था। कभी-कभी लगता जैसे अनजान में तानपूरे के तारों पर किसी अज्ञात

शक्ति ने उंगली छुआ दी हो। गंगा का फाँट पहले से छोटा होने के कारण सामने पार की बालू-रेत दूसरी नदी की तरह चमक रही थी। झाऊ, झाड़ियों और पेड़ों के कारण वह काली कतार सफेद साड़ी पर काली गोट की तरह चमक रही थी। लेकिन हर रोज इस तरह देखते रहने पर उसे कोई आनन्द नहीं आ रहा था। निगाह उठते ही उसने मन्दिर की ओर देखा। पट बन्द थे। भीतर देवी की मूर्ति भी सो रही थी। यह खयाल भी देर तक न रहा। रह-रहकर उसके मन में चमेली का व्यवहार टोंच रहा था। उसने उठकर अलमारी से लोटा निकाला और कुएँ से पानी भरकर पिया। कुत्ता मालिक की गतिविधि देखता रहा और लौटकर चटाई पर बैठ जाने पर कुत्ते ने आँखें मीच लीं, जैसे उसे अपने मालिक की आज की हरकत अजीब-सी लग रही हो; जैसे उसे लगा हो कि मेरा मालिक आज दुखी है। कुत्ते ने पिल्ले की तरह 'कूँ-कूँ' करके ललिता की देह से अपना शरीर रगड़ा। ललिता ने झिड़क दिया तो वह दूर बैठकर उसे देखने लगा। ललिता को नींद अब भी नहीं आ रही थी। उठकर उसने आलमारी से लड्डू निकाले और खाने लगा। दो-एक टुकड़े कुत्ते को भी दिये। फिर मुँह पोंछकर बीड़ी पीने लगा। एक बार उसके मन में अपने लड़के, उसकी बहू और बच्चों का खयाल आया। इधर बहुत दिनों से न वह लड़के से बोलता है और न बहू से, न घर ही जाता है। लड़के ने एक-दो बार खाना वहीं लाने के लिए कहा तो गालियाँ देकर लौटा दिया। बहू बुलाने आई तो उसे भी डाँट दिया। किसी विचार पर उसका मन स्थिर नहीं था। वह बार-बार इधर-उधर की बात सोचकर अपना मन बहलाना चाहता है, लेकिन उसका मन कहीं अटक नहीं रहा है। एकदम उसे खयाल आया, यदि वह पिछले साल जात देने आये ब्राह्मण की लड़की से विवाह कर लेता तो कितना अच्छा होता! बैठे-बैठे उसे वे सब बातें याद आ गईं। जब एक ब्राह्मण ने वर की बात उससे की तो साथ के पुजारी ने ललिता की ओर इशारा कर दिया था। एक तरह से वह

ब्राह्मण तैयार भी हो गया था, लेकिन लड़के, बहू और उसके बच्चों के कारण शादी करने से इन्कार कर गया। बहुत दिन तक इसी आशा में ललिता बूढ़े होने पर भी छैल चिकनिया बना रहा है। उसे याद आया, उन्हीं दिनों आठवें दिन दाढ़ी बनवाने और बालों में चमेली का तेल डालने पर भी कोई बात न बनी। नये और धुले कपड़े उसने गुस्से में आकर फाड़ दिए, सिर घुटवा डाला। यही सब सोचता-सोचता ललिता चटाई पर पड़ा रहा। उसके दिमाग में चमेली चक्कर काट रही थी। मन्दिर के दूसरी तरफ टीले के नीचे खेत थे। उनमें अनाज की कटाई चल रही थी। बहुत सा अनाज मैदानों में इकट्ठा था। पूलों पर दायँ चलाई जा रही थीं। रखवाली के लिए हर दायँ के पास किसान अपनी खटिया बिछाए सो रहे थे। कभी-कभी बैलों के गलों की घंटियाँ बज उठतीं। एक-आध जगह आग भी जल रही थी। पास बैठे लोग बातें करते हुए चिलम पी रहे थे।

ललिता को नींद नहीं आई तो उधर जा खड़ा हुआ और देखने लगा। उस समय हल्की गरमी से जमीन की हवा में एक प्रकार की सोंधाहट फैल रही थी। बागों में आम के बौर की महकती हवा कभी-कभी झोंके की तरह उधर आ जाती। उसकी मादकता से उसे कुछ आराम मिला, फिर भी उसका मन नहीं लगा। लौटकर ललिता आकर चटाई पर बैठ गया। बेचैनी अब भी दूर नहीं हुई थी। सिर दर्द करने लगा। उसे लगा, आज जैसा दुख शायद उसे कभी नहीं हुआ। वह लेट गया और न जाने कब सो गया।

सेठानी ने पहले दिन ही चमेली का बनाया खाना खाया तो बोली, "खाना तो तू अच्छा बनावे है री, ला तनक दाल और दे दे।"

चमेली ने दाल दे दी और रोटी सेकने लगी। सेठानी उसका खाना बनाना देखती जाती थी। आज उसने और दिन से ज्यादा खाना खाया।

इनसे पहले रोटी बनाने वाली के साथ खाने के मामले में सदा झांय-झांय होती थी। उसने उठते-उठते कहा, "खाना ठीक है, बुरा नहीं है, पर अभी कसर है।"

चमेली ने कोई जवाब नहीं दिया। चमेली खाना परोसकर बैठी तो सेठानी उसे देखने आ गई कि उसने चटनी-अचार कितना लिया है, घी दाल में कितना डाला है ? किन्तु उसने देखा कि रूखी रोटी और दाल के अलावा और कुछ नहीं है। भीतर-ही-भीतर सन्तुष्ट होकर कहने लगी, "विधवा को अचार-मुरब्बा नहीं खाना चाहिए, ज्यादा घी भी नुकसान करे है।"

कोठार की ताली सेठानी की करधनी में लटकती रहती। उसने सब सामान कोठार में रखवाकर ताला बन्द कर दिया और निश्चिन्त-सी बरामदे में आ लेटी। नौकरानी बरतन माँजने आती तो बुहारी-झाड़ के अलावा सिर में तेल झँसती, रात को देह दबाती। मन्दिर में पुजारी सुबह-शाम आता। सेठानी दोपहर को अकेली रहती तो या तो सोती रहती या फिर इधर-उधर की औरतों को बुलाकर अपने घर के वैभव की बातें करती। चमेली के आने पर उसने कोठी के सामने का एक कमरा उसे दे दिया। वह उसी में रहती। खाट होते हुए भी चमेली जमीन पर सोती थी। एक चटाई पर दरी, चादर और तकिया, यही उसका छोटा-सा बिस्तर था। दो-चार दिन के बाद एक शाम सेठानी कोठार से एक चादर निकाल लाई और देते हुए कहने लगी, "ले कम्बल ले ले, सरदी लग जायगी।"

चमेली के मना करने पर भी ब्राह्मणों को दान में देने से बची अध-सूती चादर सेठानी उसके कमरे में डाल गई। जब एक रात आकर सेठानी ने देखा तो चादर दूर अलगनी पर टँगी हुई थी। पूछने पर बताया, "जरूरत नहीं थी सेठानी जी, गर्मियाँ तो हैं।"

सेठानी से नहीं रहा गया तो बोली, "तू कैसी बामनी है री ? और तो माँगते फिरे हैं, तू देने पर भी नहीं लेती।"

चमेली ने कोई जवाब नहीं दिया और सेठानी के आने पर वह उठकर बैठ गई। अब सेठानी कभी दो-चार आने की मिठाई मँगाकर दान करती तो चमेली को बड़ा हिस्सा मिलता। सीधा भी उसे दिया जाता। वह सब कोने में रखा रहता। मिठाई बच्चों को बाँट देती और सीधा शिवचरन ले जाता। उसका बोलना अब कम हो गया था। सेठानी से वह उतनी ही बात करती जितनी जरूरी होती। इससे कुछ दिन तक तो सेठानी को बड़ी चिढ़ हुई। उसकी इच्छा रहती कि रोटी बनाने के साथ वह मन-बहलाव भी करे, लेकिन चमेली यह काम किसी तरह भी न कर सकी। अब उसका हर काम कायदे का था। खाना अच्छा बनाती थी। स्वादिष्ट होने के कारण सेठानी ज्यादा खा जाती, जब न पचता तो चमेली से शिकायत करती। उस दिन जब दस्त लग गए और वैद्य देखने आया तो बोली, "वैद्यजी, चमेली का दोष नहीं है बिचारी का। मैं ही मरी इतनी खाऊँ हूँ।"

"तो इतना खाती क्यों हो ?"

चमेली की तरफ हँसकर देखते हुए उसने जवाब दिया, "यह खाना ही इतना अच्छा बनावे है तो मैं क्या करूँ ?"

वैद्य ने चमेली से कहा, "इन्हें थोड़ा खाना दिया करो। एक बार की बजाय दो बार में उतना खिलाओ।"

इसका यह अर्थ हुआ कि चमेली को शाम से पहले तीन-चार बजे के लगभग और कोई गरम चीज बनानी पड़ती। इससे जहाँ सेठानी का पेट ठीक हुआ, वहाँ बहुत दिनों बाद एक और तरह का जायका भी मिला। चमेली कभी मूँग के चीले, कभी मखाने या साबूदाने की खीर या मखाने घी में भूनकर दूध के साथ दे देती। सेठानी का जी खाकर गदगद हो उठता। अब सेठानी का स्वास्थ्य ठीक हो रहा था। इसी बीच उसका बड़ा लड़का एक दिन के लिए आया और चमेली के हाथ का खाना खाकर इतना खुश हुआ कि माँ से उसे आगरा ले जाने का आग्रह करने लगा।

सेठानी बोली, "यह मेरी रसोईदारिन नहीं है। इसकी दया है जो मेरा खाना बना दे है। पूरब जनम की कोई आत्मा है जो गंगा पै तप कर रही है। देखते नहीं, हर बखत ध्यान करती रहे है।" इसके साथ ही उसने तीर्थ के पण्डों और ब्राह्मणों की निन्दा करते हुए कहा, "मैंने इसे मिठाई दी, फल दिये, सीधा दिया, कम्बल दिया, पर मजाल है इसने कुछ भी छुआ हो! एक दाल से सूखी रोटी खावे है। भैया, मैं इसे आगरा नहीं भेज सकती। यह तो मेरी लड़की है। मैंने आज तक कोठार की चाबी किसीको नहीं दी, इसे दी है। यह मालिक है, चाहे स्याह करे चाहे सफेद। मेरे बार-बार कहने पै भी यह कुछ नहीं खाती। मैं तो कह-कहकर थक जाऊँ हूँ भैया!"

बुढ़िया चमेली की प्रशंसा करते गदगद हो गई। थोड़ी देर के लिए लड़का भी सोचने को मजबूर हो गया। चमेली की खूबसूरती देखकर उसका मन भी डिगा और माँ से उसे आगरा ले जाने की बात दुहराई।

बुढ़िया ने चमेली से पूछा तो उसने मना कर दिया। जाते समय वह माँ से बोला, "यह पाँच रुपये उसे दे देना।"

"वह नहीं लेगी। रसोई बनाने का भी कुछ नहीं लेती। न हो आगरा से धोती के दो जोड़े भेज देना।"

लड़का चला गया। उस दिन लगातार सेठानी अपने लड़कों-बहुओं की बात करती रही। बच्चों के नाम, शरारत, उनके खाने-पीने, खेलने का जिक्र भी न भूली। कभी-कभी याद करके उसके आँसू आ जाते। फिर अपने पति का इतिहास सुनाने लगी। उसने बताया, किस तरह मामूली मुनीमी करते उसका मालिक बड़ा आदमी बन गया; किस तरह सेठ का रुपया उड़ाकर अपना कारबार शुरू किया। मिल खोली। अपनी कहानी सुनाने के बाद चाहा कि चमेली भी आपबीती सुनाये, पर चमेली ने कोई बात नहीं की। केवल इतना बताया कि उसका ब्याह एक ऐसे आदमी से हुआ जो मुनीमी करता था।

इन दिनों अच्छा खाना मिलने से सेठानी के चेहरे पर रंग आ रहा था। वह पहले जैसी बीमार नहीं रही। खाट पर दिन-भर पड़े रहने के बजाय चलती-फिरती थी। अच्छी साड़ियाँ निकालकर पहनती। सोने की एक जड़ाऊ जंजीर गले में पहन ली। खाने पर विशेष ध्यान देने लगी। पहले सवेरे गंगा नहाकर मन्दिर में माला जपती थी, अब वह भी कम हो गया। एक दिन चमेली 'सुखसागर' से रासलीला का प्रसंग सुना रही थी तो उससे न रहा गया। अचानक कह उठी, "चमेली, तुझे क्या बताऊँ, मेरे मन में अब भी कभी-कभी उसकी याद आवे है।"

चमेली ने पढ़ना बन्द कर उसकी ओर देखा तो रस-भरी आँखों से उसकी ओर देखती बोली, "एक बार रासलीला ने तो मुझे पागल ही कर दिया था। सावन में महीने-भर मैं रास देखा करूँ थी। जो लड़का कृष्ण बनता था, वह कितना सुन्दर कि तुझसे क्या कहूँ! मैं तो उसके पीछे दीवानी हो गई।"

चमेली के जीवन में परिवर्तन हो रहा था। वह उठते-बैठते अपने को कोसती। बालकपन से लेकर अब तक जो उसने खेल खेले थे, जो आचरण किये थे, उन्हें याद करके विह्वल हो जाती। उसे लगता, इस जीवन में सिवा बुराई के उसके हाथ कुछ नहीं आया। रह-रहकर उसे औघड़ बाबा का खयाल आता, जिन्होंने उसके जीवन की दिशा बदल दी थी। वह अब भी उनका चित्र मन में बनाकर पूजा करती। शान्ति पाने के लिए उनसे प्रार्थना करती। जितनी देर तक उसका औघड़ बाबा के ध्यान में मन लगता, उतनी देर तक वह पाती कि उसकी अन्तरात्मा के पट जैसे खुल गए हों। वह हर्ष और आनन्द से गदगद हो उठती। उसे लगता जैसे उनका दयामय हाथ उसके सिर पर है, जो अनन्त शक्ति का वरदान दे रहा है।

चमेली के मानसिक विकार धीरे-धीरे दूर हो रहे थे। वह प्रायश्चित की आग में तप रही थी। सोचते ही बाबा की मूर्ति उसके

सामने आ खड़ी होती। वह बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी। संस्कार भी उसके ऐसे नहीं थे। फिर भी उसे लगता कि बाबा उसके हृदय में सदा के लिए विराजमान हो गए हैं। जीवन में आकर्षण सदा आन्तरिक होता है। जैसे बिजली के दो विरोधी तार छू जाने पर 'विद्युत् करेण्ट' प्रवाहित होने लगती है, वैसे ही बाबा की मूर्ति उसके संस्कारी मन में निरन्तर एक प्रभाव छोड़ती जा रही थी। चमेली का विपाक्त मन आकण्ठ विरक्ति में डूब गया। बाबा में उसे कोई अज्ञात शक्ति दिखाई देने लगी। कभी-कभी बाबा की लीला में वह आनन्द का अनुभव करती। उसे याद आता, शरीर से बेसुध बाबा को एक बार उसने खाना दिया, तो देखा कुत्ते भी उनके साथ खा रहे हैं। हृष्ट-पुष्ट, गौर शरीर, देह में एकमात्र लंगोटी; सरदी, गरमी, वर्षा में वे सदा एक-से रहने वाले थे।

यही सब वह अपने कमरे में बैठी सोचा करती। अब चमेली से मिलने बहुत कम लोग आ पाते थे। चाहने पर भी ललिता प्रसाद की हिम्मत नहीं होती थी। शिवचरन कभी आता तो वह उसे सेठानी से मिली मिठाई, सीधा आदि दे देती। वैसे भी शिवचरन सीधा आदमी था। अब वह उसकी प्रशंसा करते नहीं अघाता था।

शंकरानन्द के आश्रम में जिस सेठ ने कमरे बनवा दिए थे, उसने नाराज़ होकर अब उस पर मुकदमा दायर कर दिया था और सिद्ध किया था कि वह बदमाश साधु है, उसका परिवार है आदि-आदि। तीन में से दो चेले ठीक समय पर रुपया न पाने के कारण उसे छोड़कर चल दिए थे।

इन्हीं दिनों एक शाम गंगाधर पंडित घूमते-घामते सेठानी के मकान से होकर गंगा-किनारे आ बैठे। बहुत देर के बाद जब लौटने लगे तो सेठानी ने टोककर कहा, "कुछ हमें भी सुनाया करो पंडितजी !"

"क्या ?"

"यही कुछ कथा-वार्ता," सेठानी ने खाट पर बैठे पंखा करते हुए

कहा।

"मैं कोई कथा-वाचक तो हूँ नहीं सेठानी! अपने ढंग से काम करता हूँ।"

"ईश्वर को तो मानते होगे; कथा-भागवत तो पढ़ते होगे, वही। सुना है, तुम बड़े खरे आदमी हो।"

"तुम्हारी केवल आखिरी बात ही ठीक है सेठानी! खरा जरूर हूँ लेकिन कड़वा हूँ। कोई मेरा दोष मेरे मुँह पर कहे तो मान जाऊँगा। पीठ-पीछे कहने वाले को मैं कायर समझता हूँ। दुनिया में मुँह-देखी कहने वाले बहुत हैं। मुझे उनसे घृणा है।" गंगाधर पंडित ने अपने उसी लहजे में कहा जिसमें वे अक्सर बात किया करते हैं। कुछ देर ठहरकर बोले, "बात यह है, मैं विचित्र आदमी हूँ। मैं मानता हूँ, आदमी पूजा-पाठ चाहे करे चाहे न करे और किसीका उपकार उससे न हो तो वह भी न करे, पर अपना आचरण शुद्ध और मन निष्कपट रखे। दूसरे की भलाई जितनी हो सके करे, उसका बिगाड़ न करे। मैं झूठ, छल, कपट, चोरी को मनुष्य की बीमारी मानता हूँ। यह क्या, कि तुम दिन-भर कथा सुनते रहो और दूसरी तरफ लोगों को पीड़ा पहुँचाकर उनका खून चूसते रहो। संसार में बहुत सा दुख हमारा अपना पैदा किया हुआ है। मैं आदमियों के ईमानदार और सच्चे होने में विश्वास करता हूँ सेठानी! वैसे मैं मानता हूँ, मन को शुद्ध रखने के लिए अच्छी पुस्तकें पढ़ते रहना चाहिए, भले आदमियों का सत्संग करना चाहिए। यही कथा-वार्ता है, समझीं।"

पंडितजी की बहुत सी बातें सेठानी की समझ में नहीं आईं। न वह ईमानदारी की बात समझ सकी, न दुख अपने-आप पैदा करने की। वह उनमें से थी जो समझते हैं कि कथा सुनने-भर से पुण्य मिलता है। करने-कराने की कुछ जरूरत नहीं। हाँ, बेईमानी या ईमानदारी से धन कमाओ और थोड़ा-सा ब्राह्मणों में बाँट दो, उन्हें खिला दो, पुण्य होगा। पंडित गंगाधर की तरफ उसने उपेक्षा से देखा। उसे आश्चर्य हुआ, यह

आदमी कैसी बात कर रहा है ? वहीं चमेली कुशा के आसन पर बैठी थी, बोली, "पंडितजी, ईमानदार कैसे बना जाता है ?"

गंगाधर ने उधर उपेक्षा से देखा। वे चमेली को जानते थे। उन्होंने यह भी सुन रखा था कि यह स्त्री न जाने कहाँ-कहाँ मारी-मारी फिरती रही है। उन्हें यह भी मालूम हो गया था कि अब यह एक नया रंग पकड़ रही है। वह समझ चुके थे, उसका यह रूप बनावटी है, दुनिया को धोखा देने का एक स्वाँग है। फिर भी चमेली से वे इस प्रश्न की आशा नहीं रखते थे। यह उनका प्रिय प्रश्न था। उनके मन में एक बार आया टाल जायँ, पर न जाने क्या सोचकर उन्होंने कहा, "ईमानदार बनने का अर्थ है मन, वाणी, कर्म से एक होना, समझी ! तू क्या समझेगी ?" और हँसने लगे।

चमेली चुप रही। गंगाधर वहीं चटाई पर बैठ गए और जेब से बटुआ निकालकर तमाखू बनाने लगे। घुटे हुए सिर पर बेतरतीब चोटी फहरा रही थी। शरीर से वृद्ध और मूँछों से घना चेहरा, स्पष्टवादिता की झलक, भौंहें गहरी, आँखों पर चश्मा मोटे काले फ्रेम का। वह सुपारी काटने लगे। चमेली ने बैठे-बैठे पूछा, "मन, वाणी, कर्म से एक कैसे हुआ जाता है पंडितजी ?"

गंगाधर पंडित सुपारी में चूना, तमाखू मिलाकर मसलते बोले, "यह बड़ा गम्भीर प्रश्न है, चमेली ! तेरे लिए तो यही ठीक है कि सेठानी की रोटी बना और भजन कर।" चमेली के ऊपर स्पष्ट यह एक व्यंग्य था। और कोई समय होता तो न जाने वह क्या उत्तर देती। उसके शान्त मन में ज़रा भी विकार न आया, और भी नरमी से उसने कहा, "महाराज, सेठानी की रोटी तो शरीर के निर्वाह के लिए बनाती हूँ। मुझे अब घाट पर बैठकर भीख माँगना अच्छा नहीं लगता। चाहती हूँ, आप जैसे महा-पुरुषों से मन का साधने का कोई उपाय जान सकूँ। यह मन बड़ा प्रबल है महाराज !"

गंगाधर चौंके। तमाखू उन्होंने मुँह में भरी और देर तक उसका

आनन्द लेते बैठे रहे। फिर उठकर एक कोने में थूका और आकर कहने लगे, "तू तो वही चमेली है न जो……?"

गंगाधर घृणा से अपमान करने पर उतारू होकर उसे जीवन की कुछ घटनाओं की याद दिलाना चाहते थे कि चमेली ने उसी समय उनके वाक्य को पूरा करते हुए कहा, "हाँ, महाराज मैं वही चमेली हूँ जिसके जीवन से आप क्या, सभी परिचित होंगे। क्या बुरे का उद्धार नहीं हो सकता ?"

गंगाधर का मन अहम् की सीढ़ियों से नीचे उतरा। वे चमेली की ओर देखने लगे। वह हाथ में माला लिये उसी शान्त भाव से बैठी थी। उसने बिना मुँह ऊपर उठाये, आँखें ऊँची करके गंगाधर की ओर देखा। गंगाधर ने पाया जैसे यह वह स्त्री नहीं है जो घाट पर बैठकर हँसती हुई चंचल-चितवन से यात्रियों को मोहती थी। आज वह एकदम बदली हुई है। उसके मुँह पर एक प्रकार की शान्ति है। सेठानी बैठी हुई दोनों की बातें सुन रही थी। उसके मन में चमेली का पिछला जीवन जानने की उत्सुकता जाग उठी। वह सोच रही थी, पंडित नाराज होकर उसकी बात कहेगा। किन्तु जब उसने देखा कि गंगाधर का रुख बदल रहा है, और अपने ही यहाँ उसने एक भक्त स्त्री रख ली है इसका उसे गर्व हुआ। वैसे भी उसे चमेली पर श्रद्धा हो गई थी। पर अपने से नीचा सिद्ध करने के लिए उसने पंखा जोर-जोर से हिलाते हुए कहा, "भगवान् की भगती बड़ी मुश्किल है, क्यों पंडितजी ? मुझसे ही पूछो, आज चार साल से गंगाजी पै रहूँ हूँ, सबेरे उठके गंगाजी के दर्शन करूँ हूँ। ठाकुरजी का भोग भी लूँ हूँ। बामनों को कभी-कभार दान-दच्छिना भी दूँ हूँ। माला भी जपूँ हूँ, फिर भी क्या—कर तो ले कोई मेरा-सा काम !"

गंगाधर के मन में आया, कह दें तेरा यहाँ रहना-न रहना बराबर है। फिर चमेली पर सेठानी के अकारण भभक उठने के डर से चुप रहे। और कोई समय होता तो वे कह भी देते, पर चमेली के प्रश्न करने और बातचीत के ढंग से उनका मन द्रवित हो चुका था और वे पहले

की अपेक्षा चमेली के सम्बन्ध में गहराई से सोचने को बाध्य हो गए। उन्होंने सेठानी की बात पर ग़ौर भी नहीं किया। उनके मन में चमेली का प्रश्न घहरा रहा था, 'क्या बुरे का उद्धार नहीं हो सकता?' वे बोले, "क्यों नहीं हो सकता, अवश्य हो सकता है। कौनसी चीज है जो नहीं हो सकती? यदि मनुष्य पत्थर को भगवान् बना सकता है तो वही अपना उद्धार क्यों नहीं कर सकता?" पंडित गंगाधर एक बार और थूकने उठे तो चलने लगे। उसी समय चमेली ने कह दिया, "मैं बहुत दुखी हूँ पंडितजी, मैं बहुत पापिन हूँ।" यह कहते उसका गला भर आया। आँखों से आँसू बहने लगे। पंडित गंगाधर के तन में जैसे बिजली का तार छू गया। उसकी द्रवित वाणी की गम्भीरता, गुरुता ने उनके मन को झँझोड़ डाला। वे खड़े होकर चमेली की ओर देखने लगे। उसकी आँखों से टप-टप आँसू बह रहे थे। गंगाधर की जैसे आँखें खुल गईं। यह उन्होंने क्या देखा? क्या ऐसा भी कोई व्यक्ति हो सकता है?

चमेली की वाणी का एक-एक अक्षर उनके मस्तक में गूँजने लगा। उनसे और कुछ न बोला गया। वे चलते हुए सेठानी से केवल इतना कह सके, "सेठानी, यह साधारण आत्मा नहीं है। तेरा बड़ा भाग्य है।" कहकर आँसू पोंछते गंगाधर अँधेरे में लीन हो गए।

चमेली की आँखों से आँसू टप-टप अब भी बह रहे थे। सेठानी की समझ में कुछ नहीं आया। उसने उठकर अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे। किन्तु वह स्वयं रो रही थी। उसके शरीर को छूते ही सेठानी को लगा जैसे दक्षिणी पवन के शीतल झोंके से उसका शरीर प्रफुल्लित हो उठा हो; उसका चिरलांछित मन तेजस्वी देवता के सामने निर्मल हो रहा हो। स्वयं सेठानी ने अपने भीतर उज्ज्वल पवित्रता का अनुभव किया। चमेली बहुत देर तक ध्यानस्थ बैठी रही।

दूसरे दिन से सेठानी ने चमेली को रोटी से छुटकारा देने का निश्चय कर लिया। उसे अपने मन में ग्लानि हुई। जब चमेली रसोई में जाने लगी तो सेठानी ने कहा, "बेटी, अब मुझे और पाप में मत डुबो। तू

अपने कमरे में भजन कर। मैंने अब दूसरा इन्तजाम कर लिया है।"

चमेली रुककर निरीह भाव से सेठानी की ओर देखती बोली, "फिर मैं तुम्हारा अन्न नहीं खा सकती, सेठानीजी !"

"क्यों ?"

"मैं बिना काम किये अन्न नहीं खाऊँगी।"

"तू मेरी लड़की है।"

"फिर भी मुझे कुछ काम तो करना पड़ेगा। बिना काम किये खाया हुआ अन्न बिगाड़ करेगा।"

"क्या बिगाड़ करेगा, बेटी ?"

"मेरा मन पवित्र नहीं रह सकता, माँजी !"

सेठानी मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। 'माँजी' शब्द सुनकर उसका मन स्नेह से भर गया। फिर भी अन्न की बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। उसे मालूम हुआ, यदि उसे रसोई बनाने न भेजा गया तो शायद वह छोड़कर चली जाय। उसने आगे कुछ न कहा और ठाकुरजी के मन्दिर में जा बैठी।

शाम को पंडित गंगाधर आये तो सेठानी ने चमेली की बात कही। पंडित बहुत देर सोचने के बाद बोले, "उसने जो कहा है वह बिलकुल ठीक है। गांधीजी भी कहते थे कि बिना काम किये खाना अनुचित है। लेकिन क्या इसने गांधीजी का साहित्य पढ़ा होगा ? मैं समझता हूँ, नहीं। फिर भी बड़े पते की बात कही है इसने। उसे रसोई बनाने दो।" चमेली शाम को नहीं खाती थी। सेठानी ने बहुत चाहा दूध ही पी लिया करे। उसने नहीं माना, जबकि सेठानी दिन में तीन बार खाना खाने के बाद रात को दूध भी पीती थी। वैद्य से दूध बढ़ाने की दवा लेकर दिन-प्रतिदिन स्वस्थ हो रही थी। इधर चमेली पहले की अपेक्षा दुर्बल हो रही थी। शरीर हल्का और कान्तिमान था। चेहरे पर हल्का गुलाबीपन होते हुए भी माथे पर रेखाएँ चमकने लगीं। इतना होते हुए भी उसकी आँखों में एक तेज था, एक निर्मलता थी। उसकी आकृति

पहले की अपेक्षा अधिक भव्य हो उठी थी।

चमेली सेठानी के लिए दूध गरम करके लाई तो पंडित गंगाधर अपनी कल की मुद्रा में बैठे तमाखू मसल रहे थे। आज उनके चोटी के बाल बँधे हुए थे। माथे पर त्रिपुण्ड, कन्धे पर पतली चादर और पंडिताऊ वेश में थे। सुपारी काटते बोले, "माँजी, हमारे देश में स्त्रियों का बड़ा महत्त्व रहा है। इसी देश ने सीता, सावित्री, पद्मिनी, अहल्या और मीरा उत्पन्न कीं।" फिर चमेली की तरफ देखकर बोले, "बेटी, मेरी कामना है तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। सचमुच यह तुम्हारा सौभाग्य है जो भगवान् के प्रति भक्ति जागृत हुई है। गंगा के इस पवित्र तट पर हजारों व्यक्तियों ने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त किया है। सम्भव है कुछ नारियाँ भी उनमें हों। तुम्हें देखकर मालूम होता है, अभी भारत का आध्यात्मिक जीवन नष्ट नहीं हो गया है। धन्य हो बेटी!" कहकर पंडित गंगाधर ने जोर से हथेली पर तमाखू फटकारी तो उसकी रज आसपास के वातावरण में फैल गई। दूर बैठी सेठानी को जोर से छींक आई। दो उपद्रव एक साथ देखकर मुँह फैलाए पास के कुत्ते ने सिर उठाकर गुर्राना शुरू किया। वातावरण में एक गरमी भरी। कुत्ता इधर-उधर घूमकर फिर आ बैठा। यह सब देखकर चमेली को हँसी आ गई। पंडित गंगाधर ने अपनी धुन में तीन-चार बार जोर से तमाखू फटकारकर मुँह में भर ली और रसानन्द में लीन हो गए। इधर-उधर की बातें करने के बाद जब वे चलने लगे तो सेठानी ने कहा, "मेरी एक इच्छा है पंडितजी!"

"क्या?" पंडित ने पूछा।

"एकादशी को एक सीधा ले जाया करो।"

पंडित ने क्रोध में उत्तर दिया, "माँजी, मैं सीधा लेने वाला ब्राह्मण नहीं हूँ। मुझे पेंशन मिलती है, गुजारा चलता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए।" सेठानी चुप हो गई। यह उसके लिए दूसरा आश्चर्य था। क्या यहाँ ऐसे भी ब्राह्मण हैं जो दान-दच्छिना नहीं लेते? एक यह चमेली थी। उसने अपने मन में उन दोनों के सामने हल्केपन का अनुभव किया।

पंडित गंगाधर पोस्ट ऑफ़िस में क्लर्की करते रिटायर हुए थे। स्वभाव से ईमानदार और अक्खड़। कभी एक पैसा रिश्वत का नहीं लिया, किसीकी खुशामद भी नहीं की। जो मिलता उसीमें गुजारा करते। समाचार-पत्र नित्य पढ़ते, राजनीति में दखल रखते। संस्कृत और हिन्दी-साहित्य का भी कुछ-कुछ शौक था। रागों के नाम न जानते हुए भी गाने में रस लेते। जो किताब मिल जाती उसे पढ़ डालते। नौकरी की दशा में ही मार्क्सवाद पढ़ा। बहुत दिन तक नास्तिक भी रहे। भारतीय दर्शन उनको अच्छे लगते थे, फिर भी किसी विषय में वे पूर्ण नहीं थे। एक लड़का था जो कहीं नौकर था। पत्नी के मरने पर वैराग्य हुआ तो समय से पहले रिटायर होकर गाँव में आ बसे। एकदम निस्पृह और बेलौस आदमी। बहुत दिन तक गंगा नहाने पर भी पूजा-सन्ध्या नहीं की। फिर धीरे-धीरे उनमें आस्तिकता जगी। वे अपने को 'रेशनलिस्ट' मानते थे। वैसे देशभक्त और सदाचारी थे। जो दोष देखते वह मुँह पर कह देते। इसलिए उनका कोई मित्र भी नहीं था। बतलाने पर अपने दोषों के लिए माफी माँग लेते, प्रायश्चित भी करते। अब वे गीता, भागवत, उपनिषद् पढ़ने लगे थे। 'वाल्मीकि रामायण' के कई पारायण उन्होंने किये थे, फिर भी भक्ति उनमें नहीं जाग रही थी।

चमेली को उस दिन रोते देखकर उनका मन बेचैन हो उठा। बहुत रात तक पड़े-पड़े सोचते रहे, क्या सचमुच भक्ति से उद्धार हो सकता है? क्या भक्ति एक अन्धश्रद्धा नहीं है? वे तर्क से सब-कुछ हल करने के पक्षपाती थे। आज उनका मन एक नई चेतना पाकर डगमगा उठा। साठ साल से ऊपर के इस व्यक्ति ने पाया, जैसे चमेली उनसे महान् है। वह जीवन के लक्ष्य के अधिक निकट है और वे अधूरे।

अब वे शाम को इधर-उधर जाने के बजाय सेठानी के मकान से सटे गंगा-किनारे पर जा बैठते। वह स्थान एकान्त था। घाट के दोनों ओर दो चौड़े बुर्ज थे, जहाँ बैठकर गंगा-प्रवाह का आनन्द लिया जा सकता था। चमेली उसी एक बुर्ज पर सुबह-शाम बैठती थी। वह रात

रहते उठ जाती और भजन करती। रात को ग्यारह-बारह बजे तक बैठी रहती। जब शाम को गंगाधर ने आकर बैठना शुरू किया तो वह अपने कमरे में चली आई। उसके कमरे की खिड़की भी ठीक गंगा के सामने थी।

एक दिन गंगाधर जब शाम को पहुँचे तो चमेली सेठानी को रामायण सुना रही थी। पहुँचते ही उन्होंने कहा, "रामायण पढ़नी ही हो तो वाल्मीकि की पढ़ो, इसमें क्या रखा है?" चमेली ने पढ़ना रोककर उत्तर दिया, "महाराज, मन तो इसीमें लगता है। साक्षात् भगवान् के दर्शन होते हैं, भक्ति बढ़ती है।"

गंगाधर चुप रहे। सोचने लगे, 'मैंने इतनी बार 'वाल्मीकि रामायण' पढ़ी, मुझमें तो भक्ति नहीं आई।' वह चुप होकर सुनते रहे। वह शवरी का प्रसंग था, जिसमें भक्ति से विह्वल होकर शवरी राम को बेर खिला रही है। गंगाधर सुनते रहे। उस प्रसंग को पढ़ते हुए चमेली का गला भर आया, आँखों से आँसू झरने लगे। गंगाधर को एक हल्का-सा भक्ति का स्पर्श मिला। उनके तार्किक मन पर रस-विभोरता की छाया पड़ी। उस दिन वे चुपचाप उठकर चले गये। तीन-चार दिन के बाद आकर बोले, "चमेली, तुम्हारा कहना ठीक है। वाल्मीकि के राम आदर्श हैं और तुलसीदास के राम स्वयम् भगवान्। मैं आजकल तुलसी की रामायण पढ़ रहा हूँ।"

चमेली सिर झुकाकर रह गई। उसने उत्तर कुछ भी नहीं दिया।

अचानक एक दिन आगरा से सेठानी का छोटा लड़का आ गया, एक नौकर के साथ। बैलगाड़ी में सामान लदा था। दोनों पैदल आ रहे थे। रघुनन्दन की आँखों पर सेलोलाइट के हल्के कत्थई रंग के ट्रान्सपेरेण्ट फ्रेम का चश्मा। दाढ़ी-मूँछ साफ। हल्का साँवला पर लुभावना चेहरा। बड़ी-बड़ी आंखें। चौड़ा चमकता माथा। उतरती हुई नुकीली नाक। पतले होठ। लम्बा कद। खाकी रेशमी वुशशर्ट। मक्खनजीन की सफेद पतलून। धूल-भरा होने पर भी डासन का जूता, जिसकी 'टो'

सदा चमकती रहती है। उँगलियों में हीरे और पुखराज की दो अँगूठियाँ। कलाई में सुनहरी चैन की 'ओमेगा' घड़ी। हाथ में चमड़े से मढ़ी छोटी-सी छड़ी। बगल में सोला हेट।

जैसे ही गाड़ी मकान के आगे आकर रुकी तो आसपास के लोग इकट्ठे होकर देखने लगे। नौकर ने गाड़ी से सामान उतारा। चमड़े के दो सूटकेस, एक बड़ा बेडिंग, एक अटैची, एक पोर्टमेण्टो, जोधपुर की चाँदी की सुराही। लड़के ने मुस्कराकर माँ के पैर छुए तो माँ ने पुलकित होकर आशीर्वाद दिया। खुशी के मारे उसकी आँखों से आँसू बह निकले।

लड़का रघुनन्दन विलायत से लौटकर आ रहा था। माँ ने जाने की सोची, लेकिन घर वालों से नाराज होने के कारण या न जाने क्यों, वह नहीं पहुँच पाई। खुद रघुनन्दन से भी कुछ नाराज थी। विलायत से उसने जो पत्र भेजे थे उनमें माँ का जिक्र नहीं किया था और न अलग से उसे कोई चिट्ठी लिखी। यही सब सोचकर वह जाते-जाते रह गई थी।

रघुनन्दन व्यापार के लिए यूरोप के सभी भागों में घूमा था। कई एजेन्सियाँ उसने ली थीं और भारतीय माल सप्लाई करने का कण्ट्रेक्ट भी। एक तरह इस यात्रा में उसने कई लाख के नये सौदे किये थे। आने पर भाइयों ने जी खोलकर स्वागत किया। कई नये दफ्तर खोल दिये गए। यह सब करने के बाद कुछ दिनों के लिए माँ को देखने और सैर करने को यह जगह चुनी। पहले उसका खयाल था मसूरी या नैनीताल चला जाय, लेकिन यूरोप में इतना वैभव देखने के बाद दोनों पहाड़ उसकी नजर में गिर गए थे। फिर माँ का भी खयाल था। लड़कों ने अपने लिए सामने गंगा की तरफ दो दुमंजिले कमरे बनवाये थे जिनमें हाथ से खींचने के पंखे लगे थे। एक कमरे में दो पलंग बिछे थे। उनके पास एक तख्त पर ईरानी गलीचे और दो बड़े गाव तकिये रखे थे। दूसरे कमरे में सोफा सेट, एक बड़ी मेज, कुछ

कुरसियाँ और एक आलमारी थी। कमरे से सटा हुआ बाथरूम और उसके साथ ही टट्टी। दोनों कमरों के सामने बड़ा-सा आँगन था। एक तरफ टीन का छप्पर। गर्मियों में शाम के समय बाहर बैठकर गंगा का दृश्य देखा जा सकता था। चमड़े से मूढ़े कुछ मूढ़े बाहर रखे रहते थे। नीचे की मंजिल के एक कमरे में चमेली रहती थी। एक बन्द था। नीचे का एक बड़ा कमरा भी सामान से भरा रहता था। रघुनन्दन के आने पर ऊपर के कमरे खोल दिये गए। सफाई के बाद उसका सामान पहुँचा दिया गया। रघुनन्दन पहली बार यहाँ आया था। पलंग पर बैठकर सामने का दृश्य देखते हुए उसने माँ से कहा, "जगह बुरी नहीं है।"

"हाँ, मैंने तुझसे कई बार कहा, देख तो सही एक बार गंगा मैया के चरनों का प्रताप। बड़े-बड़े पहाड़ इसके सामने पानी भरे हैं।"

लड़के ने बिना उत्तर दिये खिड़कियों से हर प्रकार के दृश्य देखे, जैसे कोई फोटोग्राफर हर 'ऐंगल' से फोटो लेने की बात सोच रहा हो। उस समय आकाश में बादलों के टुकड़े उड़ रहे थे। सूर्य का प्रकाश अपनी आभा बिखेर रहा था। सामने उस पार कहीं खेत, कहीं बाग, कहीं बालू-रेत के मैदान छाती खोले आकाश की साँसें पीकर अपनी चौड़ी छाती की धड़कन गिन रहे थे। रघुनन्दन बहुत देर तक देखता रहा। नौकर चाय ले आया। आलमारी से नये पिर्च-प्याले निकालकर सजा दिये गए। केक, पेस्ट्री और बिस्कुट सन्दूक से निकाले गए। और भी मिठाइयाँ थीं। माँ ने बादाम का हलवा तैयार करवाया। रघुनन्दन 'ब्रेकफास्ट' के बाद बाथरूम चला गया। दोपहर को माँ ने खाने के लिए पूछा तो रघुनन्दन ने वहीं मेज पर खाना मंगवाया। इसके बाद सो गया। शाम को गंगा का दृश्य देखा। रात को अनपढ़े उपन्यास में समय कटा। दूसरे दिन नौकर और पुजारी के साथ इधर-उधर के स्थान देखे। घाटों पर लोग स्नान कर रहे थे। कुछ कूद रहे थे, कुछ तैर रहे थे। एक तरफ तेल की मालिश हो रही थी। कुछ नहाकर चन्दन

पोत रहे थे। संध्या-पूजा करने वालों की संख्या भी कम न थी। सारी देह में गंगारज लपेटे कुछ पंडे यात्रियों से दान-दक्षिणा ले रहे थे। माँगने वालों की भी काफी भीड़ थी। रघुनन्दन ने यह सब बड़े ध्यान से देखा। फिर भी उसे लगा, हिन्दुस्तान यूरोप से कई बातों में पीछे है। उसका मन लोगों के इस रूप को देखकर अचकचाया। अगर वहाँ उसे कोई चीज पसन्द आई तो वह था तैरना और नहाना। यूरोप जाने से पहले, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए वह पश्चिमी प्रभाव का व्यक्ति बन गया था और अब तो हर चीज उसे तुच्छ लगती थी, जैसे काले चश्मे से भारतवर्ष की हर चीज उसे धुँधली दिखाई देती हो। नहाने की इच्छा रहते हुए भी वह बाथरूम में नहाया। सबके सामने शरीर खोलकर नहाना उसे बड़ा असभ्य लग रहा था। बात-बात में माँ के सामने यूरोप का आदर्श उपस्थित करते हुए उसने इस बात को प्रकट नहीं होने दिया कि यूरोप में भी लोग नंगे और 'बेदिंग सूट' पहनकर समुद्र में स्नान करते हैं।

दिन में खाली समय किताब पढ़ते रहने पर भी दो दिन में उसका जी ऊब गया। कोई बात करने वाला ही न था। यूरोप से घूमकर लौटने वाला पढ़ा-लिखा आदमी बात भी किससे करता? एक शाम गंगाधर आकर बैठे तो उसने उन्हें देहकानी समझा या अर्ध-शिक्षित। आखिर किससे बात करे? खाली समय में क्या करे? अखबार वहाँ थे नहीं। माँ से क्या कहे? यही सब सोचकर तीसरे दिन उसने जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन शाम को उसने देखा, मकान के नीचे घाट के बुर्ज पर एक स्त्री चुपचाप बैठी है। वह उधर ही देखता रहा। जब वह बहुत रात गए तक भी वहीं बैठी रही, तब आकर उसने माँ से पूछा। माँ के बतलाने पर उसकी जिज्ञासा बढ़ी और सबेरे वह ऊपर चाय लेने के बजाय माँ के कमरे में चाय पीने के लिए चला गया। चमेली उस समय दालान में नीची निगाह किये आँचल से आधा मुँह ढके दाल-चावल

बीन रही थी। रघुनन्दन का केवल उसके हाथों की उँगलियाँ और घूँघट से निकली नाक ही दिखाई दी। उसने चाय पीते और एकाध बार माँ से बात करते हुए उधर देखा, किन्तु चमेली की उँगलियाँ निर्विकार भाव से चल रही थीं। उसने चावल एक तरफ रखकर दाल की थाली उठाई और बीनने लगी। माँ ने चमेली की तरफ देखकर लड़के से कहा, "इसे मैं अपनी लड़की मानूँ हूँ। भंडार की चाबी इसीके पास रहवै है। यही मेरी देख-भाल भी करै है। बड़ी अच्छी है विचारी।" रघुनन्दन ने कोई जवाब नहीं दिया और चुपचाप चाय पीता रहा। अचानक उसने विलायत की एक घटना का वर्णन करना शुरू कर दिया। बातचीत काफी दिलचस्प थी। माँ एकाग्र होकर सुन रही थी। जब कहानी का 'क्लाईमेक्स' आया तो बरबस चमेली उधर देखने लगी। रघुनन्दन ने अद्‌भुत शान्ति और गम्भीरता की प्रतिमा उस नारी को देखा। बड़ी-बड़ी आँखों में जैसे कोई शक्ति भरी हो। स्निग्ध मधुर मुखाकृति, उज्ज्वल रस से सिक्त चितवन। वह देखता ही रह गया। चमेली उठकर रसोई में चली गई। रघुनन्दन माँ के पास बैठा रहा। उसका मन व्यग्र हो उठा। बोला, "यह कौन है?"

"गाँव की लड़की है विचारी! बड़ी सीधी-सादी और भगवान् की भगत।"

सेठानी ने विस्तार से चमेली के सम्बन्ध में जो-कुछ जानती थी कह दिया। रघुनन्दन अपने कमरे में आ बैठा। शाम को चमेली के अपने निश्चित स्थान पर पूजा को बैठते ही वह भी उधर घूमता जा निकला। बहुत देर तक दूसरे बुर्ज पर बैठा रहा लेकिन चमेली बेभान अपने ध्यान में मग्न थी। रघुनन्दन के चाहने पर भी उसका आमना-सामना नहीं हुआ। उसके जाने की तिथि एक दिन और आगे टल गई। अचानक दोपहर को जब चमेली अपने कमरे में बैठी रामायण पढ़ रही थी तो रघुनन्दन दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। चमेली ने निगाह उठाकर देखा और चुप रघु॰ ॰न ने कहा, "क्षमा करें, मैं आपसे दो-एक बातें पूछना

चाहता हूँ।"

"कहिए !"

"यह आप इतना भजन-पूजन क्यों करती हैं ?"

"मुझे इससे शान्ति मिलती है।"

"शान्ति तो कोई बहुत अच्छी चीज नहीं है। यह तो आदमी के निकम्मेपन की निशानी है। आप जैसी...... ।" उसके बाद वह रुक गया।

"मैं कब कहती हूँ, मैं निकम्मी नहीं हूँ ! मैं दुखी हूँ। भगवान् की शरण ही मेरी शान्ति है।"

"क्या भगवान् भी कोई है ?"

"मैं मानती हूँ इसलिए है।"

"तो मैं नहीं मानता, इसलिए नहीं है।"

"जी।"

"क्या ?"

"यही कि आपके लिए वह नहीं है।"

"और आपके लिए ?"

"मेरे लिए है, मैं मानती हूँ।"

"तो मानने-भर से क्या कोई चीज हो जाती है ?"

"क्या न मानने से कोई चीज नहीं भी रहती ?"

"इसलिए कि वह दिखाई नहीं देता।"

"क्या हर एक को हर चीज दिखाई देती है ?"

"क्या कोई ऐसा आप बता सकती हैं, जिसने उसे देखा हो ?"

"आपके भीतर जो बोल रहा है, क्या आपने उसे देखा है ? वह तो बिलकुल आपके भीतर है।"

"मैं बोल रहा हूँ, यही मेरे लिए काफी है। मुझे उसे जानने की जरूरत नहीं है।" इतना कहने के बाद उसने अनुभव किया कि वह केवल तर्क करके बात बढ़ा रहा है। एक तरह से वह हार गया है।

चमेली ने फिर कहा, "यदि आप प्रयत्न करें तो आपको मालूम होगा। मेरे गुरु औघड़ बाबा ऐसे ही थे।"

रघुनन्दन चुप रहा। चमेली बोली, "मैं बहुत पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। लेकिन जो मानता है, विश्वास करता है, उसके लिए गहरी लगन रखता है, उसे वह दिखाई देता है।"

"आपमें तो वे सब गुण हैं न ?"

"मैं अधम हूँ।"

"क्षमा कीजिये, मैंने आपको कष्ट दिया," कहकर रघुनन्दन चला गया। उसे समझ पड़ा, यह औरत काफी समझदार है, नहीं तो जो प्रश्न उसने किये उनसे कोई भी चकरा सकता था। फिर स्वयम् उसे भी कई नई बातें मालूम हुईं। तो क्या पढ़ी-लिखी भी है यह ? मां कह रही थी, "यह विधवा है।" आजकल हमारे देश में विधवाओं को समाज ने यही काम बताया है कि पूजा-पाठ नाम की चीज में शरीर को गला दें और अच्छे कामों में लगने योग्य अपनी शक्ति को बेकार खराब कर दें। यह बेचारी भी इसीकी शिकार है। रघुनन्दन अपने कमरे में पड़ा-पड़ा यही सोचता रहा। उसकी इच्छा हुई चमेली से और बातें करे, किन्तु वह वैसा न कर सका। उसकी उत्सुकता जाग रही थी। उसकी बातों में उसे रस भी कम नहीं मिला। वह जब-तब लक्ष्य करता कि चमेली अपने ध्यान में मग्न है, न किसीसे बोलती है न बाहर ही जाती है।

शाम को गंगाधर आये तो बातों-बातों में उसने कह डाला। गंगाधर चुप रहकर बोले, "आपकी बात ठीक भी हो सकती है, लेकिन इस गाँव जैसी जगह में ऐसी औरतें क्या करें ? अगर कुछ काम करती हैं तो लोग उन्हें रहने नहीं देते। उन्हें बदनाम करते हैं, उन्हें बुरी नजर से देखते हैं। फिर इसका ऐसा आचरण एकदम बुरा नहीं है।"

"यूरोप में शायद ऐसी औरत एक भी न मिलेगी।"

"ऐसी बात नहीं है। नन्स वहाँ भी हैं। चर्च में ज़िन्दगी बिता देने

वाली औरतें वहाँ पर भी हैं।"

"लेकिन जो समझदार हैं वे सेवा का काम करती हैं, या ऐसा काम करती हैं जिसमें उनका नाम हो, देश की उन्नति हो। वहाँ हर इकाई किसी-न-किसी रूप में अपने देश को उन्नत करती है, जबकि हमारे यहाँ हर व्यक्ति, जो कुछ नहीं कर सकता, परलोक की बात ले बैठता है, किसने देखा है परलोक; जो आदमी इस दुनिया को नहीं बना सकता वह दूसरी दुनिया को कैसे बना सकता है ?" रघुनन्दन ने प्रश्न पर गहराई से विचार करते हुए कहा।

गंगाधर पण्डित बोले, "जहाँ तक सेवा, साहित्य और देश की उन्नति का प्रश्न है मैं आपकी बात मानता हूँ। किन्तु वहाँ सब लोग पढ़े-लिखे भी तो हैं। समान अधिकार के कारण स्त्रियाँ इतनी स्वतन्त्र है कि वे जो चाहें, मार्ग अपना सकती हैं। जबकि हमारे देश में न तो इतनी स्वतन्त्रता है न इतने ज्ञान-प्राप्ति के साधन हैं। इस देश में स्त्री 'सेक्स' के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।"

"तो यह हमारा दुर्भाग्य है।"

"अवश्य, दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इस दासता की परम्परा में हमने जीवन को भोग के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना, जैसे विलास ही हमारे जीवन का चरम लक्ष्य है।"

रघुनन्दन ने कहा, "यह जानते हुए तो हमें इस परम्परा को बदलना होगा। यदि आप उलटा अर्थ न समझें तो मैं कहूँ ? यह बहन अपने समय का कितना दुरुपयोग कर रही है !"

गंगाधर पंडित की त्यौरियाँ चढ़ गईं। वे बोले, "अगर आप बुरा न मानें तो कहूँ ? आपने अपने अनुभव का देश की उन्नति में कितना दान किया है ? मैंने सुना है, आपने अपनी व्यापार यात्रा में कई एजेन्सियाँ ली हैं, अपना व्यापार बढ़ाने का प्रयत्न किया है और धन के द्वारा अपने वैभव को ऊँचा किया है।"

रघुनन्दन ने कहा, "क्या इससे देश की उन्नति नहीं होती ? तर्क

में व्यक्तिगत प्रश्नों को नहीं लिया जाना चाहिए।"

पंडित बोले, "तर्क क्या व्यक्तिगत प्रश्न से दूर है ? फिर व्यक्ति का समूह ही तो समाज है। जैसे मेरे अकेले की बुराई समाज की बुराई कहला सकती है, वैसे ही व्यक्ति की देश के प्रति उदासीनता भी तो सम्पूर्ण देश की बुराई बन सकती है। फिर एक बात और है। हम मूल प्रश्न से अलग हो रहे हैं। हमारा देश यूरोप नहीं है। यह भारत है, इसका आदर्श दूसरे ढंग का है।"

"यह कोरा आदर्श है। जो आदर्श हम मान लेते हैं या बना लेते हैं क्या वह सदा सही होता है ? परिस्थिति के साथ आदर्श नये बनते हैं। उनके तौर-तरीके नये रूप में ईजाद होते हैं।"

जहाँ तक सिद्धान्त का प्रश्न है आपकी बात बहुत अच्छी लगती है। लेकिन हर आदर्श खराब ही होता है यह बात आप कैसे कह सकते हैं ? उपयोगिता-अनुपयोगिता की दृष्टि से हम आदर्श स्वीकार करते हैं। चाहे जैसे हो, हम यह मानते हैं कि स्त्री और पुरुष की अथवा समाज की भारत में एक मर्यादा है, जो यूरोप में नहीं है। यूरोप के आचार-विचार भले ही वहाँ अच्छे समझे जाते हों, पर हम उनको अच्छा नहीं समझते। क्या आप अपनी स्त्री को सामाजिक रूप से उतनी स्वतन्त्रता दे सकते हैं जितनी यूरोप में प्रत्येक स्त्री को प्राप्त हैं ?"

रघुनन्दन थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। फिर बोला, "स्वतन्त्रता का तो यही अर्थ है। यदि किसी व्यक्ति के काम से समाज की मर्यादा भंग न हो तो वह उस स्वतन्त्रता को स्वीकार कर ले।"

गंगाधर बोले, "'समाज की मर्यादा' शब्द रखकर आपने अपना बचाव कर लिया। स्वतन्त्रता में भी 'तन्त्र' शासन होता है। उसका सीधा सम्बन्ध समाज से है। फिर समाज उसी प्रकार के व्यक्तियों का समूह होने के कारण व्यक्ति की स्वतन्त्रता और आचार को अपने ढंग से स्वीकार करता है। हमारे देश में जब तक समाज की मर्यादा में नई चेतना और नई दृष्टि नहीं आती, तब तक हमें बाध्य होकर व्यक्ति की

स्वतन्त्रता को समाज से सम्बद्ध मानना पड़ेगा।"

बात बहुत नीरस होती जा रही थी। सेठानी चुप बैठी थी, न जाने ये दोनों कहाँ की बात ले बैठे। चमेली ध्यान से सुन रही थी, पर वह गहराई तक पहुँचने के बाद भी कुछ समझ नहीं पा रही थी। उसने मोटा-सा प्रश्न किया और कहा, "मैंने बहुत सी दुनिया देखी है। कोई भला काम भी नहीं किया। आज मेरी आत्मा अपने पिछले कामों से इतनी दुखी है कि मैं उनसे अपना उद्धार चाहती हूँ। ऐसी हालत में जो काम मैं कर रही हूँ वह न इस लोक की और न परलोक की दृष्टि से बुरा है।"

गंगाधर बोले, "मन के दुख को मन की शान्ति चाहिए। कुकर्म को अच्छे कर्म शान्त करते हैं, अधर्म को जैसे धर्म।"

रघुनन्दन ने एक सीधी-सी बात कही, "मेरे खयाल से स्त्री आज पहले जैसी लुञ्ज-पुञ्ज नहीं है। वह समाज का एक मजबूत अंग है। एक टाँग से रेस में दौड़ा नहीं जा सकता।"

"निश्चय ही," गंगाधर ने जवाब दिया, "लेकिन हमारा कल्याण यूरोप की नकल में नहीं है। आप मानेंगे, आज वहाँ कितनी अशान्ति है। व्यक्ति कितना भयभीत है, समाज कितना आग्रहग्रस्त है! सारे उन्नत देश एक-दूसरे से डरते हुए युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं। अणु-बम, ऐटम-बम, हाइड्रोजन-बम, न जाने क्या-क्या हर रोज निकाल रहे हैं, जैसे बहुत से शेर सामने पड़ी लाश के लिए एक-दूसरे पर गुर्रा रहे हों। यह सब क्या है? बाहर से सुखी और सम्पन्न होते हुए भी शक्तिमान देशों के भीतर कितना भय भरा हुआ है! उनके आगे कोई मार्ग नहीं है। इस दूसरे महायुद्ध ने लोगों की आस्था को कितना हिला दिया है!"

रघुनन्दन ने मजाक उड़ाते हुए कहा, "तो क्या पूजा और भक्ति से यह ठीक होगा? गंगा नहाने से युद्ध हट जायँगे या रज लपेटे हुए मस्त इन ब्राह्मणों को खिलाने से?"

सेठानी के मन को चोट लगी। चमेली एकदम चौंक उठी। गंगाधर पंडित तमाखू के लिए बेचैन हो ऊठे। उन्होंने बटुआ निकालकर तमाखू बनाना शुरू कर दिया। रघुनन्दन कह रहा था, "ये सब फिजूल की बातें हैं। यदि आपकी बात सही हो और सारे संसार के सामने मौत नाच रही हो, तो क्या हमें चुप होकर बैठ जाना चाहिए ?"

गंगाधर पंडित ने तमाखू फटकारी और मुँह में डालते हुए जैसे उन्हें उत्तर सूझा। वे बोले, "रघुनन्दन बाबू, मुझे लगता है जैसे आप आज यूरोप होकर आये हैं, तो उन्हीं की भाषा में सोच भी रहे हैं। यदि आपको आश्चर्य न हो तो मैं आपसे पूछूँ। आपने अपरिग्रह शब्द सुना है ?"

रघुनन्दन ने पूछा, "वह क्या ?"

गंगाधर बोले, "अपरिग्रह का अर्थ है—त्याग। सच पूछा जाय तो सारा संसार आज इस परिग्रह के दोष से दुखी है, शक्ति के बल से दूसरे देशों पर अधिकार जमाना चाहता है। जिस देश में अधिक शक्ति होती है, अधिक सम्पन्न होता है, वह अपने विचारों को दूसरों पर थोपता है, उसको दबाता है, उसको लालच देकर अपनी ओर करता है। यह शक्ति की लड़ाई है। आज मनुष्य की शक्ति चाहे धन के रूप में हो, या विज्ञान के रूप में, या चालाकी के रूप में—कूटनीति के रूप में भी आप कह सकते हैं—अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई है। उसने मनुष्य के मन को विकृत कर दिया है, उसके विवेक पर अहंकार का परदा डाल दिया है। इसका एकमात्र उपाय है—अपरिग्रह। जियो और जीने दो, रहो और रहने दो।"

पंडित गंगाधर बोलते जा रहे थे। इसी समय सेठानी उठकर दूसरी तरफ चली गई।

चमेली ने कहा, "सार तो रघुनन्दन बाबू की बातों में है, महाराज ! चाहे हमारे आदर्श दूसरे हों, पर देश के काम में क्या कोई हमारा कर्तव्य नहीं है ? गाँव के लोगों को आप देख ही रहे हो और स्त्रियों

की जो हालत है उसके लिए मैं क्या कहूँ ?"

गंगाधर के मुँह से निकल गया, "हम इस समय बहुत बड़ी बात कह रहे थे।"

रघुनन्दन ने जवाब दिया, "आप दूसरों की बात कह रहे थे, अपनी नहीं, अपनी कहिये। बात यह है कि सबको देश के काम में सहयोग देना चाहिये। मैं नहीं मानता, चमेली जैसी असाधारण स्त्री सब काम छोड़कर पूजा-पाठ जैसे काम में अमूल्य जीवन बिताये।" यह कहकर रघुनन्दन टहलने लगा। गंगाधर उसकी गतिविधि देखते रहे। एक बार उनके मन में आया कह दें, "अच्छा, आप इस शिकार को फाँसने के फिराक में हैं, क्योंकि यह देखने में बुरी नहीं है।"

गंगाधर का मन घृणा से भर गया। चलते-चलते जब उनसे न रहा गया तो बोले, "रघुनन्दन बाबू, जीवन केवल वही नहीं है जैसा आपने यूरोप में देखा है। जीवन वह भी है जिसे हमारे ऋषि-मुनियों ने स्वीकार किया है। मैं चमेली के काम को शत-प्रतिशत ठीक मानता हूँ। भगवान् करे उसे सिद्धि मिले।" स्पष्टवादी गंगाधर कहकर चले गये।

चमेली का भक्ति-प्रवणमन विचलित हो उठा। वह सोचने लगी, 'क्या वह ठाक कर रही है ? जीवन के प्रत्यक्ष मोह को छोड़कर कर्तव्य से भागना नहीं है यह क्या ? व्यर्थ, एकदम व्यर्थ है क्या ?' बहुत देर तक वह अपने से लड़ती रही। रामायण-पाठ में स्खलन हो गया। इसके पूर्व जितनी तन्मयता, मनोयोग से वह पूजा-पाठ करती उतना अब नहीं, अब उसका चंचल मन उत्तरंग हो जाता। कभी-कभी उसके सामने रघुनन्दन की मूर्ति आ जाती। उसका वैभव उसकी आँखों में साफ-साफ भूम जाता। पहले यह क्रम हल्का रहा, फिर धीरे-धीरे और भी स्पष्ट होने लगा। जितना ही मन को रोककर वह पूजा-पाठ में ध्यान जमाती, उतनी ही उग्रता से उसे लगता जैसे रघुनन्दन उसके सौन्द : अभिभूत हो रहा है, उसकी ओर देख रहा है। उसका मन

और भी व्यग्र हो उठता। कभी-कभी वह रघुनन्दन के तर्कों पर विचार करती और सोचती, क्या सचमुच वह एक व्यर्थ का काम कर रही है? क्या यह सब मिथ्या है? उसने पूजा के समय भगवान् से प्रार्थना की कि वे उसे मार्ग दिखाएँ। देश-सेवा, समाज-सेवा नाम की जिन बातों को रघुनन्दन ने कहा था वे उसके लिए नई थीं। अपने जीवन में न तो कभी उसे वैसा अवसर ही मिला था और न इस सम्बन्ध में उसने कुछ सोचा ही था। वह नहीं जानती थी कि समाज-सेवा कैसे की जाती है या उसका अपने बिताये जीवन के अलावा और भी कोई उद्देश्य हो सकता है? रामायण में लिखी प्रश्नश्लाका द्वारा एक दिन उसने उत्तर पाना चाहा, पर उसमें भी कोई स्पष्ट आदेश नहीं मिला। इधर रघुनन्दन जब-तब उससे बातें करने का मौका ताकता रहाता। सेठानी ने देखा तो उसे पहले बुरा लगा। एकाध बार उसने रघुनन्दन से इशारे से कहा भी तो उसने माँ को डाँट दिया। वह स्वयं बड़े धर्म-संकट में थी। वह चाहती थी कि यह चला जाय तो ठीक रहे। उसने बातों-बातों में कहा भी, लेकिन रघुनन्दन के ऊपर कुछ प्रभाव न हुआ।

स्वयं चमेली का मन डगमगा उठा था। एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह खुलकर बात करे, पर जब उसने मन के भीतर झांककर पिछले इतिहास का मनन किया तो उसका मन स्वयं घृणा, व्याकुलता से भर गया। फिर एक रुकावट और थी। उसने सोचा, मान लो मैं रघुनन्दन से स्नेह करती हूँ तो वह मेरा बन्धन किस रूप में होगा? क्या मैं उसकी ब्याही औरत का अधिकार पा सकूँगी? तब क्या मैं फिर वेश्या बनूँ? यहाँ आकर उसकी इच्छाएँ क्रिया के परिणाम की ठेस खाकर रुक गईं। इसका उसे कोई हल न सूझा। उसने सोचा, क्या वह फिर उसी भट्टी में जलने जा रही है जिससे बड़ी कठिनाई से निकली है? वह कई दिन तक सोचती रही। कभी-कभी वह कोसती, क्यों यह उसके मार्ग में अचानक आकर खड़ा हो गया? शंकरानन्द, मनीराम, ललिता, सभी को जब उसने त्याग दिया है तो क्या वह इसे नहीं छोड़ सकती?

आखिर क्या बात है ? उसने माना, रघुनन्दन का वैभव उसे खींच रहा है और उसका सौन्दर्य भी। अचानक उसे सूझा, उसका मन ही विकृत है; न रघुनन्दन का वैभव उसके सामने है, न उसका सौन्दर्य। वह रातों जागती आत्म-मन्थन करती, पर किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पा रही थी। रघुनन्दन उसे सुलभ हो गया था। वह घंटों उसके कमरे में बैठता या स्वयं किसी-न-किसी बहाने उसे बुला लेता। फिर भी उसकी पूजा का क्रम बराबर चल रहा था। सेठानी उसकी गतिविधि देखती रहती थी। उसका मन लड़के के व्यवहार से बहुत खिन्न था, पर क्या करती ? मन मसोसकर रह जाती। एक दिन उसने चमेली से कहा, "यह मैं क्या देख रही हूँ चमेली ? क्या वह सब तेरा ढोंग था ?" चमेली चुप रही। दुबारा उसे रोककर सेठानी ने जरा डाँटकर कहा, "अगर ऐसा ही है तो तू मेरे घर से निकल जा, मैं ऐसी कुलटा को नहीं रखूँगी।"

"मैं क्या करूँ ? तुम्हारा लड़का ही किसी-न-किसी बहाने मुझसे बातें करना चाहता है।"

"क्या कहता है भला ?"

"कहा तो कुछ भी नहीं है। कहते हैं, पूजा-पाठ व्यर्थ।"

"तू क्या कहती है ?"

"मैं कुछ भी नहीं समझ पाती। मैं चली जाऊँगी।"

"हाँ, जा। मेरा घर रंडीखाना नहीं है। कल ही चली जा।"

"अच्छा।"

चमेली अपने कमरे में आकर सुबकती रही, बहुत देर तक पड़ी सोचती रही। इस समय टहलता हुआ रघुनन्दन उसके दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया—

"क्या बात है ?"

चमेली ने तीव्र स्वर में उत्तर दिया, "कुछ नहीं।"

"मुझसे कोई अपराध हुआ है क्या ?" वह अन्दर आकर एक कोने में खड़ा हो गया।

"कैसा अपराध ?"

दोनों देर तक चुप रहे। अन्त में चमेली ने पूछा—

"आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

"कुछ नहीं।"

"तो क्यों मेरे पीछे पड़े हैं ? क्यों मेरी पूजा-पाठ भंग करते हैं ? क्या मतलब है आपका ?"

रघुनन्दन थोड़ी देर चुप रहकर बोला—

"मैं तुम्हारा उद्धार करना चाहता हूँ।"

"क्या मतलब ?" कड़ककर चमेली ने पूछा।

"सुनो चमेली, यह सब व्यर्थ है जो तुम कर रही हो। मनुष्यता इसमें नहीं है।"

"मनुष्यता क्या है, मैं नहीं जानती। अगर उसका कोई अच्छा मतलब हो तो भी मैं आपसे कहूँगी कि आप अपना काम कीजिये। मेरा रास्ता अलग है।"

"मैं देखता हूँ, तुम्हारा रास्ता गलत है।"

"मेरे लिए सही है।"

"सुनो, तुम असाधारण बुद्धिमती हो। यदि चाहो तो·······!"

"हाँ, चाहूँ तो क्या ?"

"मैं तुम्हारे साथ विवाह कर सकता हूँ। तुम्हें वे सब सुख दूँगा जो एक विवाहिता नारी को प्राप्त हो सकते हैं।"

चमेली एकदम चौंक उठी, जैसे किसीने नीचे गिरते को बीच में ही पकड़ लिया हो। वह पागल हो उठी। सँभलकर बोली—

"आप मुझे जानते हैं ?"

"मैंने तुम्हारे मन का अध्ययन किया है। तुम्हारे पिछले जीवन को जानने की जरूरत नहीं है।"

"मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं रघुनन्दन बाबू !"

"मनुष्य ही पाप करता है, चमेली !"

"नहीं, मैं आपके योग्य नहीं हूँ।"

"किन्तु मैं अपने को तुम्हारे योग्य पाता हूँ। तुम नहीं जानतीं, मैंने इस सम्बन्ध में कितना सोचा है। चाहने पर मैं यूरोप में किसी अच्छी लड़की का चुनाव कर सकता था। अपनी पहली पत्नी की मृत्यु के बाद मैंने पचासों कन्याओं को अस्वीकार कर दिया है।"

चमेली को अपने पर गर्व का अनुभव हुआ। वह मन-ही-मन उत्फुल्ल हो उठी। वह बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोली—

"मैं सोचकर उत्तर दूँगी।"

"कब तक?"

"दो-एक दिन में, लेकिन मुझे तो कल चले जाना है।"

"क्यों?"

"आपकी माँ नहीं चाहतीं, मैं यहाँ रहूँ।"

"मैं यहाँ से कल ही चला जाऊँगा, यदि तुम्हें स्वीकार हो।"

चमेली रघुनन्दन की ओर देखती रही, फिर नीची निगाह किये सोचती रहकर बोली—

"मैं अभी कोई उत्तर नहीं दे सकती, रघुनन्दन बाबू!"

"कोई बात नहीं, इतनी जल्दी नहीं है। फिर भी मैं इतना कहना चाहता हूँ कि यदि तुम मुझे स्वीकार करो तो जीवन में मुझे कुछ भी पाना शेष नहीं रहेगा।"

"किन्तु मेरी प्राप्ति अशेष रह जायगी।"

"जिसे तुम अशेष मानती हो वह अशेष नहीं है, जीवन की पूर्णता है।" रघुनन्दन कहकर अपने कमरे में चला गया।

चमेली सोचती रही, यह क्या है? कैसी विडम्बना है? क्या यह मेरी परीक्षा है? नहीं, मैं पीछे नहीं लौट सकती। मुझे अब कुछ भी पाना नहीं है। मैं सब देख चुकी हूँ। यह सब निस्सार है, फिजूल है, व्यर्थ है। मैं नहीं जाऊँगी। अब वह मेरा रास्ता नहीं है, नहीं है, नहीं है। वह उठकर कमरे में टहलने लगी। टहलती ही रही। उसे कुछ

भी नहीं सूझ रहा था। उस समय काफी रात जा चुकी थी। हर ओर सुनसान था। कहीं-कहीं कुत्तों, गीदड़ों के भोंकने-चिल्लाने के स्वर सुनाई दे रहे थे। वह खिड़की से झाँककर गंगा का प्रवाह देखने लगी। किन्तु गंगा भी अंधेरे के कारण न बहती दिखाई दे रही थी, न उसका कोई रूप ही स्पष्ट था, जैसे अंधेरे की एक काली चादर दूर तक सारी जगह बिछ गई हो। न सामने पार के पेड़ थे, न किनारा, न बीच में गंगा का प्रवाह। केवल कल-कल की ध्वनि रह-रहकर उठती सुनाई दे जाती। चन्द्रमा भी उस दिन नहीं उगा था, जैसे रात से नाराज होकर कहीं चला गया हो। केवल उसके संयोग से उत्पन्न निशा के पुत्र तारे बाल खिल्य ऋषियों की तरह टिमटिमाकर हँस रहे थे। वह बाहर आ गई। सामने मन्दिर में भगवान् किवाड़ बंद करके सो रहे थे। वह मन्दिर के द्वार पर जाकर चौखट से सिर टिकाकर प्रार्थना करने लगी। 'वह क्या करे, क्या करे प्रभो? तुम्हीं बता दो।' उसका बेचैन मन बार-बार प्रार्थना करने पर भी अशान्त था। वहाँ से उठकर वह गंगा-किनारे चली गई। उसे कहीं कोई समाधान नहीं मिल रहा था। इसी समय उसे लगा जैसे कोई चल रहा हो। पीछे निगाहें फेरकर देखा तो अंधेरे में कुछ भी दिखाई नहीं दिया। वह फिर स्थिर होकर सोचने लगी। इसी समय उसे लगा जैसे किसीने उसके कंधे पर हाथ रखा। वह सिहर उठी—

"कौन ?"

"मैं रघुनन्दन।"

"तुम, इस समय ?"

"हाँ चमेली, जैसी तुम इस समय यहाँ, उसी तरह मैं भी।"

"जाइये, कोई देख लेगा।"

"इस समय देखने की दृष्टि किसीको नहीं मिली है—तुम्हारी गंगा को भी नहीं, ठाकुरजी को भी नहीं।"

"आप नास्तिक हैं।"

"मैं मनुष्य को मानता हूँ।"

रघुनन्दन का हाथ हटाकर चमेली खड़ी हो गई। उसके पहले जीवन में यह कुछ भी नया न था, किन्तु आत्ममंथन के बाद फिर उसी मार्ग को अपनाने में उसे हिचक हुई। वह अपेक्षाकृत दूर हट गई। रघुनन्दन वहीं खड़ा रहा। वे दोनों न जाने कब तक उसी अवस्था में खड़े रहे। रात का अंधकार छट रहा था। आकाश में एकादशी का चन्द्रमा निकल रहा था। तारे वैसे ही मूक होकर उन दोनों की गति-विधि देख रहे थे। गंगा उसी प्रवाह में बह रही थी। कभी-कभी कोई जलजीव ऊपर उछलकर पानी में डूब जाता। रघुनन्दन के मन में उत्सुकता जाग रही थी। उसे विश्वास था कि वह पास ही दूसरे बुर्ज पर बैठी नारी को पा सकेगा। स्वयं चमेली के मन में गंगा की तरह उथल-पुथल थी। कभी-कभी कोई विचार उस जलजीव की तरह आता और समाप्त हो जाता। वह इस समय शान्त थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह रघुनन्दन को स्वीकार नहीं करेगी। अब वह पीछे नहीं लौट सकती। उसकी धारणा तेजी से और भी दृढ़ होती जा रही थी। वह यह स्थान छोड़ देगी। उसने ध्यान में पाया कि मगर के ऊपर बैठी गंगा की मूर्ति उसकी ओर मुस्करा रही है और देखती जा रही है। एक के बाद एक वही मूर्ति सवारी के जलूस की तरह निकल रही है। और एक नहीं, इस प्रकार की अनन्त मूर्तियाँ प्रवाह में बह रही हैं। सभी जैसे उसकी ओर देख रही हैं। यदि एक मुस्करा रही है तो दूसरी क्रोध से, तीसरी उपेक्षा से, चौथी तीक्ष्ण दृष्टि से, पाँचवीं मर्माहत होकर बहती जा रही है। सारी जल-राशि पर गंगा-ही-गंगा की मूर्तियाँ हैं। और होते-होते वे सब एकमय एवं विशाल बन गई हैं। इस किनारे से उस किनारे तक वही एक विराट् रूप है। उसके अनन्त मुख हैं, अनन्त बाहु। उसका तेज जैसे कई सूर्यों के समान है और वह उसका ही एक तुच्छातितुच्छ अंश है।

चमेली वेसुध-सी बैठी रही। उसे अपने अंश का, अपने अस्तित्व का

ज्ञान नहीं रहा। न जाने कब तक बैठी रही। उसे लगा, वह आत्मा, मन और शरीर से एक बन रही है। वह अनन्त आँखों से उस रूप को देख रही है। उसमें स्वयं आनन्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आत्मजन्य इस बेसुधी में उसे कुछ भी बाहर का स्पष्ट बोध नहीं रहा।

इसी समय किसीने बड़े जोर से उसे झकझोरा। वह जागी तो देखा, चार-पाँच पुलिस के आदमियों के साथ हथकड़ी बन्द खैराघत खड़ा था। वह कह रहा था, "जिई है साब, चमेली ! जिई है।" उसके हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी थीं। उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया। एक ने धक्का देकर उसे उठाया। दूसरा—"बगला भगत बनी है।"

दरोगा—"ले चलो। देखो, भाग न जाय।"

तीसरा कह रहा था, "बड़ी जबर औरत है।"

सेठानी एक कोने में खड़ी थी। रघुनन्दन दरोगा से वारंट देख रहा था। वह 'नान-बेलेबल' (बिना ज़मानत का) वारंट था। कुछ आदमी और भी दूर खड़े तमाशा देख रहे थे। शिवचरन उदास मुख पकड़ा हुआ खड़ा था। चमेली चुपचाप खड़ी हो गई। देखते-ही-देखते सुबह हुई। बहुत से हजूम के सामने चमेली नीची निगाह किये खड़ी थी। लोग ताने कस रहे थे। कोई कह रहा था, "हमें नायँ मालुम ही, जि ऐसी औरत है।"

चमेली के पकड़े जाने की खबर गाँव-भर में बिजली की तरह फैल गई। सेठानी के मकान से निकलते-निकलते काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। बाहर बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। उसी एक गाड़ी में पुलिस ने घेरकर उसे बिठा लिया। रघुनन्दन की आवाज सुनाई दी, "दरोगा साहब', देखिये, इसके ऊपर कोई अत्याचार न हो। मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ।" जब बाजार से पुलिस की गाड़ियाँ निकलीं तो दोनों ओर लोग तमाशा देखने के लिए खड़े थे। विभिन्न प्रकार की अटकलबाजियाँ लगाई जा रही थीं। कोई हंसता था, कोई गालियाँ दे रहा था। चमेली चुपचाप नीची नज़र किये अपने से बेसुध बैठी थी, जैसे अब भी वह

गंगा की मूर्ति के दर्शन में मग्न हो। न उसे किसीके द्वारा की गई निन्दा का ज्ञान था न कुछ और। थाने में ले जाकर वह हिरासत में डाल दी गई। उसने देखा, पास ही सामने खेरापत, मंगनियाँ, होती, रिपुदमन बन्द हैं। पुलिस के बयानों से सिद्ध था कि उसने डाका डालने में भाग लिया था। रघुनन्दन के प्रयत्न से चमेली पर अत्याचार, मार-पिटाई नहीं हुई, लेकिन पुलिस 'रिमांड-पर-रिमांड' लेती गई। कई महीने केस चलाने में लग गए। अन्त में अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। मुजरिमों में केवल चमेली की तरफ से वकील किया गया। वही कभी-कभी आकर उससे बात करता। एक दिन रघुनन्दन वकील के साथ आया। जब वकील ने पुलिस में दिये बयान बदलकर दूसरे बयान देने पर जोर डाला तो उसने दृढ़ होकर कहा, "मैं झूठ नहीं बोलूँगी। जो कुछ हुआ है वही कहूँगी।" वकील और रघुनन्दन दोनों ने काफी समझाया कि यदि ऐसे बयान दिये गए तो सजा जरूर हो जायगी। फिर भी उसने नहीं माना। अन्त में दो-एक बातों के लिए मुश्किल से राजी करके वकील चला गया। रघुनन्दन निराश हो गया। वह चाहता था, चमेली बेदाग बरी हो जाय। इसके लिए उसने जी-जान से कोशिश की, उसे समझाया तो भी चमेली न मानी। हिरासत में भी उसे कोई दुख नहीं था। वह दिन-पर-दिन वीतराग होती चली जा रही थी। जिस दिन कोर्ट में उसने बयान दिये, उस समय अपने सब अपराध स्वीकार करते हुए उसने कहा—

"जो मैंने किया है वह तो मुझे भोगना ही है। आपको जो दंड देना हो दीजिये।"

इतना कहकर वह एक तरफ हट गई। उस समय उसके मुख पर न बेचैनी थी न ग्लानि। एक अपूर्व तेज से उसका मुख उद्दीप्त हो रहा था। जज ने अपना निर्णय देते हुए उसे अपराधी ठहराया, लेकिन उससे प्रभावित होकर केवल छः मास की सजा दी। अन्य अपराधियों को तीन-तीन वर्ष की कठोर सजा। वह जेलखाने भेज दी गई। अपील

के लिए उसने रघुनन्दन का कहना भी नहीं माना।

दुर्गा एक दिन फिर गाँव में लौट आया। कुछ दिनों तक शहर में इधर-उधर आवारा घूमने के बाद उसने एक जगह दरबान की नौकरी कर ली। जिस कोठी में उसे नौकरी मिली थी वहाँ सोने-चाँदी का व्यापार होता था। चाँदी की सिलें, सोने की छड़ें हर रोज वह लोगों को लाते-लेजाते देखता। एक दिन उसने साथी दरबान से पूछा, "रामनाथ, एक सिल कितने की होगी?" रामनाथ पुराना नौकर था। उसने बताया, "तीन-चार हजार की होगी एक सिल। और सोने की तो कई हजार की। लाखों का माल रोज आता-जाता है दुरगासिंह! यह चाँदी-सोने की कोठी कहलाती है।"

दुर्गासिंह सुबह से शाम तक माल निकालते देखता। वह सोचता, यदि एक भी सिल वह पा जाय तो फिर कोई काम नहीं करना पड़ेगा। मजे से गाँव में रहेगा। सबेरे से शाम तक जो अब वह कोठी की रखवाली करता है, वह काम उसे बिलकुल अच्छा नहीं लगता था।

तीन-चार दिन तक इधर-उधर मारे-मारे फिरने के बाद रामनाथ ने उसे गाँव का ईमानदार और मजबूत आदमी समझ सेठ से कहकर नौकरी दिला दी थी, क्योंकि दूसरे नौकर के गाँव से आने तक उसे दिन-रात ड्यूटी देनी पड़ती थी। इसी कारण दुर्गा को नौकरी मिली। सेठ ने कहा, "जिम्मेदारी तेरी है!" नौकरी मिल गई। दुर्गा बन्द कोठी में रात को पहरा देने लगा।

वह दिन में रोटी बनाता, सोता और रात को पहरा देता। एक दिन रामनाथ शाम से ही उसे ड्यूटी पर खड़ा करके किसी काम से शहर चला गया। दुर्गा ने देखा, एक पतला-दुबला आदमी कपड़े में लपेटे कोई चीज लिये कोठी से बाहर निकला।

कोठी के भीतर बिजली जल रही थी। बाहर अँधेरा था। उस

आदमी ने आते-आते आँगन में कुछ देर ठिठककर कपड़े से खोलकर छड़ें गिनीं और आगे बढ़ा। जैसे ही वह दरवाजे से आगे चला कि दुर्गा अपने को न रोक सका और उस पर टूट पड़ा। अचानक आक्रमण होने से आदमी अपने को न सँभाल सका। दुर्गा ने छड़ें छीनीं और बेतहाशा भागा। भागते-ही-भागते उसने सुना, वह उठकर चिल्ला रहा था। दुर्गा को पहले कुछ न सूझा, कहाँ जाय। अचानक वह स्टेशन की तरफ दौड़ा और बिना टिकट लिये सैकिंड क्लास के रास्ते से प्लेटफार्म पर आ गया। वहाँ काफी भीड़ थी। गाड़ी आने ही वाली थी कि इसी बीच उसने रामनाथ, सेठ और पुलिस के लोगों को प्लेटफार्म पर पाया। वह एक बैंच के नीचे छिपकर बैठ गया। गाड़ी आने पर जैसे ही वह भीड़ के लोगों के साथ गाड़ी में चढ़ने आगे बढ़ा कि रामनाथ ने दौड़कर जोर से एक थप्पड़ उसकी कनपटी पर मारा। भरपूर हाथ पड़ने से दुर्गा थोड़ी देर रुका कि रामनाथ ने कमर में हाथ डालकर उसे पीछे खींचा। इसी समय पुलिस आ पहुँची। छड़ें छीन ली गईं। दुर्गा गिरफ्तार कर लिया गया। घर में सुख के सपने देखने वाले दुर्गा ने कुछ दिनों बाद अपने को जेल के सीखचों में बन्द पाया। बाप ने सुना तो तेज बुखार में प्रलाप करते हुए रोगी की तरह लड़के की माँ, बहन, बाप-दादे, सभी को भरपूर सुमनांजलि अर्पित की।

विक्रमसिंह की यह आदत थी कि गुस्से में आकर वह अपने को भी नहीं बख्शता था। न वह उसे देखने गया, न कोई सहायता की। कचहरी से दुर्गा को सख्त सजा मिली। चक्की पीसते, बान कूटते, रस्सी बटते और मक्कारी में मार खाते-खाते वह दस नम्बरी बनकर निकला। छूटने पर उसे सप्ताह में दो बार थाने में जाकर हाजिरी देनी पड़ती। जहाँ कहीं चोरी होती, डाका पड़ता तो कुँवर दुर्गासिंह थाने में पकड़ बुलाये जाते। खूब धूल-दच्छिना होती, हालाँकि दुर्गा ने जेल से लौटकर कोई चोरी नहीं की थी। उसकी इच्छा अपना खेत सँभालकर जोतने की थी, पर थाने की बार-बार यात्रा और थानेदार के सत्कार ने उसे

एक पूरा चोर-डाकू बना दिया। उस दिन एक चोरी में जब उसकी पिटाई हुई तो उसने कहा, "थानेदार साब, तुम मोय जबर्दस्ती पकरि बुलावतौ, किसम लै लेउ साब, जो मैंने काऊ की कोई चीज उठाई होय।" थानेदार ने एक बेंत जड़कर गाली देते हुए कहा, "साले, तुम ठकुट्टे सब बदमाश और डाकू हो। खोदकर गाड़ दूँगा। तू है किस खयाल में ? बता वहाँ कौन-कौन था ?" पिटने पर भी जब दुर्गा कुछ न बता सका तो थानेदार ने उसे छोड़ दिया। दुर्गा की आँखों में गालियाँ और मार खाते-खाते खून उतर आया था। अन्त में उसने जाते-जाते थानेदार को चुनौती देते हुए चिल्लाकर दरवाजे से कहा, "सुन रे थानेदार, सारे अबई तो डाँके नायँ डारे हैं, अब तेरेई घर पहलौ डाँकौ परैगौ। सँभरि कें रहियो सारे।"

कहकर दुर्गा भाग गया। अब गाँव के बजाय जंगल उसका घर हो गया था। गाँव वालों ने एक दिन सुना कि दुर्गा ने दिन-दहाड़े डाका डाला और थानेदार का घर जलाकर सब माल लेकर भाग गया। अब दुर्गा आसपास के लिए एक भय हो गया। वह जहाँ-तहाँ डाके डालता, राहगीरों को लूटता। इसका फायदा उठाया उसके बाप विक्रमसिंह ने। पद्मपुरी का हर आदमी उससे डरने लगा था। बिना पैसा दिये बाजार से सामान आ जाता। अब वह मूँछों पर ताव देकर बाजार में निकलने लगा था। लोग उसे देखकर दुबक जाते। मन्दिर से बिना माँगे चढ़ावा आने लगा। चाहे जिसके खेत से चरी कटवा मंगाता। दुर्गा कभी-कभी आता तो उसके दोनों भाई बाहर पहरा देते रहते। पास ही एक सुरंग बन गई। वह दूर एक बीहड़ खंडहर में, जहाँ बहुत से पुराने मन्दिर बने थे, जाकर निकलती थी। दुर्गा प्रायः इसी खंडहर की सुरंग में रहता। उसके साथी भी थे, जो जब-तब पता लगाते रहते। अब घर में काफी खुशहाली थी। पास-पड़ोस के बामन-ठाकुरों के निठल्ले लड़के उसके साथी बन गए थे। ठाकुरों की गढ़ी के सब लोगों को कुछ-न-कुछ दिया जाता। गढ़ी के पुराने खंडहरों में रात को सोना-

चाँदी गलाया जाता। कुछ लोग दूर-दूर शहरों में गला हुआ माल बेचने। पुलिस आती और निराश होकर लौट जाती। एक-दो बार तलाशी लेने पर पुलिस के कुछ आदमी पीट भी दिये गए। सारे आस-पास के गाँव त्राहि-त्राहि कर उठे। पुलिस भी हाथ-पैर बचाकर छापे मारती, पर कुछ भी न होता। गाँवों का प्रत्येक सम्पन्न परिवार अनिश्चित जीवन बिता रहा था। जितनी ही पुलिस की चौकसी, रक्षा की तैयारी होती, उतना ही दुर्गा का दल भयंकर हो उठता। अब वह चिनौती देकर आने लगा। डाके से बचने के लिए लोग उसके आदमियों को पहले से रुपया भेज देते। लोगों की बहू-बेटियाँ असुरक्षित हो गई थीं। ब्याह-काज रुक गए, और होते भी तो डरते-डरते।

किसानों की दशा भी खराब थी। जितना परिश्रम करके वे अनाज पैदा करते, फसल पर उसमें से बहुत सा ठाकुर लोग छीन ले जाते। दुर्गा कहीं से एक औरत भी ले आया था। वह घर में रहती। किसीको भी मालूम नहीं था यह कौन है, कहाँ की है। पहले तो बाप को बुरा लगा, पर जब दुर्गा ने डांटा तो वह चुप हो गया। दुर्गा ने दाढ़ी बढ़ा ली थी। हिम्मत के काम करने के कारण वह काफी ऊँचा और रौबीला हो गया था। शराब से आँखें सदा लाल रहतीं। गलमुच्छों से वह और भी भयंकर लगता। कमर में पिस्तौल झूलती और कुरते के नीचे जालीदार लोहे का बख्तर। हत्या, मार-काट उसके खेल थे। बेगुनाह आदमियों पर गोली चला देना उसका शौक था। अब माँ-बाप उसके आगे थर्राते थे। पहले विक्रमसिंह को उसका डाकू बनना अच्छा लगा, पर धीरे-धीरे दोनों अपने करमों को कोसने लगे। दुर्गासिंह से उन्हें घृणा होने लगी। वह माँ के सामने अपनी रखैल का मुँह चूम लेता। एक दिन दोनों ने शराब पीकर नंगे होने का खेल खेला। माँ गाली देती हुई कोठरी में घुस गई। बाप बाहर चला गया। भाई तमाशा देखते रहे। अन्त में जब न रहा गया तो विक्रमसिंह की पत्नी ने कहा, "इससे तो अच्छा है दुर्गा मर जाय, इसे फाँसी हो जाय।"

"यह हमें मारकर मरेगा।" बाप ने जवाब दिया। और एक दिन तो अत्याचार की पराकाष्ठा हो गई। दुर्गा ने अपनी वीरता की निशानी के तौर पर लोगों की निकाली हुई आँखें, उखाड़े हुए सिर के बाल, काटे हुए औरतों के स्तन माँ को दिखलाये, तो वह डर से काँप उठी; उसे गश आ गया। खिलखिलाकर दुर्गा बोला, "अरे डर गई अम्माँ, जि नायँ दुर्गासिंह की माँ ससुरी।" उसने बेहोश माँ के माथे पर मज़ाक के तौर पर आँखें बिछा दीं, उसकी छाती पर स्तन रख दिए। बाप को पकड़कर उसके सिर पर लोगों के सिर के उखड़े हुए बाल बिखरा दिए और तमाशा देखने लगा। एक भाई ने कुछ कहने का साहस किया तो उसके मुँह में कपड़ा ठूँस, उसे बेंतों से पीटकर अधमरा कर दिया।

इच्छा होने पर गाँव की किसी भी स्त्री को पकड़ लाता। एक दिन एक बूढ़ा आदमी गंगास्नान करके लौट रहा था तो वह अचानक शराब पिये हुए उधर जा निकला और देखते-देखते उसे पकड़कर ऊपर को उछाल दिया, और दो-तीन बार उछालने के बाद गोली मार दी। लाश को लात मारकर उसी अकड़ से चला गया। लोग साँस साधे देखते रहे। किसीने उफ तक नहीं की।

पुलिस अत्याचारों की कहानी सुनकर भी तरह दे जाती, या इधर-उधर घूमकर लौट जाती। करती भी क्या? गाँव में उसका पता बताकर कौन अपनी मौत बुलाता? फिर भी सरकार ने दुर्गा को जीता या मरा पकड़ने के लिए पाँच हज़ार के इनाम का इश्तहार जगह-जगह लगाया। दुर्गा अब और भी सतर्क हो गया, और भी अत्याचार करने लगा। इसी बीच दुर्गा की माँ एक सवेरे घर से भागकर जिला सुपरिंटेण्डेण्ट-पुलिस से मिली और सब हाल सुनाया। सुपरिंटेण्डेण्ट ने इंस्पेक्टर-जनरल से ले जाकर उसे मिलाया। इंस्पेक्टर-जनरल ने प्रश्न किया—

"तू कौन है?"

"माँ।"

"माँ-ग्र-ग्र ! माँ होकर लड़के को पकड़वाना चाहती है ?"

"हाँ, बु लरिका नई है साब, राच्छस है, राच्छस।"

इसके साथ ही उसने लड़के के सारे दुष्कृत्य सुना दिए। इन्सपेक्टर-जनरल देर तक सोचता रहा। उसे हटाकर उसने सुपरिंटेंडेंट से बातें करके आगे का कार्यक्रम बनाया। अन्त में उसने पास आकर कहा, "अगर झूठ हुआ तो तुझे गोली से उड़ा दिया जायगा।" और एक शाम को दो सौ पुलिस वालों के साथ धावा बोल दिया। चारों तरफ पुलिस वाले सफेद कपड़े पहनकर यात्रियों के वेश में यथास्थान जम गए। गढ़ी घेर ली गई। विक्रमसिंह की पत्नी के कहने के अनुसार सुरंग और मकान सब छान डाले गए। दुर्गा और उसके साथियों का कहीं भी पता न था। वह रखैल औरत भी वहाँ नहीं थी। विक्रमसिंह और उसके दोनों लड़कों की जीभें काट ली गईं। मोहल्ले के लोगों ने डर के मारे अज्ञान प्रकट किया। इन्स्पेक्टर-जनरल और उसके साथी हैरान थे। ठकुरानी गौरी, विक्रमसिंह की पत्नी, जो हथकड़ी डालकर हिरासत में थी, सामने लाई गई। साहब गुस्से में भरकर बोला—

"बोल अब क्या कहती है ?"

"भाग गयौ है साब !"

"कहाँ भागा है ?"

"तुम मोय घोड़ा पै लै चलौ तो बताऊँ, वाकौ एक और अड्डौ है।"

"कहाँ है ?"

"मेरे साथ चलौ तो बताऊँ।"

अभी रात काफी थी। घना अंधेरा था। आकाश में तारे चमक रहे थे।

"कहाँ जाना होगा ?"

"पल्ली पार।"

"गंगा के पार ?"

"हाँ। म्हईं वाकी रखैल को घरु है।"

"गाँव में वह नहीं हो सकता ?"

"वाके पास खारन में।"

"क्या सबूत है ?"

"सबूत मैं नायँ जानूँ।"

साहब लोग सोच रहे थे, रात को गंगा के पार कैसे जाया जाय ? फिर यह जरूरी नहीं है कि वह वहाँ हो ही।

इसी समय पुलिस का थानेदार गाँव के एक आदमी को लेकर आया। उसने बताया, "यहाँ तीन कोस पर एक बनिये को दुर्गा के गिरोह ने लूटा है। बनिये और उसकी औरत-बच्चों को मार डाला है। मैं अभी उधर से ही आ रहा हूँ।"

"हो सकता है, वह इधर ही आये या गंगा के पार भागे।" पुलिस के लोग घोड़ों पर उसी तरफ चले। कुछ दूर जाकर गंगा के खारों में उन्हें एक जगह रोशनी दिखाई दी। पुलिस घोड़ों को वहीं छोड़कर धीरे-धीरे घेरा बनाकर पैदल चलने लगी। वह गंगा का किनारा था। डाकुओं का ही वह दल था। पुलिस ने घेर लिया। डाकुओं के आदमी भी दूर पहरा दे रहे थे। उन्होंने गोली चलाई। इधर से भी गोली चली। दूसरी तरफ पीछे से पुलिस ने दबा लिया। दस आदमी थे। दो गंगा में कूद पड़े—एक पानी में ही गोली से मारा गया, दूसरा गोता लगा गया। बाकी लड़ते रहे। दुर्गा उचक-उचककर अपने को बचाता धायँ-धायँ पिस्तौल छोड़ रहा था। उसके एक भी गोली नहीं लग रही थी, जैसे हर गोली चटककर नीचे जा गिरती। उसके फायर से कई पुलिस वाले जख्मी हो गए। अन्त में स्वयं पुलिस इन्स्पेक्टर-जनरल की एक गोली दुर्गा का कान फाड़कर भीतर घुस गई। उसके साथ ही अजस्र वर्षा की तरह गोलियों की बौछार में एक गोली उसकी नाक पर लगी, दूसरी माथे को फोड़ गई। साथी एक-एक करके गिर रहे थे। दुर्गा गिर पड़ा। पुलिस ने सबको बाँध लिया। पौ फट रही

थी। इन्स्पेक्टर-जनरल अपने साथियों के साथ जब गौरी को लेकर वहाँ गया तो उसने पूछा—

"तेरा लड़का कौनसा है ?"

"जि है मेरी कोख कूँ लजान वारो सत्यानासी।"

"यही दुर्गा है ?"

"जिही।"

सब लोग बाँधकर गाँव में लाये गए। दुर्गा उस समय तक मर चुका था। वह रखैल जिन्दा थी। बाकी लोग आखिरी साँसें ले रहे थे। आठों आदमी पुलिस की निगरानी में जिस समय ले जाये जा रहे थे, उस समय सारा गाँव उन्हें देखने उमड़ पड़ा था। गौरी की आँखों से दो बूंदें झलकीं, लेकिन वे नीचे तक भी नहीं पहुँच पाईं कि बीच में ही ओझल हो गईं। उसके दोनों लड़कों में से एक मर गया। साहब ने पूछा, "तुझे इसके मरने का अफसोस तो नहीं है ?" उसने कोई जवाब न देकर लड़के पर थूक दिया और गम्भीर हो गई, जैसे उसने कुपुत्र पैदा करके उसके मरने पर राहत की साँस ली हो। जैसे एक भयंकर महामारी से मुक्त होने पर आसपास जीवन में स्थिरता आती है वैसे ही लोग अनुभव करने लगे। जिन्हें दुर्गा की दया से कभी कुछ मिल जाता था वे फिर भूखों मरने लगे। शक में बहुत से लोग पकड़े गए। कुछ छूट गए, बाकी ने जेल में, अपना घर बनाया।

चमेली जेल से छूटी तो उसे लगा जैसे अब कहीं सहारा नहीं है। कहाँ जाय, क्या करे ? क्या गाँव में अब वह रह सकेगी ? इसी चिन्ता में वह जेल के फाटक के बाहर बहुत देर तक खड़ी रही। जेल के वातावरण ने उसके मन में चंचलता पैदा कर दी थी। भक्ति और शान्ति के भाव अब वैसे नहीं थे। उसने जेल में जो कुछ देखा, सुना,

उससे उसका मन दुनिया की तरफ लौटने लगा था। एक ही बैरक में बन्द बहुत तरह की औरतें नंगी-अधनंगी पड़ी रहतीं। बुरी से-बुरी गालियाँ, अश्लील काम-चेष्टाएँ जैसे उनके लिए साधारण-सी बात थीं। आपसी मैथुन में वे सभी को शामिल कर लेतीं। एक बाँझ स्त्री ने दूसरी स्त्री के दुधमुँहे बच्चे का इसलिए गला घोंट दिया कि उसके कभी बच्चा नहीं हुआ था। उसे डंडा-बेड़ी डालकर बन्द कर दिया गया। जेल में ही मुकदमा चलने पर उसकी सजा बढ़ा दी गई। अवसर स्त्रियाँ पुरुषों को पाने के लिए भहराई फिरतीं। जेल में भयंकर तथा साधारण अपराध करने वाली सभी स्त्रियाँ थीं। उनमें बहुत कम दूरी रहती। प्रति सप्ताह जो एक स्त्री उन्हें नेक और अच्छी बातें बताने सरकार की ओर से आती, उससे वे ऐसे प्रश्न करतीं कि वह शरम से गढ़ जाती। जो साधारण अपराध के लिए बन्दिनी की गई थीं वे भी नये अपराधों की बातें सीखतीं। चरखा चलातीं, चक्की पीसतीं, दरी बुनतीं, चटाई बनातीं और इसी प्रकार के और काम करती हुई भी वे मन से प्रतिदिन गिरती जाती थीं। अच्छी जिन्दगी जैसे वहाँ थी ही नहीं। साधारण-सी बातों में भी घृणित गालियाँ दी जातीं, जैसे वह सारा वातावरण ही बहुत दूषित और विषाक्त हो।

चमेली, जो जेल भोगकर पाप धोने की भावना से आई थी, थोड़े ही दिनों में उसे लगा कि वह अनन्त पापों की नदियों में बह रही है। कंठ-कंठ तक धीरे-धीरे डूब रही है। उसकी भक्ति-भावना धक्के-पर-धक्के खाकर जैसे चूर-चूर हो रही है। फिर उसके बहुत पुराने संस्कार धीरे-धीरे जागे। बहुत-कुछ कैदियों जैसी न बनती हुई भी धीरे-धीरे उसी रंग में रंगी जाने लगी। वह भूल गई कि कभी इन्हीं औरतों जैसी एक वह भी थी। फिर भी उसमें पिछले संस्कारों का एक संयम था, उसीसे वह कभी-कभी डूबते-डूबते सोचने लगती। अतीत की पवित्र स्मृतियों का ध्यान करके वह उन औरतों जैसी न बनने का निश्चय करती, लेकिन वह विचार देर तक न टिक पाता। अब रात में पड़ी

वह ललिता और ऐसे ही लोगों की बातें सोचती, अपने साथ बीते रस के क्षणों के चित्र बनाती। चित्रपट की तरह उसके जीवन की ये सब वासना-भरी बातें उसकी आँखों में घूमने लगतीं। धीरे-धीरे उसका मन रघुनन्दन की ओर खिचने लगा। अब वह लगातार इस कल्पना में लीन रहने लगी कि उसने रघुनन्दन की बातें न मानकर बहुत बुरा किया। कितने सुख के दिन होते वे! कितना रस मिलता उनमें! एक बार फिर उसका सहयोग पाकर वह वैभव के ऊँचे शिखर पर पहुँच जाती। रघुनन्दन उसकी आँखों में भूमने लगा। उसका अस्पष्ट चित्र धीरे-धीरे साफ दिखाई देने लगा। कितना सहायक है वह, कितना उत्तेजक, कितना स्नेही! अपने मानस-जगत् में चित्र बनाती वह रातों जागती। फिर भी ऐसा नहीं था कि वह अन्य औरतों की तरह बुरी हो गई हो। कभी-कभी उसका मन उस वातावरण से ऊब उठता। वह चाहती भाग जाय, किसी तरह भी इससे छुटकारा मिले। इसी बीच, एक दिन जेलर ने उसे जमादार बना दिया। इससे उसे कुछ शान्ति मिली। वह बन्दिनियों पर निगरानी रखती, उनसे काम लेती, उन्हें शासन में रखती। फिर भी वह गालियाँ नहीं दे पाती थी, डाँट नहीं पाती थी, पीट नहीं पाती थी। इसीसे वह अयोग्य सिद्ध हुई। वापस बैरक में भेज दी गई। लोग यथासमय उनमें से बहुत सी स्त्रियों से मिलने आते। चमेली को खयाल आता, क्या उससे मिलने वाला कोई नहीं है? कौन है जो आयेगा? उसे कभी रघुनन्दन का खयाल आता, पर वह भी कभी नहीं आया। शिवचरन और ललिता की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी। भेंट के एक दिन जब अन्य स्त्रियाँ अपने सगे-सम्बन्धियों से मिलने बुलाई गईं तो उससे भी कहा गया। चमेली ने कल्पना की, शायद रघुनन्दन हो। लेकिन फाटक पर मिला शिवचरन। वह भाई बनकर मिलने आया था।

उस समय शिवचरन का चेहरा बहुत काला पड़ गया था। बेतरतीब बाल, दाढ़ी बढ़ी, मूँछें बेतुकी इधर-उधर फैली हुईं। माथे पर सिकुड़न,

हाथ पतले, खुश्क होंठ। मैला कुरता और चीकट दुपल्लू टोपी। माथे पर चन्दन का पीला टीका। शिवचरन को देखते ही उसे याद आ गया कि इसीके सम्बन्ध में मुझसे एक बार पूछा गया था। देर तक एक-दूसरे को देखने के बाद चमेली ने पूछा—

"कैसा है शिवचरन ?"

"ठीकई ठीक है। मन में आई आयौ हूँ तौ मिल लऊँ।"

"क्यों आया था ?"

"एक मुकदमा में गवाई ही।"

"बहू कैसी है ?"

"वैसेई बिमार रहति है। बच्चा भयौ हो सो तौ मरि गयौ। अच्छौ ही है। वैसेई का कम हैं। लंगार है एक पूरी।"

"ऐसा क्यों कहता है ?"

"तू बता कैसी है ?"

"मुझे तो देख ही रहा है। थोड़े दिन बाकी हैं। फिर तो···" कहकर चमेली रुक गई।

"चौं, फिरि का है ? गाँव में नायँ रहैगी का ?"

"क्या है मेरा गाँव में शिवचरन ?"

"तौ औरउ है कऊँ का ? वा बनियें के संग रैवे की मर्जी होय तौ दूसरी बात है।"

"कौन बनिया ?" जानते हुए भी चमेली ने पूछा।

"अरे बुई सेठानी कौ छोरा।"

हँसकर चमेली ने कहा, "वह छोरा है ?"

"छोरई-सौ है चमेली ! दुबरी है गई है।"

"नहीं तो," अपने शरीर की ओर देखते हुए उसने जवाब दिया।

"मेरी आँखिन सूँ देखि। न वो रुआव है न वैसी आव। तेरे बाद सूँ मेरो मन नायँ लगै गाँव में। वु दुरगा तौ डाकौ डारन लगौ हो। बड़ी मुश्किल सूँ मरौ है।" इतना कहकर उसने दुर्गा की सारी कहानी

सुना दी। वक्त हो चला था। शिवचरन जाते-जाते बोला, "गाम में ई अइये भली!"

"देखा जायगा।" कहकर वह शिवचरन की आँखों से ओझल हो गई। वह देर तक उसे जाते देखता रहा।

शिवचरन के सम्बन्ध में चमेली ने कभी नहीं सोचा था। आज उसे देखकर उसने जाना, गाँव में यही एक मेरा आदमी है, जिस पर विश्वास किया जा सकता है। लेकिन यह भी कैसा है, क्या चाहता है, क्या सचमुच इसका प्रेम निःस्वार्थ है, यह वह नहीं जान सकी। बहुत देर तक पड़ी इसी तरह सोचती रही। और एक दिन वह जेल से मुक्त कर दी गई।

विचारों के उत्तरंग वेग में बहकर उसने फैसला किया, वह रघुनन्दन से मिलेगी। एक धर्मशाला में नहा-धोकर वह सीधी स्टेशन की तरफ चल दी। आगरा पहुँचते-पहुँचते वह सोचती रही—कैसे वह उससे मिलेगी, क्या कहेगी? लेकिन जब स्टेशन से उतरी तो उसके मन के वेग को एक झटका-सा लगा। सारा कल्पित भवन अपने-आप ढह गया। यह उसे बहुत ही मुश्किल लगा कि एक स्त्री अपने-आप किसीके सामने अपने को समर्पित करे। फिर भी वह बिना इच्छा के बढ़ती गई। कपड़े उसके पास बहुत नहीं थे। एक धोती और इसी तरह के कुछ कपड़े, एक लोटा और दरी बगल में दबाये वह तांगे पर बैठकर जब रघुनन्दन के महल से मकान के सामने पहुँची तो उसका सारा उत्साह क्षीण हो गया। बाहरी फाटक पार करके आँगन में पहुँचते ही एक नौकर ने रोका। अब वह क्या कहे, यही सोचती रही। नौकर ने फिर रोका।

"रघुनन्दन बाबू से मिलना है।"

"वे नहीं हैं।"

"कहाँ गये हैं?"

"बाहर।" नौकर ने कड़ा जवाब दिया और भीतर जाने लगा।

चमेली चुप रही। थोड़ी देर बाद बोली—

"कब आयेंगे ?"

"क्या काम है, तू कौन है ?" नौकर जीने में चढ़ गया। उसे सुनाई दिया, जैसे भीतर से किसीने नौकर से पुकारकर पूछा, "कौन है ?"

"न जाने कोई औरत है।"

हवेली में सन्नाटा छा गया। हवेली के आँगन में पाम के बड़े गमले लगे थे। एक तरफ कमरे की दीवारों पर बेलें चढ़ी हुई थीं। उनमें फूलों के गुच्छे झूल रहे थे। आँगन को छोड़कर सीढ़ियाँ चढ़कर बड़ा चबूतरा, जिस पर बीच में एक गोल मेज और चमड़े से मढ़े मूढ़े बिछे थे। जरा हटकर दो-तीन बेंच रखे थे। उसके साथ ही बड़ा हॉल कमरा, जहाँ दरी पर सफेद चादरें बिछी थीं। उनके सहारे सामने गाव-तकिये चमक रहे थे। सवेरे साढ़े सात या आठ का समय था। दो-एक बच्चे ऊपर मकान से उतर स्कूल जाने के लिए नौकर को पुकार रहे थे। वह हटकर दरवाजे के पास आ गई। इसी समय एक घोड़े की लैंडो बाहर आ खड़ी हुई और बच्चे गाड़ी में बैठकर चल दिए। दर-बान दरवाजे की कोठरी में बैठा आग जला रहा था। धुआँ कोठरी में भरने के कारण साफ कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। चमेली कोठरी के पास आकर धीरे से बोली—

"अरे भाई सुनो !"

भीतर से ही चूल्हा फूंकते हुए दरबान ने कर्कश स्वर में कहा—

"क्या है ?"

"ज़रा बाहर आओ।"

"ठहर जा।" कहकर वह चूल्हा फूँककर बाहर आया और सादा वेश में एक औरत को देखकर घूरते हुए पूछने लगा—

"क्या बात है ? क्या काम है ?"

"रघुनन्दन बाबू से मिलना है।"

दरबान ने और भी घूरकर उसे देखा और उसकी बात का उत्तर दिये बिना ही सशंक दृष्टि से कहा—

"तुम कौन हो ?"

"उनसे मिलना है।"

"बाहर गये हैं बाबू। तुम्हें क्या काम है ?"

"ऐसे ही मिलना है। कहाँ गये हैं ?"

उसने चिल्लाकर कहा, "ह्यां नईं हैं।" कहकर भीतर जाकर चूल्हा फूँकने लगा। वहीं से थोड़ी देर बाद बोला—

"बिलायत गये हैं।"

चमेली धीरे-धीरे गली के मोड़ पर आकर खड़ी हो गई। पहले हवेली में घुसते हुए उसे एक प्रकार की घुटन-सी मालूम हो रही थी। मन में शंका, डर था। सहमी हुई-सी बिना इच्छा के गई थी। अब उसे बाहर खड़े लग रहा था जैसे यह ठीक ही हुआ। पर अब आगे क्या ? कहाँ जाय ? इसी समय उसने देखा, सेठानी का बड़ा लड़का, जो अब पहले से और भी मोटा हो गया है, मलमल का बारीक कुरता और भीतर जालीदार बनियान पहने कुछ लोगों के साथ बाहर से गली में आ रहा है। वह शायद घूमकर आ रहा था। कुरता पसीने से तर, मुँह पर पसीने की बूँदें रूमाल से पोंछता, बेंत हिलाता और साथियों से बातें करता गली में घुस गया। चमेली फिर भी खड़ी रही। ताजी जलेबी, समोसा, कचौरी, दाल-मोंठ लिये खोमचे वाले गलियों में पुकार रहे थे। सामने हलवाई की एक दुकान में कड़ाही में दूध औट रहा था। दही या लस्सी वाले गाहक खड़े बातें कर रहे थे। दुकानदार दही तोलता, लस्सी बनाता, बीच-बीच में कड़छे से दूध चलाता और सामान तोलने लगता। नौकर पेड़े-बरफी के थाल तरोनों पर जमाकर रख रहा था। साथ ही दूसरी दुकान में जलेबियाँ उतर रही थीं। स्कूलों के लड़के दो-दो चार-चार पैसे की जलेबियाँ खाकर स्कूलों की ओर दौड़ रहे थे। चमेली काफी देर तक खड़ी रही। रघुनन्दन बिलायत गया है, न मालूम कब

लौटेगा। एक बार मिल सकता तो कितना अच्छा होता ! वह उस घर की एक-दो औरतों को भी जानती थी, इस बड़े लड़के को भी।

पचास रुपये उसकी जेब में थे, जो उसे जेल से निकलने पर दिये गए थे। वे कहाँ से आये, किसने जमा किये ? जेल जाते समय उसके पास तो केवल पाँच थे। उसे खयाल आया, बाकी के रुपये शायद रघुनन्दन ने ही उसके लिए जमा किये हों। जेल से बाहर आने के बाद कल उसने रोटी खाई थी। उसकी इच्छा हुई, वह भी जलेबी खा ले, पर वह भीड़ देखकर घबरा गई। उसे लगा, न जाने लोग उसे देखकर क्या सोचें ? पोटली उसकी बगल में थी। खड़े-खड़े उसने अनुभव किया जैसे लोग उसकी ओर गौर से देख रहे हैं। और एक ही नहीं कई, जैसे हर आदमी जो उस तरफ से गुजर रहा है उसे घूर-घूरकर देखता जा रहा है। दिन की चहल-पहल बढ़ रही थी। लोगों का आना-जाना शुरू हो गया था। इसी समय हवेली का नौकर गली से आया तो उसकी निगाह चमेली पर पड़ गई। वह ठिठका। चमेली को भी झिझक लगी। वह बिलकुल पास आकर उसे नीचे से ऊपर तक देखकर बोला—

"तू ही अभी हवेली में गई थी ? बड़े सेठ आ गए हैं घूमकर।"

"हाँ।"

"बबुआ भैया से क्या काम था ?"

"ऐसे ही मिलना था।"

"तू उनकी कौन है ?"

चमेली को गुस्सा आया, लेकिन वह पी गई। बोली—

"वे एक बार पद्मपुरी गये थे।"

"पद्मपुरी तो मैं भी गया था अभी, बड़ी माँजी को लेने।"

"बड़ी माँजी यहीं हैं क्या ?"

"हाँ कल ही आई हैं, बबुआ भैया का ब्याह जोर-जबरदस्ती किया जा रहा है न !"

"वे तो विलायत गये हैं।"

"इसी हफ्ते लौट रहे हैं। बड़े सेठजी दिल्ली जा रहे हैं उन्हें लेने। हवाई जहाज से आ रहे हैं न! वे तो ब्याह नहीं करना चाहते।"

चमेली की इच्छा हुई, पूछे कौन लड़की है, कहाँ ब्याह हो रहा है? पर उसने यह सब-कुछ भी नहीं पूछा। चमेली को चुप देखकर नौकर घूरता हुआ जाने लगा, तो चमेली ने पुकारकर बुलाया और कहने लगी—

"रघुनन्दन बाबू से मेरी एक बात कहोगे?"

"बबुआ भैया से?"

"हाँ! उनसे कहना, जिसकी तुमने मदद की थी वह आई थी।"

"अच्छा, कह दूँगा। लेकिन....." वह चमेली को देखने लगा।

"बस इतना ही कह देना।"

"अच्छा!" नौकर सीटी बजाता जलेबी वाले की दुकान पर चला गया।

चमेली ताँगा करके स्टेशन आ गई। जैसे ही उसने कदम रखा तो गाँव-भर में एक तहलका मच गया। किसी ने कहा, "छिपी रुस्तम है।" दूसरा बोला, "डाकू है।" तीसरे ने 'बदमाश' कहकर पुकारा। गरज यह कि गाली, निन्दा, घृणा, उपेक्षा से उसका हर जगह स्वागत हुआ। उसके घर में शिवचरन के परिवार ने अड्डा जमा रखा था। उसकी बीमार पत्नी खाट पर लेटी थी। एक लड़की चूल्हा जला रही थी। दो नंगे बच्चे आँगन में मिट्टी से सने खेल रहे थे। चारों तरफ कूड़े का ढेर, जगह-जगह राख पड़ी थी। मैले चीथड़ों पर उसकी बहू हाथ का तकिया दिये कराह रही थी। चमेली जैसे ही घर में घुसी तो पहले लड़की ने देखा। चिल्लाकर बोली—

"अम्माँ, जि आई हैं!"

माँ ने आँख खोलकर देखा तो बोली—

"कौन! कौन हो तुम?"

"चमेली ।"

"डाकू चमेली !" वह चिल्ला पड़ी । उठकर बैठ गई । इसके बाद कहने-न-कहने वाली बातों के साथ एक स्त्री दूसरी की जितनी भी निन्दा कर सकती थी करती हुई बोली—

"छिनार, डाकू औरत कौ ह्याँ काम नायँ । मेरौ बाल-बच्चन कौ घरुए । जाओ । मकान हमन्ने मोल लयौ है । काऊ रांड के दवैल नायें । निकरौ । लल्ली, याइ निकारि तो दै । दरवज्जौ बन्द करि दै । हाय, राम कैसी-कैसी छिनार हैं ।" और भी न जाने क्या-क्या कहती लेट गई । लड़की दरवाजा बन्द करने को उसके सामने आकर खड़ी हो गई । चमेली चुप थी, एकदम गुमसुम । उसके मन में आया कह दे, "मकान मेरा है । तुम्हीं निकल जाओ ।" पर वह कुछ कह न सकी । आखिर उसने पूछा, "शिवचरन कहाँ है ?"

औरत सिर उठाकर बोली, "हुंगे कऊँ । तोय का करनौ है, जा । निकरि जा । निकरी कें नायँ । लूगरा दै दउँगी राँड की……।" चमेली अप्रत्याशित अपमान से जल उठी । एक बार उसके जी में आया, वह डटकर बैठ जाय । फिर न ज़ाने क्या सोचकर बाहर आई तो लड़की ने धप्प से किवाड़ बन्द कर दिए । बाहर खड़ी होकर उसने सुना, वह शिवचरन को भी गालियाँ दे रही थी । चमेली पोटली दबाए बाहर आई तो बाहर ही खड़ी रह गई । गली से जो कोई निकलता वही दूर जाकर चिल्लाता हुआ कहने लगता, "डाकू चमेली आय गई है, डाकू । याई ने डाके डरवाये हैं, चमेली ने ।" लड़के चिल्लाते हुए बाजार में चले गए । मोहल्ले में आवाजें सुनकर औरतें घरों से बाहर निकल पड़ीं । एक स्त्री बाहर निकलकर दूसरी को सुनाती हुई कहने लगी—

"अब नायँ या गाम में रैवे कौ धरमु । हमन्ने कबहु नायँ जानी ही कें जि ऐसी होयगी । सबरे गाम कूँ लजायौ है या नें ।"

दूसरी बोली, "बड़ी जमामर्द है जि चमेली । मैंने कई न तोसूँ सैकरन घर घालें भई है । न जाने कहाँ-कहाँ को पानी पियौ है । कौन-

कौन कूँ करौ है।" तीसरी कह रही थी, "हाय मेरी मैया, जि फिर आय गई। देखौ तौ कैसी सांडिनी-सी फिरतिये। याइ नायें हया-सरम। आदमिन में ऐसे डोलतिये का करूँ। अरे अब जि जाय कां रई है। वा सिवचन्ना कूँ पैलें तौ बसाय दीन्हौं, अब बिचारे कूँ निकारिवे आई होयगी।"

इसी प्रकार की बातें सुनते-सुनते उसका सिर भन्ना उठा। वह चुपचाप घाट की तरफ चल दी। शिवचरन घाट पर बैठा था। लोग नहा रहे थे। शिवचरन ने देखा तो बोला—

"आइ गई चमेली, लै बैठि।"

चमेली पसीने-पसीने हो गई थी। लोगों ने घूरकर देखा। कोई देखता ही रहा। दूर से एक बोला—

"सिवचरन, बचिके रहियै। नायँ तौ तूऊ जेल जायगौ सारे।"

शिवचरन ने कोई परवाह नहीं की। बोला, "घर नायँ गई?"

"गई थी।" कहकर धोती के आँचल से चमेली पसीना पोंछने लगी। पोटली उसने तख्त पर रख दी। उसे लगा जैसे वह पागल हो जायगी। लोग नहाते जा रहे थे, आवाजें कसते जा रहे थे। यात्रियों ने सुना तो वे भी कानाफूसी करने लगे। कोई कह रहा था, "बड़ा बुरा जमाना है भैया! हमने तो पहली बार सुना कि औरतें डाके डालती हैं।" शिवचरन नहाने पर एक यात्री के चन्दन लगाने लगा। एक तरफ कुछ लोग बैठे भांग घोट रहे थे, वे चमेली पर फबतियाँ कसने लगे। एक पास आकर बोला—

"अब का करैगी चमेली?"

दूसरे ने कहा, "अरे वा सेठानी कौ छोरा सलामत रहै, याइ का परवा है, मिली नायँ वासूँ?"

"मिली होयगी। मिली क्यों न होयगी?" तीसरे ने उत्तर दिया।

"तौ वाने रखौ न होयगौ।" चौथे ने दहाड़कर कहा। चमेली चुप बैठी रही। उसकी आँखों में आँसू आ गए। उसे लगा, मानो हृदय फट

जायगा। शिवचरन असहाय-सा उसकी ओर देखने लगा। उसने एकाध बार जवाब दिया तो लोग उसका भी मजाक उड़ाने लगे। वह चुप हो गई। फिर तो सहानुभूति का एक वाक्य भी उसके मुँह से न निकला। जो आता वही चमेली को देखकर कुछ-न-कुछ तीखी बात कहता। अपमान का घूँट कितना कड़वा होता है, कितना विषाक्त, कितना तेज, यह उसने पहली बार जाना। उसे लगा जैसे सारा संसार उससे नफरत करता है, सब उसे देखकर गालियाँ दे रहे हैं। वह बहुत देर तक पत्थर की तरह निढाल होती हुई भी बैठी रही। एक बार तो उसे लगा जैसे वह गिर पड़ेगी। लड़के नहाते-नहाते "चमेली डाकू आय गई, अब नायँ खैर" कहकर ऊँचे से कूद रहे थे और बातों-बातों में चमेली का नाम लेते।

इसी समय मनीराम उधर से आ निकला तो चमेली के पास आकर खड़ा हो गया। देर तक देखने के बाद शिवचरन से कहने लगा, "अब नईयें बु बात सिवचरन, भिनकने लगी है अब तो।" इतना कहकर उसने थूक दिया। चमेली को बड़ा गुस्सा आया। उसके जी में आया, उठकर इस मनीराम के बच्चे के एक थप्पड़ रसीद करे। इसी समय शिवचरन बोल उठा, "मों संभारिकैं बात करि रे बनिया! सारे, तैंने समझि का रखी है?" शिवचरन भरा बैठा था। कमजोर समझकर मनीराम को गालियाँ देने लगा। इसी समय एक ने दूर से कहा—

"चलौ जान देउ मनीराम, बोलौ मती, मार खायबे के काम मति करौ। कोई द्वै धौल धरि देगौ। देखे नायँ तैंने सिवचरन के जौहर।"

मनीराम दब गया। थोड़ी देर खड़े रहने के बाद खिसियाता हुआ चला गया। स्नानार्थी आते-जाते उसे देखकर कुछ-न-कुछ कहते। प्रत्येक व्यक्ति का अपमानजनक वाक्य उसके सिर पर हथौड़े की तरह पड़ रहा था। वह भी वाक्यबाणों से छलनी की तरह निरंतर घायल हो रही थी। स्टेशन से तीन-चार मील गाँव तक आते वह काफी थक गई थी, फिर गाँव में घुसते ही उसके साथ हुए व्यवहार से उसका रहा-

सहा साहस भी टूट गया। एक बार उसके जी में आया, वह सबके सामने लोगों को गाली देती हुई गंगा में कूद पड़े, प्राण दे दे। अपार दुख से उसका धीरज टूट गया। जब उससे और न सहा गया तो वह गंगा के किनारे टीले के ऊपर चल दी। शिवचरन चाहने पर भी उसे न रोक सका। वह चलते-चलते एकान्त पाकर पेड़ की छाया में बैठ गई। सारा शरीर थककर चूर हो गया था। जब बैठा न गया तो पोटली सिरहाने दबाकर लेट गई और फूट-फूटकर रोने लगी। वेग अधिक बढ़ते ही अपने को न रोक सकी। जोर-जोर से रोने लगी। बहुत देर तक रोती रही और इतना रोई कि सिरहाने की पोटली भी भीग गई। इसी बीच न जाने वह कब सो गई। आँसुओं से वक्षस्थल और धोती का आँचल तर हो गए थे। दोपहर होने आ गई। कौए पेड़ पर बैठे काँव-काँव कर रहे थे। धीरे-धीरे वे नीचे उसके पास आये। उसमें साँस चलती देखकर हट तो गए पर बिलकुल नहीं हटे। उसकी आँख खुली तो प्यास मालूम होने पर ओक से गंगाजल पिया, मुँह-हाथ धोये। फिर ठंडी हवा पाकर वह किनारे पर आ बैठी। भूख उसे लग रही थी। एक भयंकर स्वप्न की तरह सबेरे की बातें उसके दिमाग में घूम रही थीं। रोने से उसका जी हल्का जरूर हुआ, किन्तु अपमान, निन्दा का भयावह रूप उसे दबोचे जा रहा था। वह समझ नहीं रही थी क्या करे, कहाँ जाय ? लोगों की निन्दा, उपहास, घृणा, व्यंग्य से उसका जैसे रोम-रोम बिंध गया हो। उस एकान्त में भी आँख मीचते ही उसे लोग उपहास, नफरत करते दिखाई देते। उसके कानों में वे स्वर गूँजते, कल्पना में उसे टोंचते। जैसे वह हत्यारी हो, भयंकर नारी हो, समाज से पतित हो। वह अपने को स्वस्थ बनाने का जितना ही प्रयत्न करती, उतनी ही उसकी पीड़ा बढ़ती जाती। उसका रोम-रोम जल उठा। उसे लगा, जैसे सामने बहती गंगा की लहरें उसका उपहास कर रही हैं। हवा का हर झोंका उसे टोंच रहा है। पेड़ों पर बैठे कौए उसे गालियाँ दे रहे हैं। झाड़ियों की शाखाओं में होने वाली खड़-खड़

उसे भगा देना चाहती है। इतना अपमान, इतनी प्रतारणा, इतनी निन्दा जैसे गिरोह बाँधकर उस पर टूट पड़ी हो। वह जड़ की तरह बैठी रही। भीतर तूफान उठ रहे थे, जैसे शोक की अन्तर्ज्वाला धू-धू करके उसे जलाये डाल रही हो। उसे लगा जैसे वह बेहोश हो रही है, डूब रही है। न जाने कब तक बैठी-बैठी लेट गई। जब उसे होश आया तो भूख की आग उसे व्यथित करने लगी। पिछले तीन दिन से उसे कुछ भी खाने को नहीं मिला था। फटी आँखों से वह पेड़ों को देखती रही। पत्ते गिर रहे थे उसकी देह पर, उन्हें हटाने की भी उसमें शक्ति नहीं थी। धीरे-धीरे जैसे सूखे पत्तों में ढक गई। दूर झींगुर झंकार रहे थे। कभी-कभी कोई कीड़ा सर्र करके इधर-से-उधर निकल जाता। एक बार उसे लगा जैसे कोई कीड़ा उसके ऊपर रेंग रहा है। फिर भी वह पड़ी रही। आधी बेहोशी की अवस्था में उसे उस समय भान हुआ जब उसका नाम लेकर किसीने पुकारा। जवाब देने की सामर्थ्य उसमें नहीं रही थी। उसने धीरे से मरी आवाज में 'हाँ' कहा और आँखें फाड़कर देखने लगी। वह शिवचरन था।

"कैसी तबियत है चमेली ?"

चमेली ने कोई उत्तर नहीं दिया और शिवचरन को देखती रही। शिवचरन ने पोटली खोलकर कहा—

"लै खाय लै। तोकूँ ई लायौ हूँ।"

वह हिम्मत करके बिना बोले उठी और खाने बैठ गई। इच्छा रहते हुए भी उससे खाया न गया जैसे किसीने गला सीं दिया हो।

शिवचरन ने लोटे में पानी दिया और दो घूँट पीकर निढाल लेट गई। शिवचरन बैठा रहा। वह चाहता था चमेली से बात करे, अपने सुख-दुख की कथा सुनाए, आज उसकी औरत ने जो बुरा-भला कहा वह कहकर अपना जी हल्का कर ले। पर चमेली ने न कुछ सुना और न कुछ बोली ही।

रात ऊपर बढ़ रही थी। अमावस का अंधेरा जैसे सारे वातावरण

को पी रहा था। धीरे-धीरे आसपास का दीखना भी बन्द हो गया। चमेली अब भी पड़ी थी। बहुत देर बाद शिवचरन ने कहा—

"यहीं रहैगी का ?"

चमेली ने कोई जवाब नहीं दिया।

देह हिलाकर शिवचरन ने फिर कहा, "ऊपर जोगिनी कुठरिया है, वामें परि रहै तो ठीक रहैगी।"

एक बार चमेली ने 'हाँ' कहा, और चुप हो गई। शिवचरन ने आव देखा न ताव, उसे उठाकर कोठरी के चबूतरे पर जा लिटाया। चमेली अब भी चुप थी। शरीर छूते और उसे उठाते हुए शिवचरन को रोमांच हो आया। उसका उन्मादी मन अस्थिर हो उठा। चमेली लेटी थी। वह पास बैठा था। दूर पर कुत्ते भौंक रहे थे। पास गीदड़ों के दौड़ने और उनके बोलने की आवाजें आ रही थीं। रह-रहकर गंगा के प्रवाह में छप-छप की आवाज सुनाई दे जाती। शिवचरन यह सब-कुछ भी नहीं सुन पा रहा था। उसके मन में चमेली के प्रति उद्दाम अनुराग उठ रहा था। ऐसा मौका भी कभी नहीं मिला था। उसने जगाने के उद्देश्य से चमेली की देह छुई, किन्तु वह अचेत थी या नींद में, वह कुछ भी नहीं बोली। शिवचरन बहुत देर तक बैठा रहा। उसके जी में आया कि चमेली को उठाकर गोद में भर ले, किन्तु वह ऐसा न कर सका। उसकी आँखों में चमेली के कई रूप झाँक गए। उसके भक्तिपूत तेजस्वी चेहरे ने शिवचरन को डरा दिया। इसी समय उसे लगा जैसे लहराता हुआ कोई कीड़ा उसके ऊपर रेंग रहा है। वह झटककर खड़ा हो गया। डर से पसीना आ गया। अँधेरा और भी घना हो गया था। वह चिल्लाकर बोला—

"चमेली, मैं जाऊँ हूँ।"

चमेली ने उसी अवस्था में पड़े-पड़े कहा, "हाँ।"

चमेली पड़ी रही। नहीं कहा जा सकता कि वह सो रही थी या निढाल पड़ी थी। सोते-सोते उसे लगा, सामने औघड़ बाबा खड़े हँस रहे

हैं। वैसी ही आकृति, वही रूप। वह 'महाराज' कहकर उनके पैरों पर गिर पड़ी और रोती हुई कहने लगी, "मैं बड़ी दुखी हूँ महाराज! बड़ी दुखी हूँ!"

उसे सुनाई दिया, 'धीरज धर, सहने से पापों का क्षय होता बेटी!'

"मेरा हृदय कष्ट से फटा जा रहा है। मैं क्या करूँ, क्या करूँ महाराज?" बहुत देर तक न जाने क्या-क्या कहती रही। फिर सिर उठाकर देखा तो कहीं भी कुछ नहीं था। औघड़ बाबा दूर-दूर तक कहीं नहीं दिखाई दिए। यह क्या, क्या मैंने सपना देखा? नहीं, वे स्पष्ट यहीं दिखाई दिए थे। उसने आँखें मलीं जैसे जाग रही हो। वह निश्चय नहीं कर सकी कि वह सपना नहीं था। वह बार-बार उनके शब्दों को दोहराने लगी, 'धीरज धर, सहने से पापों का क्षय होता है, बेटी!' 'सहने से, कष्ट सहने से' ये शब्द उसके मस्तिष्क में गूँजने लगे, लेकिन अब उसके भीतर एक शान्ति थी। उसे लगा, कल का दिन एक क्षुद्र दिन था, एक कल्पना, एक अतिरंजित अशान्ति का चित्र। उसका मन निर्मल था। सवेरे के काम से निपटकर उसने स्नान किया तो उसे लगा जैसे उसका कायाकल्प हो गया है। उसके मन में न किसीके प्रति द्वेष है न राग। जिन लोगों ने कल उसे गालियाँ दी थीं, उसकी निन्दा की थी, उसका अपमान किया था, आज उसका कोई भी अंश उसके मन में नहीं है। वह विरक्त हो गई है, वीतराग हो गई है। बैठे-बैठे जब धूप तेज हुई तो रात वाले योगिनी के मठ में उसने आसन जमाया। वहीं पड़ी रही। प्यास लगने पर पानी पी लेती। वीतराग औघड़ बाबा के शब्द उसके दिमाग में चक्कर काट रहे थे। उसके हृदय में अब उथल-पुथल नहीं थी। वह धीरे-धीरे अपना मार्ग निश्चित कर रही थी। इसी समय उसने देखा, शंकरानन्द मठ के बाहर खड़ा है। उसकी आँखों में वही धूर्तता है। उसने कहा—

"मुझे नहीं मालूम था तू ऐसी भी है। मैंने तो कल सुना। अब

फिर कोई प्रपंच रच रही है क्या ?"

अपने-आप खड़े-खड़े हँसा और कहने लगा, "औरत की जात पर कभी विश्वास न करे, यह बाहर से राम-राम भीतर से छुरी चलाती रहती है।" वह और भी बहुत सी तीखी और व्यंग्य-भरी बातें करता रहा। उसका एक-एक वाक्य विष से बुझा हुआ था। अन्त में उसने कहा, "उस सेठ को भी छोड़ दिया, तुझे एक से सन्तोष कहाँ ?" वह फिर हँसा तो उसकी बत्तीसी बाहर निकल आई। वे बनावटी दाँत थे। चमेली उसे शान्त भाव से देख रही थी। झपटकर फिर मुँह में दाँतों को लगाते देखकर उसे हँसी आ गई। शंकरानन्द खिसिया गया। अन्त में चमेली ने कहा—

"और जो कहना है वह भी कह ले, शंकरानन्द !"

शंकरानन्द बहुत देर तक खड़ा बड़बड़ाता रहा। चमेली सब चुपचाप सुनती रही, उसने हाथ-भर जोड़ दिए। उसे लगा जैसे यह सब उसका परीक्षा-काल है। वह उठी और यात्रियों के नहाने वाले घाट पर जा बैठी। शिवचरन ने बताया, "ललिता पंडित बहुत बीमार है। अब-तब है रई है।" चमेली ने सुना तो बिना कहे चल दी बाजार में। उसे देखते ही जैसे लोगों की जबान खुल गई। कल की सब बातें दुहराई जाने लगीं। एक तूफान-सा उठा और धीरे-धीरे समाप्त हो गया। वह गली-मोहल्ले पार करती बढ़ने लगी। वर्षा की झड़ी की तरह निन्दा-गालियों की बौछार उस पर पड़ रही थी। आदमी दुकानों से निकलकर ताकते। मोहल्लों में औरतें-बच्चे ताने कसते, 'डाकू, डाकू चमेली' कहकर चिल्लाते। किन्तु वह चुपचाप चली जा रही थी नीची निगाह किये। रास्ते में उसने एक जगह देखा, एक मरियल कुत्ता जीभ निकाले अन्तिम साँस ले रहा है। वह ठहर गई और दुकान से दूध लेकर पिलाती हुई उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। लोग चिल्ला उठे, "नये हथकंडा हैं याके। नौ सौ चूहे खायें भई है।" वह आगे बढ़ी।

मोहल्ले में किसीका बच्चा चबूतरे से गिरा जमीन पर पड़ा रो रहा

था। चमेली ने दौड़कर उठा लिया और झाड़-पोंछकर पुचकारती उसकी माँ को पुकारने लगी। माँ ने बाहर चमेली को बच्चा लिये देखा तो झपटकर उसकी गोद से छीन लिया और लगी गाली देने। उसने बच्चे की माँ की तरफ मुस्कराकर देखा और आगे बढ़ गई।

ललिता पंडित पिछले तीन दिन से बेहोश पड़ा था। लड़का और बहू उसके पास थे। सारा कमरा बदबू से भर रहा था। एक तरफ मैले से सने हुए उसके बिस्तर पड़े थे। चमेली ने जाते ही पूछा, "वैद्य को नहीं दिखाया ?"

"दिखावते कहाँ सूँ, पैसई नायें। न जानें कहाँ गाढ़िकें धरि आयौ है जि डुकरा ?"

पत्नी ने हाथ मटकाते हुए कहा, "इनई के पास सब माल-मतौ होयगौ। इनेईंतौ देत रहे। मरिबे कूँ ह्यां आय गये। हम पै का धरौ है, तुम जानौ।" लड़के ने चमेली की तरफ देखा, जैसे पत्नी की बात का समर्थन कर रहा हो। चमेली ने वैद्य को बुलाया और उसने एक मँहगी दवा लिख दी। चमेली ने रुपये देते हुए कहा, "जा, दवा ले आ।" इसी बीच उसने कमरा साफ किया, ललिता के बिस्तर ठीक किये, सब कपड़े धोये और पथ्य दिया। तीन दिन और तीन रात चमेली ललिता की सेवा करती रही। चौथे दिन उसने आँखें खोलीं। फिर भी लड़का और पत्नी जब-तब कह बैठते, "कक्का सूँ पुरानी दोस्ती निभाई जाय रई है, और का।" चमेली सुनती और चुप हो जाती। ललिता के ठीक होते-होते लीलाधर पंडित को हैजा हो गया। उनके और कोई नहीं था। पड़ोसी डरकर भाग गए थे। जब भयंकर बदबू से भरे हुए मकान में चमेली ने प्रवेश किया तो उसका जी घबरा उठा। कूड़ा-कचरा और अँधेरे से भरी हुई कोठरियाँ। दालान में जहाँ-तहाँ पाखाना। रसोई में एक तरफ बरतनों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। चमेली ने घर की सफाई की। पानी भर लाई और गोबर से मकान को लीप दिया। वैद्य को बुलाकर दवा दी। निरन्तर चमेली लीलाधर की सेवा

फिर कोई प्रपंच रच रही है क्या ?"

अपने-आप खड़े-खड़े हँसा और कहने लगा, "औरत की जात पर कभी विश्वास न करे, यह बाहर से राम-राम भीतर से छुरी चलाती रहती है।" वह और भी बहुत सी तीखी और व्यंग्य-भरी बातें करता रहा। उसका एक-एक वाक्य विष से बुझा हुआ था। अन्त में उसने कहा, "उस सेठ को भी छोड़ दिया, तुझे एक से सन्तोष कहाँ ?" वह फिर हँसा तो उसकी बत्तीसी बाहर निकल आई। वे बनावटी दाँत थे। चमेली उसे शान्त भाव से देख रही थी। झपटकर फिर मुँह में दाँतों को लगाते देखकर उसे हँसी आ गई। शंकरानन्द खिसिया गया। अन्त में चमेली ने कहा—

"और जो कहना है वह भी कह ले, शंकरानन्द !"

शंकरानन्द बहुत देर तक खड़ा बड़बड़ाता रहा। चमेली सब चुपचाप सुनती रही, उसने हाथ-भर जोड़ दिए। उसे लगा जैसे यह सब उसका परीक्षा-काल है। वह उठी और यात्रियों के नहाने वाले घाट पर जा बैठी। शिवचरन ने बताया, "ललिता पंडित बहुत बीमार है। अब-तब है रई है।" चमेली ने सुना तो बिना कहे चल दी बाजार में। उसे देखते ही जैसे लोगों की जबान खुल गई। कल की सब बातें दुहराई जाने लगीं। एक तूफान-सा उठा और धीरे-धीरे समाप्त हो गया। वह गली-मोहल्ले पार करती बढ़ने लगी। वर्षा की झड़ी की तरह निन्दा-गालियों की बौछार उस पर पड़ रही थी। आदमी दुकानों से निकलकर ताकते। मोहल्लों में औरतें-बच्चे ताने कसते, 'डाकू, डाकू चमेली' कहकर चिल्लाते। किन्तु वह चुपचाप चली जा रही थी नीची निगाह किये। रास्ते में उसने एक जगह देखा, एक मरियल कुत्ता जीभ निकाले अन्तिम साँस ले रहा है। वह ठहर गई और दुकान से दूध लेकर पिलाती हुई उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। लोग चिल्ला उठे, "नये हथकंडा हैं याके। नौ सौ चूहे खायें भई है।" वह आगे बढ़ी।

मोहल्ले में किसीका बच्चा चबूतरे से गिरा जमीन पर पड़ा रो रहा

था। चमेली ने दौड़कर उठा लिया और झाड़-पोंछकर पुचकारती उसकी माँ को पुकारने लगी। माँ ने बाहर चमेली को बच्चा लिये देखा तो झपटकर उसकी गोद से छीन लिया और लगी गाली देने। उसने बच्चे की माँ की तरफ मुस्कराकर देखा और आगे बढ़ गई।

ललिता पंडित पिछले तीन दिन से बेहोश पड़ा था। लड़का और बहू उसके पास थे। सारा कमरा बदबू से भर रहा था। एक तरफ मैले से सने हुए उसके बिस्तर पड़े थे। चमेली ने जाते ही पूछा, "वैद्य को नहीं दिखाया ?"

"दिखावते कहाँ सूँ, पैसई नायें। न जानें कहाँ गाढ़िकें धरि आयौ है जि डुकरा ?"

पत्नी ने हाथ मटकाते हुए कहा, "इनई के पास सब माल-मतौ होयगौ। इनेईतौ देत रहे। मरिवे कूँ ह्यां आय गये। हम पै का धरौ है, तुम जानौ।" लड़के ने चमेली की तरफ देखा, जैसे पत्नी की बात का समर्थन कर रहा हो। चमेली ने वैद्य को बुलाया और उसने एक मँहगी दवा लिख दी। चमेली ने रुपये देते हुए कहा, "जा, दवा ले आ।" इसी बीच उसने कमरा साफ किया, ललिता के बिस्तर ठीक किये, सब कपड़े धोये और पथ्य दिया। तीन दिन और तीन रात चमेली ललिता की सेवा करती रही। चौथे दिन उसने आँखें खोलीं। फिर भी लड़का और पत्नी जब-तब कह बैठते, "कक्का सूँ पुरानी दोस्ती निभाई जाय रई है, और का।" चमेली सुनती और चुप हो जाती। ललिता के ठीक होते-होते लीलाधर पंडित को हैजा हो गया। उनके और कोई नहीं था। पड़ोसी डरकर भाग गए थे। जब भयंकर बदबू से भरे हुए मकान में चमेली ने प्रवेश किया तो उसका जी घबरा उठा। कूड़ा-कचरा और अँधेरे से भरी हुई कोठरियाँ। दालान में जहाँ-तहाँ पाखाना। रसोई में एक तरफ बरतनों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। चमेली ने घर की सफाई की। पानी भर लाई और गोबर से मकान को लीप दिया। वैद्य को बुलाकर दवा दी। निरन्तर चमेली लीलाधर की सेवा

करती रही। लीलाधर की आँखें बैठ गई थीं, गाल पिचक गए थे। उनकी देह मुर्दे की तरह कांतिहीन थी। चमेली ने बिना भय और संकोच के निःस्वार्थ-भाव से उनकी सेवा की। लीलाधर बच गए। शिवचरन ने जाकर देखा तो बोला, "क्यों मरिबे कूँ डोलै है चमेली ? तोऊ हैजा है जायगो।"

चमेली मुस्कराकर बोली, "भगवान् की कृपा से लीलाधर पंडित बच गए। मुझे अपनी चिंता नहीं।"

ये वही लीलाधर पंडित थे, जिन्होंने चमेली के जेल से आने पर घूम-घूमकर उसकी निन्दा की थी। एक स्त्री के प्रति कहनी-अनकहनी सभी बातें कही थीं। आज उसके सामने वे लज्जा से गढ़े जा रहे थे।

चमेली योगिनी के मठ में रात को रहती। वहीं एक कोने में सूखी रोटियाँ बनाकर खा लेती। जो बीमार होता, उसकी सेवा करती। बूढ़ी और अपाहिज स्त्रियों के लिए पानी भर लाती, आटा पीस देती और उनका घर साफ कर आती। ब्राह्मण और बनियों के अलावा लोधे, चमार, भंगी, खटीक, सभी उसके परिवार में थे। ब्राह्मण और ठाकुर अब भी उसकी निन्दा करते थे। नीचे वर्ग के लोग उसे देवी के समान मानते और पूजते। उसके पहुँचते ही लोग समझ लेते, बीमार अब बच जायगा। वह अपने सादा वेश में सभी दुखियों के घर जाती और मीठी बातों और मुस्कराहट से उनको सांत्वना देती। लोग कहते, "चमेली की मुस्कराहट में औघड़ बाबा की छवि है।" वह सुनती तो पुलकित हो उठती। वह हृदय में उनका ध्यान करके कठिन-से-कठिन सेवा के काम में जुट जाती। दिन और रात सेवा करने के बाद जब लोग कहते, "बहन, अब आराम कर।" तो वह उत्तर देती, "मुझे थकावट बिलकुल नहीं हुई है।" और दूने उत्साह से सेवा करने लगती। किसीका बच्चा बहुत रोता हो तो उसका इलाज चमेली थी। बूढ़े बीमार होने पर घर में सबके होते हुए भी चमेली की पुकार मचाते। वह जैसे एक जादू हो। उसके पास बैठने-भर से ही बहुत से बीमार अच्छे हो जाते।

योगिनी मठ के पास ही कुछ भक्तों ने एक झोंपड़ी डाल दी। दूसरा एक खाट ले आया। घड़ा रख दिया गया। रसोई बना दी गई। अब बीमारों के घर जाने की अपेक्षा रोगी उसके पास आने लगे। एक यात्री 'बायोकेमिकल' दवाओं का एक बक्स भेंट कर गया। इन्हीं दिनों शिवचरन ने शिकायत के तौर पर कहा—

"अब गंगा मैया की भगती नायँ करति चमेली ! इन चमार-लोधेन में मिलि कें काए कूँ जाति बिगार रई है।" तो चमेली ने उत्तर दिया, "दुखी की सेवा ही भक्ति है शिवचरन ! मुझे इन्हीं लोगों में ईश्वर के दर्शन होते हैं।" शिवचरन ने समझा, चमेली का दिमाग फिर गया है, वह भ्रष्ट हो गई है। फिर भी लोग भीतर-ही-भीतर उससे स्नेह रखते और उसकी तारीफ करते थे। वह सबके यहाँ जाती, सबकी सेवा करती।

सारे गाँव और आस-पास के लोगों में उसकी सेवा और दुखी के प्रति दया का सिक्का बैठ गया। अब हर मनुष्य की ज़बान पर चमेली की चर्चा थी। शत्रु-मित्र सभी को वह प्रिय थी। जब गाली देते लोगों के सामने वह मुस्करा देती तो विपक्षी दल मूक हो जाता था। लोग कहते, "अब तक यह डाके डालती थी, अब जादू करना सीख आई है।" सचमुच वह जादूगरनी थी। गंगाधर पंडित उसके पिछले जीवन को स्वाभाविक मानते हुए भी इस परिवर्तन को उसकी प्रतिक्रिया कहते। एक बार उन्होंने कहा, "जो गिरता है वही उठता है। जो गेंद जितने जोर से जाकर सामने टकराती है, वह उतनी ही जोर से पीछे हटती है। जिस आदमी की इच्छाएँ जितनी मजबूत होती हैं, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही वेगवान होती है।" उन्होंने सम्राट् अशोक का उदाहरण देकर समझाया। लोग कहते, "औघड़ बाबा इसको अपनी चेली बना गए हैं।" चमेली के ऊपर निन्दा-स्तुति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। एक दिन अचानक चमार के एक लड़के को चेचक निकलने पर वह उसे मठ में ले आई। उसने समझाया, गाँव में रहने पर आसपास बीमारी

फैलने का डर है। बालक के साथ उसके मां-बाप भी थे। चमेली के इस काम से सारे गाँव में फिर एक तूफान उठा। लोगों ने उसका बायकाट कर दिया। दुकानदारों ने उसके साथ अछूतों का-सा बर्ताव शुरू कर दिया। लोग आकर उसके मुँह पर उसकी निन्दा करते। क्रोधी ब्राह्मण और अक्खड़ ठाकुर मर्यादा भंग करने का दोष लगाते, गाली देते, उसके सामने थूककर चले जाते। वह फिर भी मुस्कराती रहती। शिवचरन और गंगाधर पंडित के सिवा ब्राह्मण और ठाकुर सब उसके विरुद्ध थे। चमारों की सेवा करने के कारण लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। एक दिन धनुआँ लोधे ने आकर कहा—

"चमेली, चमार है गई है का, जि तोय का सूझी। निकारि इन्हें।"

चमेली बच्चे को पानी पिला रही थी। वह सिवा चमेली के, माँ के हाथ से भी पानी नहीं पीता था। बोली—

"भैया धनीराम, भगवान् की नज़र में न कोई चमार है न ब्राह्मण। गुरु महाराज औघड़ बाबा को तुमने नहीं देखा। वे क्या किसी से नफरत करते थे? उन्हीं की आज्ञा है धनीराम!"

धनुआँ बड़बड़ाकर चुप हो गया। बच्चा धीरे-धीरे ठीक होने लगा। जिसके पास जाने से उसके माँ-बाप डरते थे, उससे चमेली ऐसे हिल गई जैसे उसका ही बच्चा हो। हर शाम गंगाधर आकर कहते, "छिम्मा, मैंने तुझसे कहा नहीं था कि चमेली बिटिया जिस पर हाथ रख देगी उसका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता।" छिम्मा हाथ जोड़कर जवाब देता, "ठीक कैतौ माराज, हम का जानें नायें, जि तौ गाम की देवी है।" छिम्मा की बहू रह-रहकर चमेली के पैर छूती। उसके पाँच बच्चे इसी चेचक की बीमारी में मर गए थे। अच्छा होने पर पचासों लोगों के साथ लड़का अपने घर गया। शाम को गंगाधर यथानियम आये तो देखा चमेली जमीन पर टाट बिछाये पड़ी है। बुखार की तेजी से उसका शरीर जल रहा है। गंगाधर का माथा ठनका। उन्होंने समझ लिया, चेचक का बुखार है। रात को यह खबर गाँव में फैली तो लोगों ने तरह-

तरह की बातें कीं। बहुत से लोग देखने आये। वह बुखार में बेहोश पड़ी थी। शिवचरन को उसकी औरत पकड़कर ले गई। गंगाधर कह रहे थे, "कोई स्त्री ही इसकी सेवा कर सकती है।" इसी समय मजबूत दिल लिये धनुआँ की माँ आ गई। धनुआँ ने रोका तो भी वह न मानी। गंगाधर पंडित बाहर बैठे हालचाल पूछते और भीतर धनुआं की माँ चमेली की सेवा-शुश्रूषा करती। चमेली का रोम-रोम चेचक से भर गया था। उसकी आँखों में, पलकों में, और सभी जगह मोटे-मोटे दाने उभर आए थे। बुखार की गरमी से दिन-रात पानी मांगती। रात को धनुआं की माँ और दिन में गंगाधर उसकी देखभाल करते। बीच में शिवचरन आकर घंटों उसके पास बैठा रहता। अचानक एक दिन बुखार उतर गया। वैद्य ने दवा-पर-दवा बदली तो भी कोई असर नहीं हुआ। होते-होते बेहोशी ने आ घेरा। लोग अब भी आते और देखकर चुपचाप चले जाते। दूसरे दिन सवेरे रघुनन्दन आ गया। चमेली आँखें बन्द किये पड़ी थी। धनुआँ की माँ पंखा कर रही थी। बाहर पेड़ के नीचे बैठे गंगाधर चूना निकालकर तमाखू मसल रहे थे। रातों जागने के कारण उनकी आँखें लाल हो रही थीं। शरीर से निर्बल गंगाधर ने रघुनन्दन को नहीं पहचाना।

"कौन ?" गंगाधर ने ध्यान से देखकर बिना पहचाने पूछा।

"मैं रघुनन्दन, अरे पंडितजी !"

"हाँ-हाँ, आओ भैया, चले ही आ रहे हो ! चमेली बीमार है, चेचक निकली है। दूसरों की सेवा करते-करते बीमार हो गई है। क्या बात है चमेली की, देवी है देवी ! और कोई देश होता तो लोग सिर-आँखों पर रखते। किन्तु हमारे देश ने स्वतन्त्रता के बाद भी मनुष्य की कदर करना नहीं सीखा।" पंडित बोलते जा रहे थे। रघुनन्दन ने बीच में टोककर पूछा—

"भीतर है क्या ?"

"चलो, मैं ले चलूँ।" पुकारकर बोले, "धनुआँ की माँ, देख

चमेली के कपड़े ठीक कर देना। ये रघुनन्दन आये हैं उसे देखने।"

भीतर जाने पर धनुआँ की माँ कहने लगी—

"मैकरन की सेवा करी है या ने, आज याइ देखिबे बारौ कोई नायें।"

रघुनन्दन ने देखा तो देखता ही रह गया।

"किसका इलाज है?"

"गाम के वैद नायें, उनकौ।" धनुआँ की माँ ने उत्तर दिया।

गंगाधर पंडित ने तमाखू फाँकी तो मुँह भर गया। थोड़ी देर चुप रहे, फिर पीक थूककर कहने लगे, "आज हालत खराब है, बुखार एकदम उतर गया है।"

सेठ के साथ पुरोहित भी था। रघुनन्दन ने उसे वैद्य को बुलाने भेज दिया।

वैद्यजी आये तो रघुनन्दन ने सब हाल पूछा, "क्या खयाल है आपका? किसी डॉक्टर को दिखाया जाय?"

"दिखा दो, पर तुम जानो उम्मेद कम है।"

इसी समय चमेली ने पानी माँगा। रघुनन्दन ने मुँह में पानी डाला। मुश्किल से पानी निगला गया। न उसने आँखें खोलीं और न किसीको पहचाना। काला रंग, बिगड़ा हुआ चेहरा, देखने में भयावनी लग रही थी। इधर सेठ को आया जान बहुत से आदमी आ गए। सब चमेली की प्रशंसा कर रहे थे। रघुनन्दन से न रहा गया। वह बोल उठा, "आप लोगों ने उसीका बदला दिया है जो यह इस हालत में पड़ी है। धन्य हैं आप लोग!" रघुनन्दन ने डॉक्टर को बुलाया। डॉक्टर ने स्टेथिस्कोप हिलाते हुए बीमार को देखने के बाद एकान्त में कहा—

"बचना मुश्किल है।"

"तो क्या किसी बड़े डॉक्टर को तार देकर बुलाया जाय? ठहरिये, मैं अपने डॉक्टर को बुलाता हूँ।"

तार पहुँचते ही शहर से एक डॉक्टर और आया। एक नर्स आई। बदल-बदलकर दवाएँ दी जाने लगीं। इंजेक्शन लग रहे थे। शाम होते-होते डॉक्टर ने बाहर आकर कहा—

"केस इज़ होपलैस, लैट हर डाई पीसफुली।"

रघुनन्दन चमेली की चिन्ता में कभी भीतर, कभी बाहर घूम रहा था। उसके माथे की सिकुड़नें उभर आई थीं। चिन्ता और थकावट के कारण उसका रंग पीला पड़ गया था। डॉक्टर की बात सुनकर बोला—

"क्या मरने से पहले होश नहीं आ सकता ?"

"डिलीरियम है, लैट अस ट्राई।" डॉक्टर ने साथी से सलाह करके एक इंजेक्शन दिया। थोड़ी देर बाद चमेली ने आँखें खोलीं।

"चमेली, चमेली !"

चमेली देखती रही। उससे बोला नहीं गया। देखते रहने पर उसने रघुनन्दन को पहचाना। उसके चेहरे पर थोड़ी देर के लिए एक हलकी और सूखी मुस्कराहट आई। होठ फड़फड़ाये। लगा जैसे कुछ बोलना चाहती है, पर बोल नहीं सकती। चमेली देखती रही। धीरे-धीरे उसकी आँखें पथरा रही थीं। रघुनन्दन की आँखों से टप-टप करके दो-तीन बूँदें चमेली के मुँह पर गिरीं। रघुनन्दन मुँह फेरकर खड़ा हो गया। गंगाधर चिल्ला पड़े, "मनुष्यता की रक्षा में आहुति देने वाला यह प्राणी संसार से मुस्कराते हुए विदा ले रहा है, रघुनन्दन बाबू !" उनकी आँखें डबडबा आईं। रघुनन्दन रूमाल से आँखें पोंछता रहा। चमेली को जोर से हिचकी आई। सारा शरीर खिंच गया। अब वह शान्त पड़ी थी। लीलाधर कुछ आदमियों के साथ बाहर खड़े बिलख रहे थे, जैसे उनका आत्मीय ही चला गया हो। धनुआँ की माँ उसके पैरों पर अपना सिर फोड़ रही थी।

शव को गंगा में प्रवाहित करते समय सारा गाँव टूट पड़ा। सभी वर्णों और जातियों के लोग अपने आँसुओं से मृतात्मा का तर्पण

कर रहे थे। गाँव के इतिहास में यह पहली घटना थी कि किसीके शव पर इतने आदमी जुड़े हों। नीचे गंगा ने उसे अंक में ले लिया। ऊपर किनारे पर श्रद्धा और भक्ति की गंगा बह रही थी—मनुष्य की भक्ति की, मनुष्य की श्रद्धा की, एक मानवात्मा की विजय की।